वर्ष 37, अंक-3, मई-जून, 2014

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

रहीम विशेषांक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पाँच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पाँच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाये।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (ए.एच.)	:	23370228
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23379249
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249
निदेशक (सी एण्ड एस)	:	23379463

प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379386
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

मई-जून, 2014

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

परामर्श मंडल

प्रो. अशोक चक्रधर, रत्नाकर पांडेय, रामदरश मिश्र, बालशौरि रेड्डी, दिनेश मिश्र, ममता कालिया, हरीश नवल, अनामिका

संपादक

अनवर हलीम
उप-महानिदेशक (ए.एच.)

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccrindia.net/gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

शाश्वत् जीवन-मूल्यों के गायक कविवर रहीम खानखाना 5
डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

अपने भाव जगत में रहीम 9
रज्जन लाल मिश्र

रहीम के दोहों में जीवन के सूत्र 14
डॉ. परमानंद पांचाल

बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी 17
स्नेह ठाकुर

अद्भुत व्यक्तित्व के धनी 23
भावना सक्सैना

त्रिवर्णी साहित्यकार - रहीम 25
डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व 30
राजेंद्र परदेसी

रहीम और उनका काव्य 34
डॉ. सुरेंद्र गुप्त

समरसता के पोषक 37
साधना श्रीवास्तव

दोहों का समाजशास्त्र तथा अब्दुर्रहीम खानखाना 40
डॉ. श्याम सिंह शशि

रहीम की काव्य शक्ति चेतना 43
डॉ. रत्नाकर पांडेय

ओ रहिमन कौन सा पानी 46
अशोक चक्रधर

बहुभाषाविद् तथा अनुवादक रहीम 47
डॉ. अमूल्यरत्न महांति

जन-चेतना के संवाहक और जीवन-रस स्रोत रहीम 51
शशिधर खान

रहीम के नीतिपरक दोहे : जीवन अनुभवों से फूटते आलोक-वृत 55
हरजेंद्र चौधरी

हिंदी कविता कानन के अनमोल कुसुम रहीम 60
डॉ. बीना बुदकी

कुशल सेनापति एवं सफल कवि 62
प्रो. चमनलाल सप्रू

आध्यात्मिक विराटता का रचनात्मक उत्सव है रहीम 64
पंडित सुरेश नीरव

मानवतावादी रहीम 66
अंजना महापात्र

रहीम के काव्य में अभिव्यक्त धार्मिक लोक-विश्वास 69
अनुराग शर्मा

नीति-काव्य परंपरा और रहीम 72
कुलदीप मीणा

यहां सोए हैं रहीम 75
वर्षा रानी

साहित्य सृजन में रहीम की भूमिका 81
अशोक कुमार जाजोरिया

रहीम और दादू की ईश्वरोन्मुख प्रेम भावना 84
वीरेंद्र कुमार सिंह

बहुप्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व 87
सकीना अख्तर

रहीम के काव्य में प्रकृति चित्रण 89
डॉ. श्रुतिरंजना मिश्र

मानवता के संरक्षक यशस्वी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना 91
डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

नैतिकता के निर्माण में रहीम के पद 93
डॉ. एनी राय

रहीम का व्यक्तित्व और कृतित्त्व 95
सुरेंद्र कुमार

रहीम और गांधीवाद 102
अवतार कृष्ण राजदान

नीतिपरक दोहों के प्रणेता 105
डॉ. शिखा रस्तौगी

रहीम के काव्य में प्रकृति 108
रचना सिंह

समाचार

'यथार्थ से संवाद' लोकार्पित 110
सुविधा शर्मा

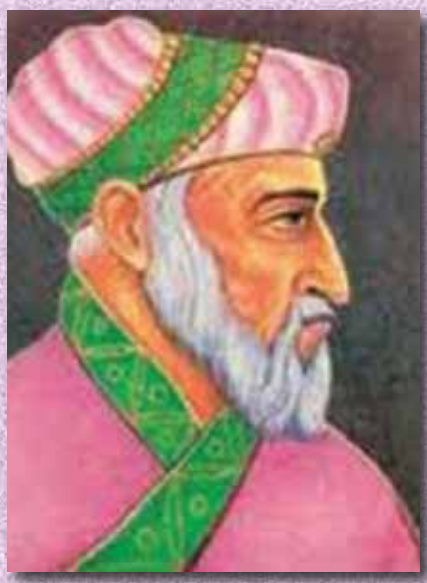

प्रकाशक की ओर से

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर न जुरे, जुरे गांठ परी जाय।।

आज से कई सौ वर्ष पहले अब्दुर्रहीम खानखाना की लिखी ये पंक्तियां समय के बहाव के साथ धुंधली नहीं पड़ीं, बल्कि आज भी वे अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में जहां जीवन मूल्य और संस्कार कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं, अविश्वास की गहरी लकीरें लोगों के दिल में जगह बना रही हैं, वहां रहीम का यह दोहा आधुनिक युग के मनुष्य को यह शिक्षा देने में पूर्णतः समर्थ है कि प्रेम में अविश्वास के लिए कोई जगह नहीं होती। यदि दिल में एक बार संशय पड़ जाए तो भले ही हम कितना साथ रहें लेकिन दिलों में हमेशा के लिए खाई बन जाती है।

रहीम के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका साहित्य उपदेशात्मक नहीं है, बल्कि उसमें आम जीवन की विसंगतियों और अनुभूतियों का निचोड़ है, जो हमें जीवन में नीति और ज्ञान की व्यावहारिक शिक्षा देता है। रहीम का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही बहुआयामी था। वे केवल कवि ही नहीं, बहुभाषाविद्, समाजसेवी, दानवीर, श्रेष्ठ अनुवादक, कुशल योद्धा और सांप्रदायिक सद्भाव के अग्रदूत थे। हिंदू-मुस्लिम सद्भाव की गंगा-जमुनी तहजीब का वास्तविक मिलन सच्चे अर्थों में उनके जीवन और साहित्य दोनों में देखने को मिलता है।

ऐसे ही विलक्षण व्यक्तित्व अब्दुर्रहीम खानखाना को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' ने अपना यह अंक समर्पित किया है। इस अंक में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों का ही सांगोपांग विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही पाठक उस कालखंड की विषम राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि से भी परिचित होंगे, जिस काल में रहीम ने अपना श्रेष्ठ साहित्य रचा है।

आशा है हमारा यह विनम्र प्रयास पाठकों को पसंद आएगा और रहीम के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने की एक नई दृष्टि देगा।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)
महानिदेशक

संपादक की ओर से

रहीम का नाम सुनते ही मन में सूफीआना तबीयत के ऐसे शख्स का अक्स उभरता है, जो भारत की सांस्कृतिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है। जिसकी परवरिश महलों में होती है, लेकिन वह जीता है एक आम आदमी की जिंदगी। जिसके लिए धन-दौलत साध्य नहीं सिर्फ साधन है। इसी धन-दौलत से उन्होंने न जाने कितने ही जरूरतमंदों की सहायता की और न जाने कितने ही कलाकारों की आर्थिक मदद इनाम के रूप में की। यह सादगी उन जैसे फकीराना तबीयत के इनसान में हो सकती थी कि किसी की मदद करते समय उनकी निगाहें हमेशा नीची रहती थीं ताकि उनसे मदद पाने वाले का चेहरा वह न देख सकें और दानी होने के गुमान से बच सकें।

रहीम का व्यक्तित्व बहुत अनोखा है। एक ओर दानवीर और प्रसिद्ध कवि हैं तो दूसरी ओर कुशल योद्धा और कूटनीतिज्ञ। कई भाषाओं के ज्ञाता रहीम श्रेष्ठ अनुवादक होने के साथ-साथ समाजसेवी और सांप्रदायिक सद्भाव की जिंदा मिसाल थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में सत्ता की आंख के तारे से लेकर सत्ता की आंख की किरकरी तक का सफर तय किया। दरअसल उन्होंने अपने जीवन में जितने उतार-चढ़ाव देखे, वैसे कम ही लोगों ने देखे हैं। इसके बावजूद उनके मन में कहीं कड़वाहट नहीं आती। उनके जीवन का यह अनुभव उनके नीतिपरक दोहों में सहज ही देखा जा सकता है। अपने नीतिपरक दोहों के कारण ही रहीम को हिंदी साहित्य में नीति काव्य का सम्राट कहा जाता है। जीवन के हर पक्ष पर उनके नीतिपरक दोहे सटीक बैठते हैं।

ऐसे महान कवि, बहुभाषाविद्, समाजसेवी, कूटनीतिज्ञ और कुशल योद्धा की याद को ताजा करने के लिए और नई पीढ़ी को ऐसे अनोखे व्यक्तित्व से परिचित करवाने के लिए हमने 'गगनांचल' के मई-जून, 2014 अंक को रहीम पर केंद्रित रखा है। आशा है हमारा यह प्रयास आपकी उम्मीदों पर खरा साबित होगा।

(अनवर हलीम)

शाश्वत् जीवन-मूल्यों के गायक कविवर रहीम खानखाना

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

भारत की उदारवादी 'समन्वय मूलक संस्कृति' में पूर्ण आस्था रखने वाले कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना निःसंदेह हिंदी के ऐसे समर्थ कवियों में शीर्षस्थ रहे हैं, जिन्होंने इस्लाम के संस्कार होते हुए भी, अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदू धर्म, संस्कृति, दर्शन, समाज और देवी-देवताओं का भरपूर सम्मान और श्रद्धा के साथ चित्रण किया है।

समीक्षकों ने स्वीकार किया है—''अब्दुर्रहीम खानखाना मध्यकालीन भारत के कुशल राजनीतिज्ञ, वीर एवं समर्पित योद्धा के साथ-साथ अत्यंत भावपूर्ण कवि रहे हैं, जिनकी गणना विगत चार शताब्दियों के ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के साथ ही भारत मां के सच्चे सपूतों में होती रही है। सच तो यह है कि कविवर रहीम भारत के ऐसे मात्र एक सौ भाग्यशाली व्यक्तियों में रहे हैं, जो अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर लोकप्रियता के शिखर पर रहे हैं और हिंदी-साहित्य के इतिहास में 'सतसई' के रचनाकार कवि बिहारी के बाद रहीम को ही 'दोहा' एवं 'सोरठा' छंद का 'जादूगर' कहा जा सकता है।''

कविवर रहीम का जन्म सन् 1556 में इतिहास में अपनी स्वामिभक्ति और उदार जीवन शैली के लिए प्रसिद्ध रहे सूरमा बैरम खां के घर लाहौर में हुआ था! महान मुगल शासक मोहम्मद जलालुद्दीन अकबर के 'संरक्षक' के रूप में बैरम खां ने जो ख्याति भारतीय मध्यकालीन इतिहास में अर्जित की, उसी का ऋण चुकाते हुए सम्राट अकबर ने प्रतिभा के धनी, सरस्वती के वरदपुत्र कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना को अपने 'नवरत्नों' में स्थान देकर सम्मानित किया था। भारत के इतिहास में मुगल सम्राट अकबर के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र 'समन्वय' को लेकर चलने वाले कविवर रहीम का नाम भी स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

कविवर रहीम के व्यक्तित्व में सम्राट पृथ्वीराज चौहान के मित्र-कवि चंदबरदाई की तरह ही 'भावनाशील' रचनाकार और एक रण बांकुरे योद्धा का अनूठा संगम मिलता है। सम्राट अकबर के अत्यंत विश्वासपात्र तथा प्रिय व्यक्तियों में गिने जाने वाले अब्दुर्रहीम खानखाना ने मात्र सत्रह वर्ष की आयु में ही सन् 1573 ईसवीं में सम्राट अकबर के साथ 'गुजरात के बागियों' से लोहा लेने वाली मुगल फौज के 'मध्यभाग' की कमान संभाल कर विजय पाई थी। इस विजय से प्रभावित सम्राट अकबर ने रहीम को गुजरात प्रांत की 'सूबेदारी' सौंप दी थी। अकबर के विश्वासपात्र योद्धा के रूप में अब्दुर्रहीम खानखाना ने 'हल्दीघाटी' की ऐतिहासिक लड़ाई में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया और विजयश्री प्राप्त करने के बाद रहीम दो वर्ष वहीं रहे थे।

सम्राट अकबर के हृदय में कवि रहीम की वफादारी के साथ ही प्रतिभा और बुद्धिमत्ता को लेकर जो अटूट विश्वास था, उसका एक अनूठा उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर आज भी अंकित है। सम्राट अकबर के दरबार में एक पद 'मीर अर्ज' का होता था, जिसे पाकर कोई भी व्यक्ति लोकप्रिय होने के साथ-साथ रातोरात अमीर हो जाता था, क्योंकि 'मीर अर्ज' के पद पर रहने वाले व्यक्ति के माध्यम से ही 'जनता की फरियाद' सम्राट तक पहुंचती थी और सम्राट द्वारा लिए गए फैसले भी इस पद पर आसीन व्यक्ति के माध्यम से ही 'जनता' तक पहुंचते थे।

इतिहास साक्षी है कि इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद पर सम्राट हर दो या तीन दिनों में परिवर्तन करके नए-नए व्यक्तियों को नियुक्त किया करते थे, ताकि 'मीर अर्ज' के पद पर बैठा व्यक्ति 'जनता' से दगाबाजी न कर सके। कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना ही 'एकमात्र' ऐसे व्यक्ति रहे, जिनको सम्राट अकबर ने इस पद पर जब 'स्थाई रूप से नियुक्त' किया, तो पूरा दरबार सन्न रह गया था।

महाकवि तुलसीदास और कवि गंग के समकालीन रहे रहीम फारसी के साथ-साथ संस्कृत और हिंदी के भी निष्णात् ज्ञाता थे। इतिहास में कई ऐसे साक्ष्य विद्यमान हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि कविवर रहीम शब्द साधकों का अतिशय सम्मान करते थे और ईरान के शाह अब्बास के दरबार में रहने वाले प्रसिद्ध कवि केसरी ने तो एक बार भरे दरबार में अपने बादशाह से कह दिया था—

''नहीं दीख पड़ता है ईरान में,
जो मेरे गूढ़ार्थमय पदों को क्रय करे।
आवश्यक हो गया है मुझे हिंदुस्तान जाना,
जिस प्रकार बूंद जाती है सागर की ओर।
मैं भी भेजूंगा निज काव्यनिधि हिंद को,
क्योंकि इस युग के राजाओं में अब कोई नहीं,
खानखाना के सिवा अन्य आश्रयदाता,
सरस्वती के सुपुत्र सद्कवियों का।''

महाकवि तुलसीदास ने एक गरीब ब्राह्मण को रहीम के पास भेज दिया था, ताकि वे उस गरीब की कन्या के विवाह हेतु कुछ धन दे दें। तुलसीदास ने ब्राह्मण को एक पंक्ति लिख कर दी। महाकवि की पंक्ति यों थी—''सुरतिय नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस कोय।''

कविवर रहीम ने महाकवि तुलसी की इस पंक्ति की पूर्ति में दूसरी पंक्ति लिख दी—''गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।'' और उस गरीब ब्राह्मण को पुरस्कारस्वरूप धन देकर विदा किया। यह प्रसंग निश्चय ही रहीम की विनयशीलता और कवि-प्रतिभा का परिचायक तो है ही, महाकवि तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा के प्रति उनके हृदय में व्याप्त अपार श्रद्धा भावना को भी प्रदर्शित करता है।

ऐसा ही एक और मर्मस्पर्शी और अत्यंत प्रेरक प्रसंग साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित मिलता है, जिससे जहां रहीम के समकालीन कवि गंग की विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है, तो साथ ही साथ रहीम की विनयशीलता और निराभिमान व्यक्तित्व का परिचय भी मिलता है।

रहीम की अनूठी दानशीलता की हार्दिक सराहना करते हुए कवि गंग ने उन्हें यह दोहा लिख कर भेज दिया—

''सीखे कहां नवाबजू,
ऐसी देनी देन।
ज्यों-ज्यों कर ऊंचे कियौ,
त्यों-त्यों नीचे नैन।।''

अर्थात्—''ऐ गरीब नवाज! ये अनूठी दान देने की कला आपने कहां से सीखी कि ज्यों-ज्यों दान के लिए हाथ ऊंचा होता है, त्यों-त्यों आपकी नजर नीची होती जाती है।''

शब्द-साधक कवि गंग की अनूठी प्रशंसा का उत्तर देते हुए जीवन-मूल्यों के गायक रहीम ने जो दोहा लिखा, वह उनकी विनयशीलता और निराभिमान व्यक्तित्व को साकार कर देता है—

''देनहार कोउ और है,
भेजत सो दिन-रैन।
लोग भरम हम पै धरैं,
याते नीचे नैन।।''

अर्थात्—''देने वाला तो कोई और (परमात्मा) है, जो रात-दिन धन भेजता ही रहता है, लेकिन लोगों को यह 'भ्रम' है कि 'मैं' (रहीम) देने वाला हूं। बस, इसी कारण शर्म से मेरी नजर नीची हो जाती है।''

हिंदी साहित्य में कवि बिहारी को उनकी 'सतसई' के कारण निःसंदेह समीक्षकों ने बड़े गर्व से 'दोहा-सम्राट' मान लिया है, लेकिन शाश्वत् जीवन मूल्यों के अनूठे गायक, नीतिपरक सार्थक दोहों के रचयिता कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना का सम्यक् मूल्यांकन हुआ ही कहां है?

शाश्वत् जीवन-मूल्यों के कवि—काव्य वस्तुतः जीवन-मूल्यों की चिरंतन अभिव्यक्ति ही तो होता है। युगांतरकारी कवि अपने युग के अतीत की सुदृढ़ आदर्शमयी नींव पर 'वर्तमान' को इस प्रकार संवारता है कि आने वाला भविष्य स्वर्णिम बन सके।

रहीम के दोहे आज भी जन-जन के हृदय में इसलिए बसे हुए हैं कि उनमें युगीन आदर्शों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ शाश्वत् जीवन-मूल्यों की चिरंतन छाप विद्यमान है। यहां मैं अपने सुविज्ञ पाठकों के लिए रहीम का एक कालजयी 'सोरठा' छंद इसलिए उद्धृत करना चाहता हूं कि लगभग पांच सौ वर्षों के बाद भी इस सोरठे का अमृत चिंतन हमारे लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना हुआ है—

''रहिमन मोहि न सुहाय,
अमिय पियावत मान बिनु।
बरु विस देय बुलाय,
मान सहित मरिबौं भलो।।''

रहीम कहते हैं कि 'अगर कोई व्यक्ति मुझे बिना मान दिए 'अमृत' पिलाना चाहे, तो मुझे बिलकुल भी नहीं सुहाता! हां, अगर कोई मुझे सम्मान से बुला कर 'विष' भी दे दे, तो मैं सम्मान के साथ मृत्यु को गले लगाना चाहूंगा।'

निःसंदेह, आज की आपाधापी में हम जैसे 'आत्म सम्मान' को ताक पर रखकर, कैसे भी 'कुछ' पा लेना चाहते हैं, तब कविवर रहीम का यह छंद हमें 'आत्म सम्मान' का मूल्य समझाने के लिए क्या पर्याप्त नहीं है? क्या 'अपमान' सहकर प्राप्त किया गया बड़े से बड़ा सम्मान भी हमारी चेतना को, हमारी आत्मा को निरंतर सालता नहीं रहता? क्या ऐसा जीवन 'मौत' से भी बदतर नहीं होता? इन प्रश्नों का सटीक उत्तर है यह छंद।

समीक्षकों ने स्वीकार किया है कि वही साहित्य कालजयी हो सकता है, जो 'शाश्वत् जीवन-मूल्यों और आदर्श चिंतन को आधार बना कर रचा गया हो।' इस कसौटी पर जब अब्दुर्रहीम खानखाना के दोहों को परखा जाता है तो निर्विवाद रूप से वे 'कालजयी रचनाकार' सिद्ध होते हैं।

मुस्लिम धर्मानुयाई होते हुए भी रहीम ने अपने दोहों में जिस प्रकार भारतीय दर्शन, हिंदू धर्म और समाज को चित्रित किया है, उसे देखकर तो यही लगता है कि कवि रहीम मूलतः उदारमना रचनाकार थे और भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र 'समन्वय चेतना' को उन्होंने अपने काव्य सृजन का लक्ष्य माना है।

एक दृढ़तम आस्था का शाश्वत् मूल्य रहीम के दोहों में हमें यत्र-तत्र-सर्वत्र निरंतर गूंजता मिलेगा। किसी 'दिव्य शक्ति' की उपस्थिति कवि रहीम की चेतना में निरंतर अनुभव की जा सकती है। प्रमाणस्वरूप मैं कवि रहीम का वह दोहा उद्धृत करना चाहूंगा, जो शताब्दियों से जन-मानस का शृंगार बना हुआ है—

''अमरबेलि बिन मूल की,
प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि,
खोजत फिरिए काहि।।''

अन्यतम और दृढ़तम आस्था की यह सहज और अत्यंत स्वाभाविक अभिव्यक्ति पाठक

को सीधे छू लेती है। सभी जानते हैं कि 'अमरबेल' एक ऐसी वनस्पति है, जिसकी जड़ ही नहीं होती, फिर भी ईश्वर उसका प्रतिपालन करता है। कवि रहीम का सीधा सा प्रश्न 'आस्था' के शाश्वत् जीवन मूल्य को जनमानस में ऐसे प्रतिष्ठापित कर देता है कि नास्तिक भी एकबारगी तो चौंक उठता है। इस दोहे के 'ऐस प्रभुहि तजि' शब्द के साथ 'खोजत फिरिए काहि' का सटीक प्रश्न जैसे ही गूंजता है, वैसे ही युगों-युगों से जन-मन में रची-बसी 'आस्था' को जैसे अमृत मिल जाता है।

अब्दुर्रहीम खानखाना के दोहों और सोरठों में समाज की परंपराएं, मान्यताएं और युगों से निरंतर चले आ रहे व्यवहारों की गूंज पाठक को जब मिलती है, तो उसका मन गद्‌गद् हो उठता है। यहां मैं एक ऐसा ही दोहा उद्‌धृत कर रहा हूं, जिसमें कवि रहीम ने अपनी अंतर्दृष्टि के माध्यम से समाज के यथार्थ को रूपायित किया है–

''अरज गरज मानै नहीं,
रहिमन ये जन चारि।
रिनिया, राजा, मांगता,
काम आतुरि नारि।।''

अर्थात् ''समाज में चार व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो अन्य किसी की प्रार्थना (अरज) या आवश्यकता (गरज) की परवाह नहीं करते, बल्कि मनमानी करते हैं। ये चार हैं–ऋण देने वाला महाजन, राजा, मांगने वाला भिखारी और कामातुर स्त्री।''

निश्चय ही रहीम का यह दोहा उनकी 'पर्यवेक्षण शक्ति' का एक उत्तम प्रमाण तो है ही, साथ-ही-साथ रहीम की कवि-प्रतिभा का परिचायक भी बन गया है।

इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध दोहा जनमानस में शताब्दियों से रचा-बसा रहा है, जिसमें कवि रहीम ने एक साथ अनेक व्यक्तियों के व्यवहार पर अपनी सटीक टिप्पणी करके गूढ़ पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है। यह प्रसिद्ध दोहा इस प्रकार है–

''उरग, तुरग, नारी, नृपति,
नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए,
पलटत लगै न बार।।''

गजब के इस दोहे में रहीम सीख देते हैं कि उरग (सांप), तुरग (घोड़ा), नारी, नृपति, नीच जाति का व्यक्ति और हथियार कब 'पलट' कर चोट कर दें, इसका कोई भरोसा नहीं होता; इसलिए इन्हें हमेशा संभाल कर (नियंत्रण में) रखना ही श्रेयस्कर होता है। निःसंदेह रहीम के इस अनूठे दोहे में 'काव्यत्व' के चमत्कार के साथ 'कथ्य' की जो विलक्षण गहराई है, वह पाठक को बरबस बांध लेती है।

रहीम ने स्वयं 'दोहा छंद' की परिभाषा देकर उसकी विशेषताओं को अपने एक दोहे में इस प्रकार कहा है–

''दोहा दरिघ अरथ के,
आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली,
सिमटि कूदि चली जाहिं।।''

अर्थात् दोहे में 'अर्थ' तो 'दीरघ' यानी व्यापक होता है और 'आखर' (शब्द) थोड़े होते हैं, वैसे ही, जैसे कोई कुशल 'नट' छोटे से गोले (कुंडली) में से सिमट कर निकल जाता है। स्वयं कवि रहीम की इस कसौटी पर उनके दोहे पूर्णतः खरे उतरते हैं, इस सच्चाई को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

रहीम ने दोहे जैसे छोटे से छंद में 'मिथकीय चेतना' का विलक्षण प्रयोग करके एक ओर जहां पाठकों को अभिभूत किया है, वहीं अपनी बेजोड़ कवित्व-शक्ति का परिचय भी दिया है। प्रमाणस्वरूप मैं यहां कवि रहीम के कुछ दोहे उद्‌धृत करूंगा, जिनमें उन्होंने मिथकीय प्रयोग से चमत्कार पैदा कर दिया है–

''ओछो काम बड़ो करै,
तो न बड़ाई होय।
ज्यो रहीम हनुमंत को,
गिरधर कहै न कोय।।''

यहां तो 'हनुमान' द्वारा 'संजीवनी बूटी' लाने के लिए पर्वत उखाड़ लाने की सच्चाई के 'मिथक' को लेकर कवि ने गजब की बात कह दी है। कोई 'बड़ा' व्यक्ति अगर किसी 'छोटे' काम को कर दे तो कोई 'बड़ाई' नहीं होती, जैसे महाबली हनुमान के द्वारा पर्वत उठा लेने पर भी कोई उन्हें 'गिरधर' (गोवर्धनधारी कृष्ण) थोड़े ही कहता हैं?

''कमला थिर न रहीम कहि,
यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू,
क्यों न चंचला होय।''

इस व्यंजना-प्रधान विलक्षण दोहे में 'पुरुष पुरातन की वधू' के अनूठे 'श्लेषात्मक प्रयोग' से कवि रहीम ने जो चमत्कार पैदा किया है, उसे विद्वान समीक्षक और पाठक आज तक भूले नहीं।

रहीम ने अपने दोहों और सोरठों में यत्र-तत्र ऐसे नैतिक जीवन मूल्यों को गूंथा है कि रहीम के दोहे जनमानस में फक्कड़ मस्त कबीर और जीवनादर्शों के रचयिता महाकवि तुलसी की रचनाओं की तरह रच-बस गए हैं।

उनके इस दोहे में मानव जीवन की अनुभूत सच्चाई को ध्वनित देखकर पाठक का मन सहज ही अभिभूत हो उठता है–

''कहि रहीम संपति सगे,
बनत बहुत बहु रीति।
बिपति कसौटी जे कसे,
तेई सांचे मीत।।''

रहीम के अनुभव का सच कहता है कि जब किसी के पास 'संपत्ति' आ जाती है, जाने कहां-कहां से उसके 'सगे' पैदा हो जाते हैं। वास्तविक 'मीत' तो वे ही होते हैं, जो 'विपत्ति' की कसौटी पर खरे उतरते हों। इस दोहे में 'संपत्ति' और 'विपत्ति' के बीच 'मीत' का प्रयोग रहीम ने एक शब्द 'कसौटी' रखकर अद्‌भुत बना दिया है।

प्रेम का अनुभव सर्वोपरि–अब्दुर्रहीम खानखाना के काव्य में 'प्रेम' की पवित्रता,

गहराई और सहजता को अनेक दोहों में अत्यंत सार्थक और स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली है, जिसे देखकर मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि रहीम भावुक रहे होंगे। निर्मल और सहज 'प्रेम' के आगे तो रहीम 'बैकुंठ' को भी नगण्य मानते हैं–

''कहा करौं बैकुंठ लै,
कल्प वृच्छ की छांह।
रहिमन ढाक सुहावने,
जो गल पीतम बांह।।''

रहीम ने 'गल पीतम की बांह' के साथ ''ढाक सुहावने' लिखकर जिस प्रकार 'बैकुंठ' और 'कल्प-वृक्ष' को अपने लिए निस्सार मान कर 'कहा करो बैकुंठ लै' कहा; उससे प्रमाणित हो जाता है कि रहीम निश्चय ही 'प्रेम' के उदात्त और सहज रूप के पक्षधर कवि रहे हैं।

रसखान के छंद ''प्रेम कौ पंथ कराल महा, तलवार की धार पे धावनो है'' की ही भांति रहीम भी प्रेम की अनूठी कसौटी अपने दोहे में बताते हैं–

''चढ़िबो मोम तुरंग पर,
चलिबो पावक माहिं।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन,
सब कोउ निबहत नाहिं।।''

कवि रहीम के अनुसार तो 'प्रेम का पंथ' ऐसा कठिन है कि हर कोई उसकी मर्यादाओं को निभा नहीं सकता। इस प्रेम के पंथ पर चलने वालों को 'मोम के घोड़े' पर बैठकर 'आग' के बीच से जाना होता है।

और अंत में, मैं कविवर रहीम के एक ऐसे बेजोड़ 'प्रेम' का उल्लेख करूंगा, जिसे संसार कभी 'आत्मीयता' कहता है, तो कभी 'परोपकार' और कभी कह देता है 'मित्रता'–

''जो गरीब सों हित करैं,
धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो,
कृष्ण मिताई जोग।।''

जाने क्यों हिंदी साहित्य में जैसा मूल्यांकन कवि बिहारी का हुआ, वैसा बहुविज्ञ रहीम का क्यों नहीं हो सका? इस प्रश्न का उत्तर हमें अब खोजना ही होगा, तभी शायद इस 'प्रेम' और शाश्वत जीवन मूल्यों के इस अनूठे गायक रहीम के प्रति सच्चा न्याय कर सकेंगे। मैं अपने इस दोहे से कविवर रहीम को अपनी श्रद्धांजलि देता हूं–

''प्रेम रहीम का मूल है,
मन सच्ची पहचान।
शब्द-साधना से मिला,
रहिमन नित सम्मान।''

74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667

अपने भाव जगत में रहीम

रज्जन लाल मिश्र

एक व्यक्ति—ऐसा विरोधाभासी व्यक्तित्व जो शासक होते हुए भी प्रताड़ित होता रहता है, अकूत संपत्ति का स्वामी और उदार दानदाता होने पर भी अकिंचन है, कट्टर नमाजी मुसलमान होते हुए भी सगुणोपासक सनातनी है, बड़े-बड़े संग्राम जीतते रहने पर भी अपने ही जीवन से हारता है, जो शाही महल में पला-बढ़ा होने पर भी समाज के सबसे नीचे पायदान पर खड़े व्यक्ति के सहज जीवन की निरंतर अनुभूति करता है, जिसकी अंगुलियों ने एक ओर लेखनी के द्वारा हिंदी, संस्कृत, फारसी के काव्य की रसमयी धारा बहाई तो दूसरी ओर उन्हीं हाथों ने तलवार के जोर से विजय का इतिहास रचा। जो एक साथ बहादुर योद्धा है, समाजसेवी है, कवि है, भक्त है, दानवीर है, उस व्यक्ति को भारत का जनमानस अब्दुर्रहीम खानखाना, रहीम या 'रहिमन' के नाम से जानता है।

शहंशाह हुमायूं के साढ़ू, परामर्शदाता तथा अकबर के अभिभावक बैरम खां के पुत्र रहीम का जन्म सन् 1556 में हुआ था। वृद्ध पिता की नव यौवना पत्नी की संतान रहीम के जीवन के प्रारंभ से ही जैसे दैवी आपदाएं उनकी संगिनी बन गई थीं। जन्म के चार वर्ष बाद ही पिता की हत्या के बाद युवा मां सुलताना बेगम को अकबर ने पत्नी के रूप में अपने राजमहल में रख लिया। इस प्रकार रहीम का बाल्यकाल राजमहल में बीता।

रहीम बचपन से ही होनहार थे। वीरता, दानशीलता, दूरदर्शिता, साहित्यिक अभिरुचि तथा सक्षम प्रशासक के गुण उन्हें पैत्रिक संपत्ति के रूप में सहज ही प्राप्त थे। पिता शिया और माता सुन्नी होने से मजहबी कट्टरता भी उन पर प्रभाव नहीं डाल सकी।

महल में ही रहकर इनकी शिक्षा अरबी, तुर्की और फारसी में हुई। हिंदी, संस्कृत इन्होंने अपने प्रयत्न से बाद में सीखी।

अकबर और बाद में जहांगीर के शासन में रहीम ने अनेक युद्धों का नेतृत्व किया था या साथ रहे। उनकी वीरता, दूरदृष्टि, साहस और युद्ध कौशल ने इन्हें शाही दरबार में सम्मानजनक स्थान दिलवाया। अकबर के नौ रत्नों में इनकी गणना होती थी। कभी दरबारियों के षड्यंत्र के कारण कभी स्वयं के निर्णयों की चूक से कई बार शासकों का कोपभाजन भी होना पड़ा। पत्नी का असामयिक निधन, पुत्रों की असामयिक मृत्यु या हत्या, बेटियों का युवावस्था का वैधव्य एक व्यक्ति के जीवन को तोड़ने के लिए पर्याप्त था। फिर भी रहीम जीवन के अंतिम क्षण तक कभी पलायनादी नहीं रहे। पारिवारिक दुर्घटनाओं द्वारा परिवार के विनाश के बाद भी एकमात्र बचे उनके पुत्र का सिर काटकर महावत खां तश्तरी में कपड़े से ढक कर उसके सिर को उन्हें यह कहकर भेंट करता है कि यह आपके लिए तरबूज है। तब उनकी क्या स्थिति हुई होगी, इसकी कल्पना भी सहनीय नहीं है, पर उनकी जिजीविषा की गति को यह घटना भी अवरुद्ध नहीं कर सकी। जिस जहांगीर के संकेत पर यह जघन्य कृत्य किया गया, उसी के आदेश पर विद्रोही महावत खां के विद्रोह को कुचलने के लिए निकले वृद्ध और शरीर से जर्जर रहीम मार्ग में ही सदा के लिए सो गए।

रहीम अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिंदी (ब्रज भाषा, अवधी) के न केवल ज्ञाता अपितु समर्थ साहित्यकार थे। ज्योतिष और काव्यशास्त्र पर उनकी प्रभावी गति थी। अनेक भाषाओं का ज्ञान होने पर भी उन्होंने अपने भावों को व्यक्त करने का माध्यम अधिकांशतः हिंदी को ही बनाया है। नीति, भक्ति और शृंगार संबंधी दोहे उनकी लोकप्रिय कृति दोहावली में संग्रहीत हैं। दोहों के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समाज के सहज-व्यावहारिक जीवन की मधुर झांकी प्रस्तुत की है। इनके कुछ दोहे तो इतने लोकप्रिय हो गए हैं कि सामान्य अशिक्षित जन भी उन्हें लोकोक्तियों के रूप में प्रयुक्त करता है। इनकी एक रचना 'नगर शोभा', ब्रज भाषा में ही दोहा छंद में है। दोहा इनका प्रिय छंद था। उनका मानना था कि दोहा के माध्यम से कम शब्दों से अधिक से अधिक भाव भरे जा सकते हैं—

''दीरघ दोहा अरथ के,
आखर थोरे आंहिं।
ज्यों रहीम नर कुंडली,
सिमिट कूदि चढ़ि जाहिं।।''

'बरवै नायिका भेद' नाम की एक रचना में बरवै छंद का प्रयोग हुआ है। बरवै छंद के जनक रहीम ही माने जाते हैं। 'बरवै' के नामकरण के संबंध में एक किंवदंति प्रचलित है। रहीम के एक कर्मचारी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिन का अवकाश लिया। स्वीकृत अवकाश से अधिक समय बीत जाने पर वह भयभीत हो गया। उनकी नवविवाहिता पत्नी

योग्य थी। उसने एक छंद लिखकर उसे रहीम को देने के लिए कहा। रहीम ने उसे पढ़ा–

''प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजौ मुरझि न जाय।''

रहीम इससे बहुत प्रभावित हुए और बिरवा (प्रेम का पौधा) शब्द को ही 'बरवै' में परिवर्तित कर दिया। इसे वे रसकंद कहते हैं। वे यहां तक कहते हैं–

''कवित कह्यो दोहा कह्यो,
तुलै न छप्पय छंद।
विरच्यो यही बिचारि कै,
यह बरवै रसकंद।।''

यह छंद उन्हें इतना प्रिय था कि अपने मित्र संत तुलसी को भी इस छंद में रचना के लिए प्रेरित किया। इस संबंध में एक दोहा प्रचलित है–

''कवि रहीम बरवै रचे,
पठएं मुनिवर पास।
लखि तेहि सुंदर छंद में,
रचना करी प्रकाश।।''

'मदनाष्टक' और 'श्रृंगार सोरठा' आदि रचनाएं भी रहीम की मानी जाती है। रहीम ने संस्कृत में 'खेटकौतुकम्', 'त्रयस्त्रिंशद्योगावनि', 'गंगाष्टकम्' नाम की रचनाएं की है। इनमें प्रथम दो रचनाएं ज्योतिष पर आधारित हैं। कहीं-कहीं हिंदी, फारसी, संस्कृत मिश्रित शब्दावली का प्रयोग कर छंद रचना की है। 'मदनाष्टक' का इसी प्रकार का उदाहरण देखिए–

''शरद निशि निशीथे,
चांद की रोशनाई।
सघन बन निकुंजे,
कान्ह वंशी बजाई।
रति, पति, सुत, निद्रा
साइयां छोड़ भागीं।
मदन शिरसि भूमः क्या,
बवा आन लागी।।''

रहीम का जीवन जिस परिवेश में पला-बढ़ा वहां कूटनीति, षड्यंत्र, सत्ता संघर्ष और परस्पर कुटिल चालों की भरमार थी। राजमहल से लेकर दरबार तक कोई किसी का स्थाई विश्वासपात्र नहीं था। कभी-कभी तो पिता-पुत्र, पति-पत्नी और भाई-भाई भी संदेह के कुहासे में जीने को विवश होते थे। रहीम के दोहों में इस वातावरण की स्पष्ट छाप है। इस संबंध में एक घटना उल्लेखनीय है। दक्षिण विजय के एक अभियान में जहांगीर ने रहीम के साथ शहजादे परवेज को भी भेजा। रहीम ने युद्ध में विजय प्राप्त की। पर परवेज की त्रुटि के कारण वह विजय पराजय में बदल गई। त्रुटि शहजादे की थी पर दोष रहीम पर आ गया। इस अपमान से दुखी रहीम की पीड़ा इस छंद में देखिए–

''उरग तुरग नारी नृपति,
नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें स्माहिरये,
पलटत लगै न वार।।''

कुटिल का साथ करेंगे तो कुटिलता का दंश तो झेलना ही पड़ेगा। वहां साधू-असाधू की विवेचना नहीं होती। उनका कहना है–

''कुटिलन संग रहीम रहि,
साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करैं,
उरेज उमेठे जाहिं।।''

श्रृंगार का दोहा है, पर उनकी दरबारी अनुभूति यहां भी अपने संकेत दे देती है। उन्हें यह पीड़ा है कि कुटिल का साथ देने से दंड सज्जन को भोगना पड़ता है। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि सामान्य दिनों में जो अपने हितैषी प्रतीत होते थे। विपरीत परिस्थिति में वे बदल जाते हैं। अतः उन्होंने इसके लिए एक कसौटी तैयार की–

''रहिमन तीन प्रकार ते,
हित अनहित पहिचान।
परबस परे, परोस बसि,
परे मामला जान।।''

रहीम अपने निजी अनुभवों को सदैव समाज में बांटते रहते हैं। इसीलिए उनकी अपनी अनुभूतियां समाज की लोकोक्तियां बन जाती हैं। इनके जीवन में एक समय ऐसा भी आया कि जब जहांगीर को इन पर अविश्वास हो गया। इनकी संपत्ति छीन कर इन्हें कारागार में डाल दिया गया। उस समय इन्हें संपत्ति के महत्त्व की अनुभूति हुई। स्वभाव से दानी होने के कारण किसी याचक को विमुख करना उन्हें पीड़ा देता था। उनकी मान्यता थी कि–

''रहिमन वे नर मर चुके,
जो कहुं मांगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

ऐसी स्थिति में संपत्तिहीनता का अनुभव करते हुए वे कहते हैं–

''रहिमन निज संपत्ति बिना,
कोउ न विपत्ति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को,
नहिं रवि सकै बचाय।।''

प्रसन्न होने पर किसी को पुरस्कृत करना और अपनी रुचि के विपरीत कार्य से अथवा ऐसा किसी सूचना से अप्रसन्न होकर दंडित करना या सेवा से निकाल देना शासकों के सामान्य आचरण में था। ऐसे ही निर्णय से रुष्ट होकर कोई-कोई विद्रोही हो जाता था। ऐसा व्यक्ति शासन की गुप्त सूचनाएं शत्रु को दे सकता था, उसे शासन की दुर्बलता बता सकता था। रहीम ऐसी स्थिति में सचेत करते हुए कहते हैं–

''रहिमन अंसुवा नैन ढरि,
जिय दुःख प्रगट करेय।
जाहि निकासो गेह ते,
कस न भेद कहि देय।।''

कटुभाषियों के लिए उनकी तीखी टिप्पणी सटीक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत की गई है। वे कहते हैं–

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।

रहिमन कड़ुवे मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

रहीम का अधिकांश जीवन प्रायः दरबार या युद्ध में व्यतीत हुआ। अतः उनके नीतिपरक दोहों में भी उसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। वे सामान्य नीति की बातें कहने में भी प्यादा, फर्जी, लस्कर, सेल्है जैसे उपनामों का प्रयोग करते हैं–

''जो सो फरजी ओछो बढ़ै,
तौ अति ही इतराय।
प्यादा सो फरजी भयो,
टेढ़ो टेढ़ो जाय।।''

''फरजी साहन है सकै,
गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधी चाल सों,
प्यादों होय वजीर।।''

यहां उनका भाव सीधे सरल जीवन की श्रेष्ठता सिद्ध करना है। वे यह भी सिद्ध करते हैं कि संकटों से जूझने वाला व्यक्ति ही अंत में लाभ प्राप्त करता है–

''सवै कहावैं लसकरी,
सब कसकर कहं जायं।
रहिमन सेल्ह जोई सेहै,
सो जागीरैं खाय।।''

सन् 1627 में जहांगीर की मृत्यु के बाद शाहजहां गद्दी पर बैठा। उसने गद्दी प्राप्त करने के लिए अनेक व्यक्तियों का वध किया। जहांगीर के अंतिम समय में ही उसने उथल-पुथल मचा रखी थी। रहीम ने यही देख और अनुभव कर कहा था–

''रहिमन राज सराहिए,
ससि सम सुखद जो होय।
कहा वापुरो भानु है,
तपै तरैय्यन खोय।।''

रहीम को अपने जीवन के अंतिम चरण में घोर संकटों का सामना करना पड़ा। उन पर राजद्रोह का अभियोग लगा कर बंदी बना लिया गया तथा नाना प्रकार की यातनाएं दी गईं। उस समय उनके प्रियजनों और मित्रों ने भी साथ नहीं दिया। विपत्ति के समय उन्हें इस कटु यथार्थ का ज्ञान हुआ। तभी उन्होंने कहा–

''रहिमन विपदा हूं भली,
जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में,
जानि परत सब कोय।।''

रहीम विपत्ति की भी उपयोगिता स्वीकार करते हैं क्योंकि इससे अपने और पराए का परीक्षण हो जाता है। जीवन के उत्थान-पतन में रहीम भाग्य को कारण मानते हैं, अतः उनके विचार से विपरीत समय आने पर अनुकूलता की प्रतीक्षा करनी चाहिए–

''रहिमन चुप है बैठिए,
देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइ हैं,
बनत न लगिहै बेर।।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि रहीम अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का समाजीकरण करते हुए बड़ी सहजता से कोई नीतिगत बात कह देते हैं।

रहीम के काव्य में भक्ति से संबंधित दोहे, कवित्त, सवैय्या पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। उनकी भक्ति का मुख्य आलंबन कृष्ण हैं। वास्तव में उस युग में श्रीकृष्ण का चरित्र इतना लोकप्रिय था कि कोई भी कवि कृष्ण के चरित्र का बिना स्पर्श किए अपनी भक्ति को पूर्ण नहीं मानता था। कृष्ण का चरित्र उस काल में न केवल काव्य में अपितु संगीत, चित्र और मूर्तिकला का भी आलंबन बन गया था। डॉ. सत्येन्द्र ने अपने ग्रंथ 'ब्रज साहित्य का इतिहास' में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है–''कृष्ण इस काल में भक्ति के ही आलंबन नहीं थे, संगीत, चित्र तथा मूर्तिकला के भी आलंबन थे। कृष्ण इस युग के लिए सबसे बड़ा आकर्षण थे। यही कारण है कि इस काल के हर कवि ने कृष्ण पर कुछ न कुछ अवश्य कहा है।''

रहीम की इस्लाम पर पूर्ण निष्ठा थी। इस्लामिक राज्य के विस्तार के लिए भी वे सतत् प्रयासरत रहते थे। पर कवि हृदय होने के कारण वे कृष्ण के माधुर्य के आकर्षण को अपने को रोक नहीं सके। भक्ति के क्षेत्र में वे कृष्णभक्त ही थे। उनका कहना है कि उनका मन सदा कृष्ण में ही अनुरक्त रहता है–

''ते रहीम मन आपनो,
कीन्हो चारू चकोर।
निसि वास लाग्यो रहै,
कृष्ण चंद्र की ओर।।''

रहीम को श्रीकृष्ण की शक्ति और अपनी भक्ति पर इतना विश्वास है कि उनके विचार से कृष्ण के भक्त का कोई दुष्ट व्यक्ति अनिष्ट कर ही नहीं सकता।

''कह रहीम का करि सकत,
ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखन हार है,
माखन चाखन हार।।''

''रन वन व्याधि विपत्ति में,
रहिन मरै न रोय।
जो रक्षक जननी जठर,
सो हरि गए कि सोय।।''

शाही दरबार में जुआरी, चोर, लबार जैसे व्यक्ति से ही तो रहीम की टकराहट होती थी। ऐसी विपत्तियों से मुक्त होने में उन्हें अपनी पटुता के साथ श्रीकृष्ण का ही तो आश्रय था। कृष्णजी अनाथों के नाथ हैं। क्योंकि जगत के पशु-पक्षी बिना औषधि के स्वस्थ रहते हैं, जबकि मनुष्य अनेक औषधियों का सेवन करता हुआ भी व्याधिग्रस्त रहता है–

''रहिमन बहुमेसज करत,
व्याधि न छाड़त साथ।
खग मृग वसत अरोग बन,
हरि अनाथ के नाथ।।''

रहीम का मानना है कि यदि हृदय से स्मरण किया जाए तो नारायण भी वश में किए जा सकते हैं–

''रहिमन मनहि लगाइ कै,
देखि लेउ किन कोय।
नर को बस करिबो,
कहा नारायण होय।।''

कृष्णभक्त होते हुए भी रहीम ने अन्य देवी-देवताओं का भी श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। दोहावली में रामभक्ति से संबंधित अनेक दोहे उपलब्ध हैं। उन्होंने एक दोहे में जगत का उद्धार करने का साधन एकमात्र रामभक्ति को ही माना है–

''गहि सरन गति राम की,
भव सागर की नाव।
रहिमन जगत उद्धार का,
और न कछू उपाय।।''

ऐसा प्रतीत होता है कि रहीम स्वार्थी समाज से ऊब कर ही राम की शरण में गए हैं। उनका विश्वास है कि लोग विपरीत समय में विश्वसनीय नहीं रह जाते। केवल राम ही सबके कार्य सिद्ध करते हैं–

''मागे मुकुरि न को गयो,
केहि ने त्यागियो साथ।
मागत आगे सुख लह्यो,
ते रहीम रघुनाथ।।''

कभी-कभी वे भगवान से भी विनोद कर बैठते हैं–लोग कहते हैं कि लक्ष्मी चंचला है, कहीं स्थिर नहीं रहती। उनका कहना है कि विष्णु पुरातन (वृद्ध) पुरुष कहे जाते हैं। लक्ष्मी चिर यौवना है। वृद्ध पुरुष की युवा पत्नी का घर-घर झांकना स्वाभाविक ही है–

''कमला थिर न रहीम गति,
यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू,
क्यों न चंचला होय।।''

दोहावली का प्रारंभ ही रहीम ने गंगास्तुति से किया है–

''अच्युत चरन तरंगिनी,
शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी,
कीजो इंदव भाल।।''

दोहावली में कृष्ण और राम की भक्ति के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की स्तुति के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। वे वैष्णव भक्त थे, श्रीकृष्ण उनके आराध्य थे। एक दोहे में उन्होंने कहा कि उनकी आंखों में कृष्ण की मोहिनी मूरत बसी है। उनमें किसी अन्य देवी-देवता को स्थान नहीं मिल सकता–

''प्रीतम छवि नैननि बसी,
पर छवि कहां समाय।
भरी सरायै रहीम कखि,
पथिक आप फिरि जाय।।''

रहीम ने अपने दोहों में जन-जीवन में घटित होने वाले संयोगों के विषय में मार्गदर्शन किया है। इसके साथ ही प्रेम, मित्रता, दान, परोपकार, दुष्टता, भाग्य, समय का प्रभाव महापुरुषों के लक्षण जैसे विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। वे संपन्न थे, साथ ही उदारतापूर्वक दान देने के लिए भी जाने जाते थे। उनके दान के विषय में एक किंवदंति प्रसिद्ध है। उनके मित्र कवि गंग ने उनसे इसका कारण जानना चाहा। तो रहीम का जो उत्तर था, वह उनके हृदय की विशालता, निरहंकारिता और उनकी चारित्रिक महानता को सिद्ध करता है। संवाद इस प्रकार है–

''सीखे कहां नवाबजू,
ऐसी देनी देन।
ज्यो ज्यों कर ऊंचो कियौ,
त्यों त्यों नीचे नैन।।''

''देनहार कोउ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरै,
याते नीचे नैन।।''

दान के विषय में उनके भावों को व्यक्त करने वाले कुछ उदाहरण देखिए–

''तब ही लौं जीबो भलो,
दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति,
उचित न होय रहीम।।''

''रहिमन वे नर मरि चुके,
जे कछु मांगन जाय।
उनते पहिले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

''दीन सबन को लखत है,
दीनन कखै न कोय।
जो रहीम दीनन लवै,
दीनबंधु सम होय।।''

रहीम जीवन में मर्यादा पालन को बहुत आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि व्यक्ति को सर्वदा अपनी मर्यादा के प्रति सावधान रहना चाहिए। मर्यादा टूट जाने पर समाज में उसका स्थान उसी प्रकार नहीं रहता जिस प्रकार जल का प्रवाह तट की मर्यादा टूटने पर इधर-उधर बिखर कर नष्ट हो जाता है। रहीम ने इस भाव को छोटे से दोहे में बड़ी निपुणता से भर दिया है–

''जो मरजाद चली सदा,
सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पार ते,
सो रहीम बहि जाय।।''

वे स्वाभिमानी व्यक्ति थे। उनकी दृष्टि में धन वैभव के लिए सम्मान नहीं खोना चाहिए। सम्मान रहित संपत्ति उन्हें स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

''धन थोरो इज्जत बड़ी,
कही रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू,
चिथड़न माहि सुहात।।''

''रहिमन मोहि न सुहाय,
अमी पियावत मान बिनु।
बरू विष देय पियाय,
मान सहित मरिबो भलो।।''

''रहिमन पानी राखिए,
बिन पानी सब सून।

पानी गए न ऊबरै,
मोती मानुष चून।।''

रहीम व्यक्ति के स्वभाव की समीक्षा करते हुए महापुरुषों के व्यवहार की श्रेष्ठता के लक्षण बताते हैं। उनके विचार से बड़ा वह है जो आचरण में श्रेष्ठ होते हुए भी आत्म प्रशंसा से दूर रहे–

''बड़े बड़ाई न करै,
बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै,
लाख टका मेरो मोल।।''

यहां एक सैद्धांतिक संकेत है कि समाज की प्रयोगशाला में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के प्रतिपल की सतत समीक्षा होती रहती है। अतः हमको समाज के समक्ष अपने जीवन का श्रेष्ठ स्वरूप प्रस्तुत करते रहने के प्रति सतत् जागरूक रहना चाहिए। बड़प्पन इसमें है कि व्यक्ति सुख-दुःख में समान रहे–

''यो रहीम सुख दुख सहत,
बड़े लोग सह सांति।
उवत चंद सोहि भांति सो,
अथवत वाही भांति।।''

मित्र और मित्रता पर भी रहीम ने अनेक दोहों में अपने विचार व्यक्त किए हैं। संपत्ति होने पर अनेक मित्र बन जाते हैं। सभी लोग निकट आना चाहते हैं। पर सच्चा मित्र वही है जो संकट के समय भी साथ देने को तैयार रहे–

''कहि रहीम संपत्ति सगे,
बनत बहुत बेहु रीति।
विपति कसौटी जे कसे,
सोई सांचो मीत।।''

''मथत-मथत माखन रहे,
दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है,
भीर परे ठहराय।।''

उनके काव्य की विशेषता है कि उन्होंने अपनी बात की पुष्टि के लिए जिन उपमानों का चयन किया है, वे या तो दरबारी वातावरण से संबंधित हैं या प्रायः सामान्य ग्रामीण जीवन से जुड़े हैं। उक्त दोहे में सच्चे मित्र की तुलना माखन से की गई है। अवसरवादी दही मही की भांति होते हैं। कुछ नीतिगत दोहों में कवि ने भाग्य और समय के संयोग को बहुत महत्त्व दिया है। रहीम का मानना है कि यदि जीवन में विपरीत समय आ जाय तो इस आशा के साथ शांत हो जाना चाहिए कि शीघ्र ही अच्छा समय भी आ सकता है–

''रहिमन चुप है बैठिए,
देखि दिनन का फेर।
जब नीके दिन आइहैं,
बनत न लागि है देर।।''

बुद्धिमान वह है जो समय को पहचान कर अपने महत्त्वपूर्ण निर्णय लेता है। समय पर लाभ उठाने से चूका तो जीवन भर उसकी पीड़ा रहती है।

''समय लाभ सम लाभ नहिं,
समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी,
समय चूक की हूक।।''

यहां उनकी अपनी पीड़ा की ध्वनि है। जहांगीर के साथ सामंजस्य न बैठाने का दंड उन्हें भोगना पड़ा था।

रहीम ने प्रेम और शृंगार पर भी अनेक दोहे लिखे हैं। अपने काव्य के माध्यम से रहीम ने जीवन के विविध व्यावहारिक पक्षों का उद्घाटन किया है। उनके काव्य का अवगाहन करने से एक तथ्य स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उन्होंने जो कुछ भी शब्दों में उतारा वह उनकी स्वानुभूति से निकला हुआ यथार्थ है। व्यक्तिगत जीवन के आरोह-अवरोह के साथ ही सामाजिक जीवन पर भी उनकी गहरी दृष्टि थी। उन्होंने एक ओर राजमहल के विध्वंसक वातावरण को देखा तो दूसरी ओर सामान्य जन की पीड़ा का भी अनुभव किया। समाज में यदि सच्चे मित्र हैं, तो नितांत स्वार्थी, अवसरवादी लोग भी हैं। बड़ों की महानता और तथाकथित बड़ों में छिपे ओछे व्यक्तियों की कुटिलता भी उनकी दृष्टि में थी। उन्होंने सम्राट से लेकर नवाबों की दुष्ट संततियों तथा उनके दुष्चरित्रों का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। उनकी रचनाओं में इसके स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं। कुपुत्र की परिभाषा करते हुए उन्होंने उसकी तुलना दीपक से की है–

''जो रहीम गति दीप की,
कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लागै,
बढ़े अंधेरों होय।।''

कितनी सटीक उपमा है। रहीम की रचनाओं का उद्देश्य केवल शब्दों का व्यायाम या भाषा का चमत्कार मात्र नहीं है। अपितु वे सामान्य जन-जीवन की समस्याओं को उठाती और उनका समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। रहीम की मुख्य विशेषता नीति के गूढ़ सिद्धांतों को छोटे से दोहे में सरलतापूर्वक प्रकट कर देता है। उनकी रचनाएं जाति और समुदाय की संकीर्ण सीमाओं का अतिक्रमण कर दो संस्कृतियों के समन्वय, विश्वजनीन मानवता के साक्षात्कार तथा भाषा और साहित्य के माध्यम से सार्वभौम आदर्शों की स्थापना की वृहत्तर भूमिका को रेखांकित करती हैं।

**4/124, आचार्य नगर, अकबरपुर,
कानपुर-209101 (उ.प्र.)**

रहीम के दोहों में जीवन के सूत्र

डॉ. परमानंद पांचाल

अब्दुर्रहीम खानखाना सम्राट अकबर के अभिभावक, सुप्रसिद्ध मुगल सरदार बैरम खां के सुपुत्र थे। उनका जन्म 1556 ई. में लाहौर में हुआ था। अपने अद्वितीय शौर्य और पराक्रम के बल पर ये अकबर के प्रधान सेनापति नियुक्त हुए। अपने महान गुणों के कारण इन्होंने अकबरी दरबार के 'नवरत्नों' में स्थान पाया और अपनी साहित्यिक प्रतिभा के बल पर ये हिंदी जगत में अमर हो गए।

उनकी मां मेवात के मुस्लिम राजपूत घराने की थीं। इस प्रकार उन्हें भारतीय संस्कार विरासत में मिले थे। रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है—''यह समझना अधिक उपयुक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं, जो धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।''

रहीम की काव्य रचनाओं पर विचार करने से पूर्व उनके समकालीन इस्लामी चिंतन धारा पर भी विचार करना अप्रासांगिक न होगा। शेख सलीम अहमद ने अपनी पुस्तक 'अब्दुर्रहीम खानखाना' में रहीम के समकालीन एक सूफी संत हजरत शेख अहमद सर हिंदी का उल्लेख किया है जो मुजद्दित-अ-फसानी (अर्थात् हजरत मुहम्मद साहब के एक हजार साल बाद उत्पन्न दूसरे सुधारक) माने जाते हैं। उन्होंने अब तक प्रचलित प्रेम और सौहार्द्र की सह-अस्तित्व की सूफी विचारधारा 'वहदत-उल-वजूद' के विपरीत एक संकीर्ण विचारधारा 'वहदतुश्शहूद' का प्रचार किया जो रहीम की उदार और सर्वधर्म समभाव की विचारधारा के विरोध में थी। शेख सलीम अहमद का इसी संदर्भ में यह कथन भी ऐतिहासिक महत्त्व रखता है कि सर सैयद हो या अल्लामा इकबाल या मौलाना मौदूदी वे सब उनके (सरहिंदी के) पैरोकार थे। सोलहवीं सदी में जिस नजरिए का बीज बोया गया आने वाली तीन सदियों में उसने एक सुदृढ़ वृक्ष का रूप धारण कर लिया और अंततः बीसवीं सदी के मध्य में भारत के विभाजन के रूप में जिसका स्वाभाविक परिणाम निकला।'' (-अब्दुर्रहीम खान, पृ. 11)

प्रसंगवश मैं यहां रहीम के काव्य के राष्ट्रीय महत्त्व को रेखांकित करने के संबंध में उस एक घटना का भी उल्लेख करना चाहूंगा जब प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन दिल्ली की निजामुद्दीन शाखा की ओर से रहीम जयंती मनाए जाने की परंपरा डाली गई और उसके कई सम्मेलनों में तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री अनंत शयनम आयंगर, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, डॉ. प्रभाकर माचवे, कमला रत्नम प्रभृति विभूतियां सम्मिलित होती रहीं। एक सम्मेलन में उस समय के केंद्रीय मंत्री लाल बहादुर शास्त्रीजी को विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया था, किंतु वे अपनी अन्यत्र व्यस्तता के कारण नहीं आ सके। हमने हिंदी के प्रबल पक्षधर समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहियाजी से आग्रह किया कि वे रहीम जयंती पर हमारा आतिथ्य स्वीकार करे। वे नहीं माने और कहा वहां तो शास्त्रीजी को आना था, मैं क्यों आऊं? आग्रह पर भी वे जब नहीं माने तो हम उनके घर धरने पर बैठ गए। इस पर विवश होकर उन्होंने कहा कि मैं बाबर को भारतीय नहीं मानता, वह हमलावर था, किंतु अकबर और रहीम को मैं भारतीय मानता हूं। वे तैयार हो गए और स्वयं अपने किराए की टैक्सी में सम्मेलन में पधारे।

रहीम बहुभाषाविद थे। फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता होते हुए भी इन्होंने भारतीय भाषा हिंदी और विशेषकर ब्रजभाषा को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। भारतीय संस्कृति के मोह ने ही उनसे लेखनी पकड़ कर ब्रजभाषा काव्य की रचना करवाई। उन्हें बरबस आनंद कंद श्रीकृष्ण की लीला-भूमि ब्रज की ओर उन्मुख किया, जिसके कारण उन्होंने ब्रजभाषा में ऐसे अमर काव्य की रचना कर डाली जो सदियों से जनमानस की जिह्वा पर आज भी विराजमान है।

रहीम ने वैसे तो अनेक पद, सोरठे, सवैये आदि ब्रजभाषा में लिखे हैं किंतु उनके द्वारा विरचित नीति के दोहे हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं जो समाज के दीर्घकालीन अनुभवों पर आधारित हैं। रहीम ने दुनिया देखी थी। वे जीवन के उत्कर्ष-अपकर्ष, यश-अपयश, संपदा और विपदा सभी से गुजर चुके थे। इनके द्वारा विरचित नीति के दोहों में आत्मानुभूति, गंभीर सांसारिक अनुभव, उदार दृष्टि, दृष्टांत और सुंदर कल्पना तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण के गुण विद्यमान हैं। इनके वचन शब्दों के कोरे वाक्य मात्र नहीं हैं वरन् इनमें जीवन के घात-प्रतिघात के बीच रहकर प्राप्त की गई इनकी अनुभूतियां हैं। रहीम के इन दोहों में विषय की दुरुहता, भाव शिथिलता और कल्पना की झूठी उड़ान नहीं झलकती। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के लिए समान रूप से ग्रहण करने योग्य सामग्री इनमें प्राप्त है। अपने मन की व्यथा को दूसरों को सुनाने से क्या लाभ? क्या कोई उसमें भागीदार हो सकता है? रहीम के शब्दों में सुनिए—

''रहिमन या दुःख की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि इठलैहैं लोग सब, बांट लेय नहीं कोय।।''

ये नैतिक सत्यों के समर्थन में पौराणिक ग्रंथों से ऐसी अनेक घटनाएं प्रस्तुत करते हैं कि पढ़कर चित्त गद्गद हो जाता है। मान द्वारा पिलाया गया विष भी उन्हें अमृत तुल्य लगता है। क्योंकि—

''मान सहित विष खाय के, संभू भयो जगदीश।
बिना मान अमृत पियो, राहु कटायौ शीश।।''

बड़े व्यक्तियों की चाहे कोई भी कितनी निंदा क्यों न करे उनकी महानता में कहीं कोई कमी नहीं आती। कृष्ण को मुरलीधर कहने से उनकी महानता में क्या अंतर पड़ गया। देखिए–

''जो बड़ेन को लघु कहे,
नहीं रहीम घटि जाहि।
गिरिधर मुरलीधर कहे,
कहु दुःख मानती नाहिं।।

रहीम अपनी नीति की उक्तियों की पुष्टि समीपवर्ती पदार्थों तथा क्रियाओं से भी करते हैं। जिन वस्तुओं और घटनाओं में हम कोई विशेषता नहीं देखते। उनमें से ही ऐसे दृष्टांत निकाल लेते हैं कि कुछ कहते नहीं बनता–

''रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर न जुरे, जुरे गांठ परी जाय।।''

ये सामान्य वस्तुओं पर भी इतनी तीव्र निगाह डालते हैं कि तुरंत ही उनमें से कोई काव्योपयोगी नैतिक तथ्य निकाल लेते हैं–

''रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई, कहा कैर तरवारि।।''

नयनों में आंसू बहते देखकर रहीम ने प्रसिद्ध उक्ति 'घर का भेदी लंका ढावै' के माध्यम से एक मार्मिक सत्य का कितना सुंदर उद्‌घाटन किया है। देखिए–

''रहिमन अंसुआ नयन ढरि,
जिय दुःख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते,
मसन भेद कह देइ।।''

रहीम भक्त कवि थे। इन्होंने अपने सभी प्रकार के छंदों से भक्ति भावना का समुचित परिचय दिया है। राम, कृष्ण, शिव आदि देवों की भक्ति तो रहीम के काव्य में है ही, सूर्य, गणेश, सरस्वती आदि की वंदना भी कवि ने की है। इनसे रहीम की अनन्य भक्ति, धार्मिक सहिष्णुता तथा हिंदू धर्म के प्रति इनकी श्रद्धा का भाव सहज ही प्रकट हो जाता है। उन्होंने अपनी दोहावली का आरंभ भी गंगा की स्तुति से किया है।

भक्त रात-दिन कृष्णभक्ति में इतना लीन रहता है कि उसे अपने चारों ओर की चिंता भी नहीं रहती–

''जिमि रहीम न आपनौ, कीन्हौ चारू चकोर।
निसि वासर लाग्यौ रहे, कृष्ण चंद की ओर।।''

उनके मन में तो अपने 'प्रीतम' की छवि समा गई है, फिर अन्य को वहां प्रवेश कहां–

''प्रीतम छवि नैनन बसी,
पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि,
आप पथिक फिर जाए।।''

रहीम ने कृष्ण की रूप माधुरी की विशद व्यंजना की है। अपने पदों में कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन मधुर ब्रजभाषा में किया है। पदों की शब्द योजना श्रुति, मधुर और संगीतात्मकता है। भाव और भाषा दोनों दृष्टि से ये पद सूरदास के पदों से होड़ लेते हैं। उनके रूप लावण्य, मुरली की मोहकता पर कवि रीझ गए हैं। कृष्ण के कमल नेत्र, उनकी मंद मुस्कान, दांतों की दुति, विशाल हृदय पर स्थित मोतियों की माला और साथ में पीतांबर की शोभा देखते ही बनती है। देखिए–

''कमल दल नैनन की उन्मानि,
बिसरत नाहि मो मन ते,
मंद मंद मुसकानि।
यह दसननि दुति चपला हूं,
ते महा चपल चमकानि।
वसुधा की बस करी मधुरता,
सुधा पगी बतरान।
चढ़ी रहे चित्त उर विशाल की,
मुक्त माल थहरानि।
नृत्य पीतांबर हू की,
फहरि फहरि फहरानि।
अनुदिन श्री वृंदावन ते,
आवन-आवन जानि।
अब रहीम चित ते न टरत है,
सकल स्याम की बानि।।''

कुंज में मुरली रव गूंजत ही ब्रज वनिताओं पर जो कुछ बीती उसका चित्रण कवि भक्त कैसे कर सकता है?

''मुरली बाजी कुंज में, गोपें घर बेहाल।
जिण देखी मूरति मधुर, उण से पूछो हाल।।''

रहीम को अपने जीवन काल में अनेक संघर्षों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जहांगीर के दरबारी संगी साथी रहीम के प्रति दुर्भाव रखते थे। वे ईर्ष्या और जलन के कारण रहीम के कार्यों में आए दिन बाधा डालते थे। जहांगीर उनसे क्षुब्ध रहने लगा। वे आगरा छोड़ चले गए और चित्रकूट में रहने लगे। उन्होंने अपनी इस व्यथा का उल्लेख इस दोहे में किया है–

''चित्रकूट में रमि रहे,
रहिमन अवध नरेश।
जा पर विपदा पड़त है,
वे ही आवत इहिं देश।।''

रहीम का काव्य स्फुट काव्य है। उन्होंने किसी प्रबंध काव्य की रचना नहीं की थी। इनकी हिंदी रचनाएं विभिन्न शीर्षकों से प्रकाशित हुई हैं, जिनमें प्रायः रहीम की ये रचनाएं संग्रहीत हैं–दोहावली, नगर शोभा, शृंगार सोरठा, बरवै नायिका भेद, 101 स्वतंत्र बरवै, मदनाष्टक, खेट कौतुक जातकम् (संस्कृत), फुटकल पद, सवैये और कवित्त।

रहीम की रचनाएं रहीम के फुटकल छंदों में शृंगारिक भावनाओं का ही समावेश हुआ है जिनमें विप्रलंभ शृंगार का ही प्राधान्य है। इनमें छः छंदों में कृष्ण की स्तुति के बाद वियोग संबंधी छंद हैं। इनमें विरहिणी की विरह व्यथा का सजीव चित्रण हुआ है। कवि की बरवै नायिका भेद रचना में विभिन्न प्रकार की नायिका के भेद-उपभेद हैं। एक प्रकार से रहीम बरवै छंदों के आविष्कारक ही हैं। कहा जाता है कि रहीम को बरवै छंदों की प्रेरणा अपने एक सैनिक की पत्नी से मिली थी। सैनिक विवाह की छुट्टी पर अपने घर गया था। छुट्टी बीत गई किंतु वह नहीं आया। जब चलने लगा तो बहुत चिंतातुर हुआ। सैनिक की पत्नी ने चिंता का कारण जानकर उसे एक

छंद लिखकर खानखाना की सेवा में भेजा जो इस प्रकार था–

''प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय,
सींचने की सुधि लीजौ मुरझिन जाए।।''

खानखाना इस छंद के बिरवै शब्द से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बरवै छंद में नायिका भेद ही लिख डाला। यह भी प्रचलित है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने ग्रंथ 'बरवै रामायण' की रचना भी रहीम द्वारा प्रयुक्त बरवै छंदों के आधार पर ही की थी। बाबा वेणी माधव दास कृत 'मूल गुंसाई चरित' में यह छंद मिलता है–

''कवि रहीम बरवै रचै, पठयै मुनिवर पास।
लखि तेहि सुंदर छंद में, रचना किए प्रकाश।।''

रहीम ने सोरठे, सवैये, घनाक्षरी छंदों की भी रचना की थी। एक सुंदर सवैये में 'भाव और कला' का कितना सुंदर निर्वाह हुआ है। एक ब्रज वनिता आनंद कंद श्रीकृष्ण को देखकर रीझ गई तो रहीम की भावनाएं यों उमड़ पड़ीं–

''जाति हुती सखी गाहेन में,
मन मोहन को लखि के ललचानो।
नागरि नारी नई व्रज की,
उन्हूं नंदलाल की रीझिबो जानो।
जाति भई फिरि कैं चितई,
तब भाव रहीम यह उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिर,
तीर सौं मारि लै जाति निसानौ।।''

रहीम के काव्य में प्रायः सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। रहीम वर्ण्य विषय का उल्लेख मात्र ही नहीं कर देते, अपितु साहित्य मर्मज्ञ होने के नाते उसे किसी न किसी अलंकार से चमत्कृत भी करते हैं–

''रहिमन अपने पेट सों,
बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अन खाए रहे,
तो सो को अन खाए।।''
–(यमक अलंकार)

ब्रज में अनेक समकालीन कवि उनके काव्य सौष्ठव पर मुग्ध थे। केशव, गंग, जाडा मंडन, प्रसिद्ध कवि संत कवि हरिनाथ, नरहरि, तारा मुकंदर आदि अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं में रहीम की प्रशंसा की है। रहीम अपने समकालीन कवियों का बड़ा आदर करते थे। जनश्रुति है कि एक बार एक ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए धन हेतु गोस्वामी तुलसीदास जी के पास आया। गोस्वामी जी ने एक दोहे की यह पंक्ति लिखकर उसे रहीम के पास भेज दिया–

''सुरतिय नरतिय नागतिय,
सब चाहत अस कोय।''

रहीम ने बहुत सा धन ब्राह्मण को देकर विदा किया और दोहे की अर्द्धाली को इस पंक्ति से पूरा कर दिया–

''गोद लिए हुलसी फिरे,
तुलसी सो सुत होय।।''

इनकी दानवीरता को देखकर कवि गंग ने कहा था–

''सीखे कहां नवाबजू, ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचे कियौ, त्यों त्यों नीचे नैन।।''

कहा जाता है कि इसका उत्तर रहीम ने कितना विनम्र होकर इस प्रकार दिया था–

''देनहार कोउ और है, देत रहत दिन रैन।
लोग भरम मो पै करैं, या ते नीचे नैन।।''

चकित होकर 'आसकरण' नामक कवि, जिनका उपनाम 'जाडा' था, यूं कह उठे कि ''खानखाना का मेरु पर्वत सा मन साढ़े तीन हाथ की देह में आ गया।''

''खानखाना नवाब हों, पाहि अचंभी एक।
मायो किमि गिर मेरु मन, साढ तिहस्सी देह।।''

रहीम हिंदी के ही कवि नहीं थे। अरबी, फारसी, तुर्की और संस्कृत भाषा पर भी उनका अधिकार था। फारसी रचनाओं का उनका एक दीवान भी उपलब्ध है। इन्होंने तुज़के बाबरी का अनुवाद फारसी भाषा में किया था जो 'वाके आत बाबरी' के नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत में भी इनकी रचनाएं 'रहीम ग्रंथावली' में संकलित हैं। 'खेट कौतुक जातकम' उनका एक ज्योतिष ग्रंथ है, जिसकी रचना संस्कृत श्लोकों में फारसी के मिश्रण से की गई है। यह एक ऐसा ही प्रयोग है जैसाकि इनसे लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व अमीर खुसरो (1256-1356) ने फारसी और हिंदी के मिश्रण से गजल लिखकर किया था। रहीम बहुभाषाविद थे। मुंशी देवीप्रसाद ने 'खानखाना नामा' में रहीम को सप्त भाषाविद कहा है। अबुल फजल जैसे विद्वान भी रहीम के भाषा ज्ञान के मुरीद थे। आर.पी. मसानी ने भी अपनी पुस्तक 'कोर्ट पोएट्स ऑफ ईरान एंड इंडिया' में रहीम के अरबी भाषा ज्ञान का उल्लेख किया है। ये संगीत प्रेमी भी थे। तानसेन के संगीत पर उनका यह दोहा प्रसिद्ध है–

''विधना यह जिय जानि कै,
सेसहि दिए न कान।
धरा मेरु सब डोलते,
तानसेन की तान।।''

अस्तु, हम रहीम के व्यक्तित्व में एक भारतीय रूप देखते हैं। राष्ट्रीयता की विशुद्ध भावना इनके अंदर परिलक्षित होती है। जाति, धर्म और वंश की संकीर्णता इनका दामन न पकड़ सकी। यही कारण है कि आज 'सेनापति खानखाना' की तलवार की चमक तो बाकी नहीं रही, किंतु रहीम के दोहे आज भी जन-जन की वाणी पर जीवित हैं। इनका अरबी, फारसी का कलाम भले ही पुस्तकालयों की कैद में मिले, किंतु इनका हिंदी काव्य तो जनमानस का कल्याण आज भी कर रहा है। अकबर के नौरत्नों के रूप में बेशक इनकी आभा इतनी न रही हो, किंतु हिंदी के 'अमूल्य रत्न' के रूप में सदैव इनकी ज्योति समाज का मार्ग रोशन करती रहेगी। इनका दीनों को दिया गया दान सदा ही इनकी कीर्ति के गीत गाता रहेगा।

**232-ए, पाकेट-1, मयूर विहार फेज-1,
दिल्ली-110091**

बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी

स्नेह ठाकुर

मुगल बादशाह हुमायूं के विश्वासपात्र सेनापति बैरम खां, जिनके संरक्षण में हुमायूं अपने 13 वर्षीय पुत्र अकबर को छोड़ मृत्यु के आगोश में चले गए थे और जिन्होंने अकबर की उस छोटी-सी उम्र में ताजपोशी कर मुगल साम्राज्य के विस्तार की नींव रखी, के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना ने 17 सितंबर, सन् 1556 को लाहौर में सुल्ताना बेगम की कोख से जन्म लिया।

चार वर्ष की उम्र में पिता बैरम खां की हत्या के बाद सम्राट अकबर ने उन्हें अपने धर्मपुत्र की भांति पाला-पोसा व बाद में सुल्ताना बेगम से निकाह भी कर लिया।

अब्दुर्रहीम की शिक्षा उदार धार्मिक वातावरण में हुई। अकबर की उदार धर्मनिरपेक्ष नीति ने उनकी शिक्षा को गंगा-जमुनी संस्कृति से ओत-प्रोत कर दिया। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र हिंदू संस्कृति की छाप दृष्टिगत होती है। वरन यह कहा जाए तो अधिक न्यायसंगत होगा कि हिंदू धार्मिक ग्रंथों का उन्होंने गहन अध्ययन किया है। हिंदू धर्म से उन्हें लगाव था। उन्होंने संस्कृत और हिंदी में जो काव्य-सृजन किया उसमें भगवान राम, कृष्ण, विष्णु और गंगा आदि का बार-बार उल्लेख आता है। जन्म से भले ही वे मुसलमान हों लेकिन कर्म से सर्वधर्म समभाव की जीवंत मिसाल थे। अरबी, फारसी आदि भाषाओं पर भी उनकी गहरी पकड़ थी। बहुभाषाविद् रहीम ने जाति-धर्म से ऊपर उठ कर मानव-धर्म को प्रश्रय दिया और इतिहास में एक सच्चे मानवतावादी के रूप में उभरे।

सुशासन और शौर्य के गुण अब्दुर्रहीम को विरासत में मिले थे। सम्राट अकबर द्वारा सौंपे गए कई जोखिम भरे कामों में रहीम सदैव खरे उतरे। 17 वर्ष के रहीम ने सन् 1573 में गुजरात की बगावत को कुचलने में सम्राट अकबर के साथ उनकी सेना की मध्य कमान को इस रण-कौशल से संभाला कि विजयोपरांत सम्राट अकबर ने उन्हें गुजरात प्रांत का सूबेदार बना दिया।

अकबर ने अब्दुर्रहीम को 'मीर अर्ज' के पद पर भी नियुक्त किया। जनता 'मीर अर्ज' के माध्यम से सम्राट तक अपनी फरियाद पहुंचाती थी और उसी के माध्यम से उसे उसका जवाब मिलता था। अतः इस पद हेतु जनता और राजा दोनों का ही विश्वस्त होना आवश्यक था। इस प्रकार यह एक महत्त्वपूर्ण पद था। रहीम की सर्वगुण क्षमता से प्रभावित होकर सम्राट अकबर ने उन्हें अपने नौ-रत्नों में शामिल किया और 'खानखाना' की उपाधि से अलंकृत किया। शाही खानदान की परंपरा के अनुसार अकबर ने अब्दुर्रहीम को 'मिर्जा खां' की उपाधि से भी अलंकृत किया था। सम्राट अकबर द्वारा अब्दुर्रहीम के गुणों को मान्यता देना, उनके द्वारा अब्दुर्रहीम को अपने शहजादे सलीम (जहांगीर) का संरक्षक बना देना, उनके प्रति विश्वास को प्रमाणित करता है।

रहीम अर्थात् अब्दुर्रहीम खानखाना कवि के रूप में अधिक जाने जाते हैं। रहीम के दोहे लोगों की जुबान पर थिरकते थे और थिरकते हैं क्योंकि वे कालजयी हैं। अपने दोहों में उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। उन्होंने राजनीति, समाज, नैतिक शिक्षा, शृंगार आदि अनेक विषयों को अपने दोहों के केंद्र में रखा है। उनके दोहे आज के समाज और परिवेश में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने वे रहीमकालीन परिवेश में थे।

रहीम मध्य युग के प्रमुख भक्त कवियों में से हैं। उनके दर्शन और अध्यात्म ज्ञान से भरे भक्ति दोहों की छटा अनुपम है—

''अमर बेलि बिनु मूल की,
प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि,
खोजत फिरिए काहि।।''

जो ईश्वर बिना जड़ की अमर बेल का भी पालन-पोषण करता है, ऐसे ईश्वर को छोड़कर बाहर किसे खोजते फिर रहे हो। अरे! ऐसा ब्रह्म, प्रभु तुम्हारे अंदर ही है, उसे वहीं खोजो—

''अब रहीम मुसकिल परी,
गाढ़े दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं,
झूठे मिलैं न राम।।''

रहीम कहते हैं, सांसारिक सुख और आध्यात्मिक आनंद दो विपरीत ध्रुव हैं। एक को छोड़ोगे तो तभी दूसरा मिलेगा। सच्चाई, मोह-माया को त्याग दोगे तो सांसारिक सुख नहीं मिलेंगे और इनके त्यागे बिना आध्यात्मिक आनंद नहीं मिलेगा।

''अंजन दियो तो किरकिरी,
सुरमा दियो न जाय।

जिन आंखिन सौं हरि लख्यो,
रहिमन बलि-बलि जाय।।''

रहीम कहते हैं, काजल और सुरमा सब व्यर्थ हैं। मैंने तो जब से इन आंखों से ईश्वर के दर्शन किए हैं, इन आंखों में ईश्वर को बसा कर धन्य हो गया हूं।

''कमला थिर न रहीम कहि,
यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू,
क्यों न चंचला होय।।''

रहीम कहते हैं कि सब जानते हैं, लक्ष्मी चंचल होती है। यह कहीं स्थाई नहीं ठहरती। आखिर यह पुरातन पुरुष भगवान की नव-यौवना वधू है, फिर एक स्थान पर कैसे ठहर सकती है? फिर भी कुछ लोग से अपनी मान बैठते हैं और झूठे मोह में फंसे रहते हैं।

''कहु रहीम केतिक रही,
केतिक गई बिहाय।
माया-ममता मोह परि,
अंत चले पछिताय।।''

रहीम पूछते हैं—कितना जीवन शेष है और कितना बर्बाद कर दिया, जरा इस पर विचार करें; क्योंकि माया, ममता और मोह में फंसकर आदमी सांसारिक क्षणिक सुख तो भोग लेता है, लेकिन स्थाई आध्यात्मिक सुख से वंचित होकर मृत्यु के समय पछताता है और खाली हाथ जाता है। इसलिए क्षणिक सुखों को त्याग कर स्थाई सुख पाने का प्रयास करें।

''गहि सरनागत राम की,
भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर,
और न कछु उपाव।।''

राम की शरण लो। वही भवसागर की नाव हैं, जो तुम्हें इस माया-मोह के क्षणिक भौतिक संसार से छुटकारा दिला सकती हैं। इसके अलावा मुक्ति का और कोई उपाय नहीं है।

''चरण छुए मस्तक छुए,
तेहु नहिं छांड़ति पानि।
हियो छुवत प्रभु छोड़ दै,
कहु रहीम का जानि।।'

प्रभु का भजन-पूजन, व्रत-उपासना, यज्ञ-हवन सब किए, लेकिन मोह-माया ने पीछा नहीं छोड़ा। लेकिन प्रभु को हृदय में बसाते ही सारे विकार दूर हो गए और तन-मन निर्मलता से भर गए अर्थात् हृदय से भजने पर ही प्रभु प्राप्त होते हैं।

''छिमा बड़न को होत है,
छोटेन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो,
जो भृगु मारी लात।।''

छोटे बच्चे तो स्वभाववश शरारतें करते हैं, लेकिन बड़ों को उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। क्षमाशीलता का गुण बड़े लोगों के स्वभाव में शामिल होना चाहिए। भृगु ऋषि ने सहनशीलता की परीक्षा लेने के लिए विष्णु जी के सीने पर लात मारी, लेकिन उन्होंने भृगु जी को क्षमा कर दिया।

''ज्यों नाचत कठपूतरी,
करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों,
नहीं आपने हाथ।।''

जिस प्रकार कठपुतली किसी और के इशारे पर नाचती है, वैसे ही प्राणियों के कर्म उनके शरीर को नचाते हैं। ऐसे में हाथ-पैर और सारे अंग प्राणियों के नियंत्रण में नहीं रहते, किसी दैवी सत्ता के आधीन होते हैं।

''तन रहीम है करम बस,
मन राखौ वहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों,
खैंचत गुन के जोर।।''

हमारा तन तो पूर्वजन्म के कर्मों के आधीन होता है, लेकिन हमारा हृदय सब बंधनों से मुक्त होता है, इसलिए इसे आत्म-नियंत्रित करके प्रभु भक्ति की ओर लगाएं। जैसे बहाव के विरुद्ध तैरती नाव को रस्सी के सहारे खींच कर किनारे कर दिया जाता है, उसे डूबने नहीं दिया जाता।

''दुःख नर सुनि हांसी करैं,
धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि-सुनि करैं,
ऐसे वे रघुवीर।।''

लोगों के सामने अपना दुखड़ा मत रोओ। ये धीरज बंधाना तो दूर, केवल हंसने वाले हैं। भगवान राम के पास जाओ, वे सबकी सुनते हैं और सुन कर तुरंत पीड़ा का निवारण करते हैं। वे कृपानिधान भगवान राम ही एकमात्र ऐसे हैं।

''धन दारा अरु सुतन सौं,
लग्यौ है नित चित्त।
नहिं रहमी कोऊ लख्यो,
गाढ़े दिन को मित्त।।''

अपना यौवन धन, स्त्री और संतान में ही न लगाए रहें। इस मोह-माया के क्षणिक सांसारिक सुख में तुम्हारा कल्याण नहीं है। वृद्धावस्था में तुम्हें जब किसी साथी की जरूरत होगी तो उसे कहां ढूंढोगे? इसलिए अभी से प्रभु को अपना साथी बना लो, वे ही संकट में तुम्हारा साथ देंगे।

''धूर धरत नित सीस पर,
कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी,
सो ढूंढत गजराज।।''

गजराज मार्ग की धूल को सूंड से अपने माथे पर मलता हुआ क्यों चलता है? शायद वह भगवान् श्रीराम की उस पवित्र-पावन चरण-रज को ढूंढता चलता है जिसके स्पर्श मात्र से गौतम मुनि की पत्नी अहल्या का उद्धार हो गया था। वह धूल कहीं मिल जाए तो उसका भी कल्याण हो जाए।

''परि रहिबो मरिबो भलो,
सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो,
दियो भलो उपदेस।।''

जीवन-मृत्यु के चक्र में उलझे रहो, कठिन संकट सह लो, चाहे मृत्यु को गले लगा लो; लेकिन किसी से छल-प्रपंच मत करो। विष्णु

जी ने वामन अवतार लेकर बलि के साथ छल किया तो शायद यही उपदेश देने के लिए कि छल करोगे तो बौने होकर अपनी ही दृष्टि में गिर जाओगे।

''मान सहित विष खाय के,
संभु भए जगदीस।
बिना मान अमृत पियो,
राहु कटायो सीस।।''

देवगणों ने विष प्रस्तुत किया तो जगत्-कल्याण के लिए भोले शंकर ने उसे सप्रेम ग्रहण कर लिया और वे जगदीश्वर के रूप में पूजित हुए और राहु ने कुटिलता से अमृत पान किया तो उसे अपना सिर कटवाना पड़ा और अपमानित होना पड़ा सो अलग। अर्थात् मान का विषपान भी बड़ा है और अपमानपूर्वक राज सिंहासन भी ग्रहणीय नहीं है।

''मांगे मुकरि न को गयो,
केहि न त्यागियो साथ।
मांगत आगे सुख लह्यो,
ते रहीम रघुनाथ।।''

मांगने पर किसने इनकार नहीं किया, किसने साथ नहीं छोड़ा? अर्थात् सबने इनकार किया और साथ छोड़ दिया। लेकिन एकमात्र भगवान राम ही हैं, जो याचक को देख कर प्रसन्न होते हैं और उसकी सभी कामनाएं पूरी कर देते हैं। इसलिए लोगों की बजाए भगवान से मांगो।

''मुनि नारी पाषान की,
कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू,
तीनों मेरे अंग।।''

हे प्रभु राम! आपने गौतम मुनि की पाषाण-पत्नी अहल्या का उद्धार किया, अपनी पशु स्वभाव वानर सेना और निषादराज निम्न जाति गुह का कल्याण किया, जो जन्म से चांडाल था। मुझमें ये तीनों अवगुण बसे हैं। मेरा हृदय पत्थर सदृश है, भजन-पूजन मुझे आता नहीं है, इसलिए पशु-स्वभावी हूं और कर्मों से चांडाल हूं। अतः एकमात्र आप ही हैं जो मेरा उद्धार कर सकते हैं।

''रहिमन गली है सांकरी,
दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं,
हरि तो आपुन नाहिं।।''

तुम्हारे अंतर्मन की गली बहुत संकीर्ण है। इसमें केवल एक ही व्यक्ति समा सकता है। यदि इसमें तुम्हारा अहं भाव रहेगा तो प्रभु नहीं समा पाएंगे और प्रभु को बसाओगे तो अहं भाव को जगह खाली करनी होगी। फैसला तुम्हारे हाथ में है।

''रहिमन धोखे भाव से,
मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति,
कामादिक कौ धाम।।''

राम का नाम भवसागर से पार पाने का अचूक अस्त्र है। कोई भूल से भी राम-नाम का सुमिरन कर लेता है तो उसका कल्याण हो जाता है; फिर चाहे वह काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से ही ग्रस्त क्यों न हो।

''रहिमन यह तन सूप है,
लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै,
गरुए राखि बटोर।।''

यह शरीर सूप के समान है। इसे भक्ति-भाव और सत्य-ज्ञान से पछोर कर हल्के पदार्थों अर्थात् मोह-माया आदि विकारों को उड़ा दें और ज्ञान तथा भक्ति के सुघड़ दानों का संग्रह कर लें।

''हरी-हरी करुना करी,
सुनी जो सब ना टेर।
जग डग भरी उतावरी,
हरी करी की बेर।।''

'हरि-हरि' की करुणा भरी पुकार सुन कर विष्णु भगवान् विचलित हो उठते हैं और भागे-भागे आकर मगरमच्छ की जकड़ से गजराज को मुक्त कराते हैं। अतः ऐसे मुक्तदाता श्रीहरि को भजना ही सार्थकता है।

रहीम अपने लिए क्या मांगते हैं–

''अच्युत चरन तरंगिनी,
शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी,
कीजो इंदव भाल।।''

हे मां गंगा! आप श्रीहरि विष्णु के चरणों को पखारती हैं और शिवजी के मस्तक पर मालती के फूलों की तरह सुशोभित रहती हैं। जब आप मेरी मुक्ति करें तो देवलोक में मुझे हरि मत बनाना, शिव बनाना, जिससे कि मैं आपको अपने सिर पर धारण कर सकूं।

अब नीतिपरक शिक्षा संबंधी दोहों की बानगी देखिए–

''अधम बचन तो को फल्यो,
बैठि ताड़ की छांह।
रहिमन काम न आइहै,
ये नीरस जग मांह।।''

नीच आदमी से मित्रता ताड़ के वृक्ष की छाया में बैठने के समान है, जो निरर्थक है। रहीम कहते हैं कि नीच लोग केवल अपने स्वार्थ के बारे में सोचते हैं, वे दूसरों का भला कभी नहीं कर सकते।

''अनुचित बचन न मानिए,
जदपि गुराइसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ ते,
सुजस भरत की बाढ़ि।।''

भरपूर दवाब पड़ने पर भी अनुचित कार्य कभी न करें। जिस कार्य को करने के लिए आपका अंतर्मन गवाही न दे, वह कार्य कोई बड़ा व आदरणीय व्यक्ति भी कहे तो भी न करें।

''आदर घटे नरेस ढिग,
बसे रहे कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिन मिले,
धिक जीवन जग मांहि।।''

जहां आपका सम्मान न हो, ऐसे राजा या उच्चाधिकारी के पास कभी मत रहो। रहीम कहते हैं, ऐसे स्थानों पर भले ही करोड़ों रुपए मिलें, तो भी ऐसा अपमानित जीवन निरर्थक है।

''आप न काहू काम के,
डार-पात फल-फूल।
औरन का रोकत फिरैं,
रहिमन पेड़ बबूल।।''

जैसे बबूल के पेड़ के पत्ते, फल, फूल, डालें आदि किसी काम के नहीं होते और दूसरे पेड़ों को फूलने-फलने से रोकते हैं, वैसे ही बबूल जैसे दुर्जन लोग दूसरों की उन्नति से ईर्ष्या करके उनके मार्ग में अवरोध खड़े करते हैं। ऐसे लोगों से बचना चाहिए।

'करमहीन रहिमन लखो,
धसौ बड़े घर चोर।
चिंतत की बड़ लाभ के,
जगत ह्वैगो भोर।।''

कर्महीन व्यक्ति सपने में एक बड़े घर में चोरी करने जाता है और बड़ी धन-दौलत पर हाथ साफ कर लेता है। वह मन ही मन बड़ा खुश होता है, लेकिन सुबह जब सपना टूटता है तो उसकी सारी खुशी काफूर हो जाती है अर्थात् कर्म से ही फल मिलता है।

''एकै साधे सब सधे,
सब साधे सधि जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो,
फूलै-फलै अघाय।।''

एक काम को मन लगाकर करने से बाकी सारे काम अपने आप पूरे हो जाते हैं, जैसे वृक्ष की एकमात्र जड़ को सींचने पर पत्ते, डालियां, फूल और फल सब अपने आप फलते-फूलते हैं।

''कहि रहीम संपत्ति सगे,
बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे,
तेइ सांचे मीत।।''

जब आदमी के पास धन-दौलत होती है तो लोग तरह-तरह के रिश्ते निकाल कर उससे संबंध बनाने की कोशिश करते हैं। लेकिन संकट पड़ने पर ऐसे सभी लोग भाग खड़े होते हैं। जो संकटकाल में भी साथ में डटा रहे, वही सच्चा मित्र होता है।

मांगने वाले और देने वाले के गुणों का उत्तम उदाहरण देते हुए रहीम ने कहा—

''को रहीम पर द्वार पै,
जात न जिय सकुचात।
संपत्ति के सब जात हैं,
बिपति सबै लै जात।।''

रहीम कहते हैं, कौन स्वाभिमानी चाहेगा कि वह किसी के द्वार पर मांगने जाए। लेकिन जब भी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो लोग समर्थ-संपत्तिवान के यहां ही जाते हैं और विपत्ति उन्हें वहां ले जाती है। ऐसी दशा में संपत्तिवानों को पीड़ित का सत्कार करना चाहिए और पीड़ितों को भी याचना में झिझक नहीं करनी चाहिए। दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं—

''गरज अपनी आप सों,
रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलवधू,
पर घर जात लजाय।।''

स्वाभिमानी लोग अपनी जरूरत के लिए सगे-संबंधियों के सामने भी हाथ नहीं फैला सकते। जैसे घर की बहू पड़ोसियों के यहां जाने में शरमाती है। अर्थात् याचना से बेहतर यह है कि स्वयं ही आगे बढ़ कर याचक की सहायता कर दी जाए। इसमें याचक और सहायक दोनों का बड़प्पन रह जाता है।

''रहिमन वे नर मर चुके,
जे कहुं मांगन जांहिं।
उनते पहिले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

रहीम! किसी से याचना करने के साथ ही याचक का स्वाभिमान समाप्त हो जाता है, जिससे वह मृतप्राय हो जाता है। लेकिन उससे भी पहले वे मृतप्राय हो जाते हैं जो उस याचक को देने से इनकार कर देते हैं।

उपर्युक्त दोहों में रहीम ने यथार्थ, मानवतावादी, हृदय को छूने वाली मार्मिक नीतिपूर्ण शिक्षा दी है।

पुनः वे सांसारिक यथार्थ पर आ जाते हैं और कहते हैं—

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुए मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

खीरे का मुंह काट कर उस पर नमक रगड़ा जाता है। इस प्रकार उसकी कड़वाहट दूर हो जाती है। रहीम कहते हैं, कड़वे मुंह वाले को ऐसी ही सजा देनी चाहिए। अर्थात् जो कड़वा बोलेगा, वह सजा पाएगा और अपमान झेलेगा। अतः इससे बचना चाहिए।

''कैसे निबहैं निबल जन,
करि सबलन सों बैर।
रहिमन बसि सागर विषे,
करत मगर सों बैर।।''

कमजोर लोगों को ताकतवरों से दुश्मनी नहीं करनी चाहिए। रहीम कहते हैं, समुद्र के पानी में रह कर मगरमच्छ से दुश्मनी मोल नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि पानी ही तो मगरमच्छ की असली ताकत है। वहां तो आपकी हार निश्चित है।

''जब लगि जीवन जगत में,
सुख-दुःख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों,
परत दुहुन सिर चोट।।''

समाज में मिल-जुल कर रहने से दुःख भी सुख में बदल जाते हैं। लेकिन अकेले अलग रहने से दुःख ज्यादा पीड़ित करते हैं। जैसे चौपड़ के खेल में अकेली गोटी पिट जाती है और समूह में रखी सुरक्षित रहती है।

''जो रहीम मन हाथ है,
तो तनु कहुं किन जाहिं।

ज्यों जल में छाया परे,
काया भीजत नाहिं।।''

जिसका अपने मन पर नियंत्रण है, उसका शरीर कहीं नहीं भटक सकता, चाहे वह बड़ी से बड़ी बुराइयों के बीच पहुंच जाए। जैसे जल में परछाई पड़ने से शरीर नहीं भीगता अर्थात् मन को साधने से शरीर स्वतः सध जाता है।

आत्मिक संबंधों के लिए क्या ही बड़ी ऊंची बात कही है–

''टूटे सुजन मनाइए,
जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोहिए,
टूटे मुक्ताहार।।''

आपका प्रिय मित्र या बंधु रूठ जाए तो उसे सौ-सौ बार भी मनाना पड़े तो मनाइए, क्योंकि मित्रता में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। छोटी-छोटी बातों से यों मित्रता को तोड़ा नहीं जाता। यह संबंध असाधारण होता है, जैसे मोतियों का हार जितनी बार भी टूटता है, उसे फिर से पिरोकर बना लिया जाता है।

''तरुवर फल नहिं खात है,
सरवर पियत न पान।
कहि रहीम पर काज हित,
संपत्ति-संचहि सुजान।।''

जिस प्रकार वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाता और सरोवर स्वयं अपना पानी नहीं पीता, उसी प्रकार सज्जन पुरुष परमार्थ के लिए धन-दौलत का संग्रह करते हैं अर्थात् संग्रह करना है तो परमार्थ के लिए करें।

''तै रहीम अब कौन है,
एती खैंचत बाय।
खस कादग को पूतरा,
नमी मांहि खुल जाय।।''

हे मनुष्य! तू झूठे गर्व और अभिमान में इतना मत फूल। यह जीवन क्षणिक है और तू कागज का पुतला मात्र है जो जरा-सा पानी पड़ते ही गल सकता है। अतः झूठा घमंड त्याग दे।

''दोनों रहिमन एक से,
जौ लों बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक,
ऋतु बसंत के भांहि।।''

कौआ और कोयल रंग-रूप में एक समान होते हैं। उनमें भेद करना बहुत कठिन है। लेकिन बसंत ऋतु में जब कौआ कांव-कांव करता है और कोयल कूकती है तो सरा भेद खुल जाता है। अर्थात् बाहरी रंग-रूप धोखा दे सकता है, लेकिन भीतर से निकली आवाज निर्मल होती है।

''धन थोरो इज्जत बड़ी,
कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलवधू,
चिथड़न माहि समात।।''

धन से इज्जत अधिक कीमती होती है। धन बार-बार कमाया जा सकता है, लेकिन इज्जत एक बार चली गई तो फिर नहीं कमाई जा सकती। जैसे घर की बहू के शरीर पर जीर्ण-शीर्ण वस्त्र हों तो उनमें भी वह अपनी इज्जत और परिवार की मान-मर्यादा को संभाले रख सकती है। इस प्रकार धन-दौलत से चरित्र और शील बहुत ऊपर है।

''बड़े दीन को दुख सुने,
लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती,
कहु रहीम पहिचानि।।''

बड़े लोग दीन-दुःखियों के दुःख देख कर करुणा से भर जाते हैं और फौरन उनकी सहायता को तत्पर हो जाते हैं। मगरमच्छ की जकड़ में फंसे हाथी से भगवान विष्णु की कौन-सी जान-पहचान थी, लेकिन उसकी पुकार सुनते ही वे सहायता के लिए दौड़े चले आए। बड़ों की यही विशेषता है। वे प्राणिमात्र के दुःख में द्रवित हो जाते हैं।

''बसि कुसंग चाहत कुसल,
यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की,
रावण बस्यो परोस।।''

बुरे लोगों के साथ रहकर कुशलता की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। समुद्र के पड़ोस में रावण रहने लगा तो समुद्र की महिमा भी घट गई थी। राम की सेना उसे रौंद कर लंका पहुंची थी। अर्थात् पड़ोस में कोई बुरा आदमी हो तो उससे दूर रहना चाहिए। दूसरे शब्दों में बुराई से हमेशा दूर रहना चाहिए।

''मान सरोवर ही मिलैं,
हंसिन मुक्ता भोग।
भरे रहीम सर,
बक बालक नहिं जोग।।''

हंसों को मोतियों का दाना सुदूर मानसरोवर में ही मिल सकता है। बगुलों और उनके बच्चों के लिए तालाब तो स्थान-स्थान पर मछलियों से भरे पड़े हैं। अर्थात् उत्तम लोग उत्तम चीजों का सेवन करते हैं, जैसे प्रभु भक्ति और निम्न लोग क्षुद्र वासना, माया और मोह जैसी निम्न सांसारिक वस्तुओं के उपभोग मे ही लिप्त रहते हैं।

''यह रहीम माने नहीं,
दिल से नवा जो होय।
चीता चोर कमान के,
नए ते अवगुन होय।।''

यह आवश्यक नहीं है कि जो व्यक्ति आपसे झुक कर, विनम्रता से बात करता है, दिल से भी विनम्र हो। जैसे चीता शिकार के समय, चोर सेंध लगाते समय और तीर कमान पर चढ़ते समय झुके रहते हैं, लेकिन ऐसा करते समय वे किसी का हित नहीं साधते हैं। ऐसे दुष्टों से सावधान रहना चाहिए।

''रहिमन ओछे नरन सों,
बैर भलो न प्रीति।
काटे-चाटे स्वान के,
दुहूं भांति विपरीत।।''

नीच लोगों से न शत्रुता करो, न प्रेम। शत्रुता करोगे तो वे आघात पहुंचाएंगे, मित्रता करोगे तो कलंक लगाएंगे। जैसे कुत्ते को दुत्कारो तो वह काटने को आता है और प्रेम करो तो

चाटने लगता है। इस प्रकार वह दोनों तरह से विषम व्यवहार करता है।

''रहिमन देखि बड़ेन को,
लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवै सुई,
कहा करै तलवारि।।''

बड़ों के बीच छोटों की उपेक्षा कभी नहीं करें, क्योंकि जितने महत्त्वपूर्ण बड़े होते हैं उतने ही छोटे भी। यदि हमें फटा वस्त्र सिलना हो तो वहां छोटी-सी सुई ही सहायक हो सकती है, बड़ी तलवार काम नहीं आ सकती।

इसी प्रकार प्रेम की अभिव्यक्ति है—

''रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर न जुरे,
जुरे गांठ परी जाय।।''

प्रेम का धागा या प्रेम का बंधन बहुत नाजुक होता है, इसलिए इस बंधन का निर्वहन बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि जरा-सी भी ठेस लगने से यह चटक कर टूट सकता है; और जोड़ने पर इसमें गांठ पड़ जाती है जो सदैव उस टूटन की याद दिलाती रहती है। फिर प्रेम में वैसी गरमाहट नहीं रहती। अतः इसमें विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

रहीम इतिहास के संबंध में लिखते हैं—

''रहिमन पर उपकार के,
करत न यारी बीच।
मांस दियो शिवि भूप ने,
दीन्हो हाड़ दधीच।।''

परोपकारी लोग जब परोपकार करते हैं तो स्वार्थ को बीच में नहीं आने देते। वे इसके लिए अपना जीवन भी बलिदान कर देते हैं। जैसे राजा शिवि ने कबूतर की भूख शांत करने के लिए अपने शरीर का मांस काट कर दे दिया और दधीचि मुनि ने परोपकार के लिए अपनी अस्थियां दान कर दीं।

''रहिमन रिस को छांड़ि कै,
करो गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो,
सबै तुम्हारो देस।।'

रहीम कहते हैं—गुस्से और गर्व को त्याग कर ऊंच-नीच का भेद भुला दें तथा गरीब-अमीर सबको समान रूप से अपनाएं। इसके बाद मीठा बोलें और विनम्रता से चलें, फिर सारी दुनिया आपको अपनी लगेगी।

''सबको सब कोऊ करैं,
कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए,
जब कछु अटकै काम।।''

व्यावहारिकता में बंधे सभी लोग एक-दूसरे को नमस्ते, राम-राम और सलाम करते हैं; प्रेम से मिलते हैं और अपनापन प्रकट करते हैं। लेकिन जो व्यक्ति खोटे समय में सहायता करे, वही वास्तव में अपना होता है।

मनुष्य की महानता के लिए उन्होंने कहा—

''ऊगत जाही किरन सौं,
अथवत ताही कांति।
त्यों रहीम सुख-दुःख सबै,
बढ़त एक ही भांति।।''

सूर्य जिस ओज और उत्साह से उदय होता है, उसी चमक और दीप्ति के साथ अस्त होता है। ऐसे ही धीर-गंभीर और विवेकी पुरुष भी सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि सभी स्थितियों में सदैव सम रहते हैं अर्थात् विचलित नहीं होते।

''वे रहीम नर धन्य हैं,
पर उपकारी अंग।
बाटन वारे को लगे,
ज्यों मेहंदी को रंग।।''

रहीम कहते हैं—वे लोग धन्य हैं जिनका अंग-प्रत्यंग परोपकार में लगा है। परोपकार से मिलने वाला संतोष ही उनका पुरस्कार है। जैसे मेहंदी पीसने वाले को रच कर मानो पुरस्कृत करती है।

रहीम स्वयं बड़े दानवीर थे। दानवीर होना एक बड़ी बात है तथापि दंभ रहित दानवीर होने का सबक रहीम से सीखा जा सकता है। दान देते समय रहीम की आंखें हरदम नीची रहती थीं। इस बारे में गंग कवि का प्रश्न और उस पर रहीम का उत्तर देखिए—

''सीखे कहां नवाबजू, ऐसी देनी देन।
ज्यों-ज्यों कर ऊंचो कियौ, त्यों-त्यों नीचे नैन।।''

''देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन-रैन।
लोग भरम हमपै धरैं, याते नीचे नैन।।''

दान देने वाला तो कोई और है, जो दिन-रात मुझे कुछ-न-कुछ देता रहता है जिससे कि मैं दान-धर्म सुचारु रूप से करता रहूं। लेकिन लोग इस भ्रम में पड़े रहते हैं कि दान देने वाला मैं हूं, इसलिए दान देते समय मैं अपने नेत्र नीचे रखता हूं।

रहीम बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे कवि के साथ-साथ एक कुशल सेनापति, वीर सैनिक, नीतिज्ञ, भाषाविद्, कलापारखी, कुशल प्रशासक, अच्छे घुड़सवार, सटीक तीरंदाज, आश्रयदाता और महान दानवीर व ज्योतिषी भी थे। ज्योतिष पर उन्होंने 'खेट कौतुक जातकम्' नामक एक ग्रंथ भी लिखा था। 'मदनाष्टक', 'रास पंचाध्यायी', 'रहीम रत्नावली', 'रहीम विकास', 'रहिमन शतक', 'रहिमन चंद्रिका' आदि उनके प्रमुख ग्रंथ हैं जिनमें उनके दोहे और पद संकलित हैं।

सन् 1627 में मृत्यु के आगोश में जाने वाले रहीम ने कभी नवाबों-सी जिंदगी बिताई, कभी कैदी बने और कभी फकीर। संघर्षों से उनका चोली-दाम का साथ रहा।

16 रेवलिस क्रीसेंट टोरंटो, ओंटारियो
एम वन वी-1 ई 9 कैनेडा

अद्‌भुत व्यक्तित्व के धनी

भावना सक्सैना

मनुष्य शरीर भौतिक पंचतत्वों से बना है, इसलिए इसका एक भौतिक दायरा है, लेकिन भौतिक दायरे के अलावा मनुष्य के बौद्धिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक पहलू है। अपनी वास्तविकता की पहचान करने तथा अपनी पूर्ण क्षमता का अनुभव करने के लिए इन सभी पहलुओं को विकसित करने की आवश्यकता होती है। भारत के इतिहास में ऐसे अनेक विरल व्यक्तित्व हुए हैं जो इन सभी गुणों की खान रहे है। ऐसे ही विरले थे अब्दुर्रहीम खानखाना।

अकबर के प्रिय व नवरत्नों में से एक, अब्दुर्रहीम खानखाना एक वीर सैनिक, कुशल सेनापति, सफल प्रशासक, बेजोड़ आश्रयदाता, गरीबों के सहायक, विश्वासपात्र दरबारी, नीति कुशल नेता, महान कवि, विविध भाषाविद्, उदार कला पारखी जैसे अनेकानेक गुणों के मालिक थे। अकबर, रहीम से बहुत अधिक प्रभावित थे और उन्हें अधिकांश समय तक अपने साथ रखते थे। रहीम को ऐसे उत्तरदायित्व पूर्ण काम सौंपे जाते थे जो किसी नए सीखने वाले को नहीं दिए जा सकते थे परंतु उन सभी कामों में 'मिर्जा खां' अपनी योग्यता के बल पर सफल होते थे।

रहीम शिया और सुन्नी के विचार-विरोध से शुरू से आजाद थे। इनके पिता तुर्कमान शिया थे और माता सुन्नी। इसके अलावा रहीम को छः साल की उम्र से ही अकबर जैसे उदार विचारों वाले व्यक्ति का संरक्षण प्राप्त हुआ था। इन सभी ने मिलकर रहीम में अद्‌भुत विकास की शक्ति उत्पन्न कर दी। किशोरावस्था में ही वे यह समझ गए कि उन्हें अपना विकास अपनी मेहनत, सूझबूझ और शौर्य से करना है। रहीम को अकबर का संरक्षण ही नहीं, बल्कि प्यार भी मिला। रहीम भी उनके हुक्म का पालन करते थे, इसलिए विकास का रास्ता खुल गया। अकबर ने रहीम से अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करने को कहा। उनके काव्य में नीति, भक्ति, प्रेम तथा शृंगार आदि के दोहों का समावेश है। साथ ही जीवन में आए विभिन्न मोड़ भी परिलक्षित होते हैं। रहीम ने अपने अनुभवों को सरल और सहज शैली में मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। उन्होंने ब्रजभाषा, पूर्वी अवधी और खड़ी बोली को अपनी काव्य भाषा बनाया। किंतु ब्रजभाषा उनकी मुख्य शैली थी। गहरी से गहरी बात भी उन्होंने बड़ी सरलता से सीधी-सादी भाषा में कह दी। भाषा को सरल, सरस और मधुर बनाने के लिए तद्‌भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया। रहीम अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिंदी के अच्छे जानकार थे। हिंदू संस्कृति से वे भली-भांति परिचित थे।

इनकी नीतिपरक उक्तियों पर संस्कृत कवियों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। कुल मिलाकर इनकी 11 रचनाएं प्रसिद्ध हैं। दोहों में ही रचित इनकी एक स्वतंत्र कृति 'नगर शोभा' है। इसमें 142 दोहे हैं। इसमें विभिन्न जातियों की स्त्रियों का शृंगारिक वर्णन है। रहीम अपने बरवै छंद के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका बरवै नायिका भेद अवधी भाषा में नायिका-भेद का सर्वोत्तम ग्रंथ है। इसमें भिन्न-भिन्न नायिकाओं के केवल उदाहरण दिए गए हैं। मायाशंकर याज्ञिक ने काशीराज पुस्तकालय और कृष्णबिहारी मिश्र पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इसका संपादन किया है। रहीम ने बरवै छंदों में गोपी-विरह वर्णन भी किया है। मेवात से इनकी एक रचना बरवै नाम की इसी विषय पर रचित प्राप्त हुई है। यह एक स्वतंत्र कृति है और इसमें 101 बरवै छंद हैं।

रहीम के शृंगार रस के 6 सोरठे प्राप्त हुए हैं। इसका विषय कृष्ण की रासलीला है और इसमें मालिनी छंद का प्रयोग किया गया है। इसके कई पाठ प्रकाशित हुए हैं। रहीम बहुज्ञ थे। इन्हें ज्योतिष का भी ज्ञान था। इनका संस्कृत, फारसी और हिंदी मिश्रित भाषा में 'खेट कौतुकम जातक' नामक एक ज्योतिष ग्रंथ भी मिलता है। रहीम ने 'वाकेआत बाबरी' नाम से बाबर लिखित आत्मचरित का तुर्की से फारसी में भी अनुवाद किया था। रहीम के काव्य का मुख्य विषय शृंगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गंगा संबंधी भक्ति-भावमयी रचनाएं वैष्णव भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर लिखी गई हैं।

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने फारसी में अनेक कविताएं लिखीं। खेट कौतुकम जातक नामक ज्योतिष ग्रंथ लिखा, जिसमें फारसी और संस्कृत शब्दों का अनूठा मेल था। इनका काव्य इनके सहज उदारों की अभिव्यक्ति है। इन उद्‌गारों में इनका दीर्घकालीन अनुभव निहित है। ये सच्चे और संवेदनशील हृदय के व्यक्ति थे। जीवन में आने वाली कटु-मधुर परिस्थितियों ने इनके हृदय-पट पर जो बहुविध अनुभूति रेखाएं अंकित कर दी थीं, उन्हीं के अकृत्रिम अंकन में इनके काव्य की रमणीयता का रहस्य

निहित है। उनका जीवन एक ऐसी पुस्तक है जिसे हर बार पढ़ने पर कुछ नया मिलता है। वह भारतीयों के भारतीय थे, इस संबंध में सबसे सटीक है भारतेंदु हरिश्चंद्र की उक्ति जो रहीम के भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम को दर्शाती है। उन्होंने कहा—''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटि हिंदू वारिए।''

रहीम के जीवन की विभिन्न परिस्थितियां हमें उनकी काव्यात्मक, वैचारिक व सैद्धांतिक ऊंचाइयों से अवगत करवाती हैं। यहां उनमें से कुछ अनुश्रुतियां उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं। ये अनुश्रुतियां उनके गुणें को उजागर करती हैं।

रहीम की विनम्रता—खानखाना, अकबर के दरबार के सबसे बड़े दरबारी थे और उनसे उस समय का कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति पद-मर्यादा या वैभव में उनसे टक्कर नहीं ले सकता था। किंतु वे बड़े उदार हृदय व्यक्ति थे, सबका सम्मान और खुले दिल से सहायता करते थे। इतने वैभवशाली शक्तिमान और विद्वान तथा सुकवि होते हुए भी उनमें सज्जन सुलभ विनम्रता भी थी।

रहीम की ऊंचाई व विनम्रता का सबसे बड़ा उदाहरण उनके व गंग कवि के बीच हुई वार्ता है। उनकी दानशीलता और विनम्रता से प्रभावित होकर गंग कवि ने एक बार उनसे यह दोहा कहा—

''सीखे कहां नवाबजू,
ऐसी दैनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊंचो कियौ,
त्यों-त्यों नीचे नैन।।''

रहीम ने भी बड़ी सरलता से दोहे का उत्तर दिया—

''देनहार कोउ और है,
देत रहत दिन रैन।
लोग भरम हम पै करें,
तासों नीचे नैन।।''

रहीम के समान ऊंचे व्यक्ति ही यह उत्तर दे सकते हैं।

परोपकार भाव—रहीम में लेशमात्र भी अहंकार भाव नहीं था। वह सदैव परोपकार में लगे रहते थे। एक बार की बात है एक गरीब ब्राह्मण उनके दर पर आया और दरबान से बोला—''अपने मालिक से जाकर कहो कि उनका साढू आया है।'' दरबान हैरान हुआ किंतु उसने अंदर जाकर रहीम को ब्राह्मण का संदेश दिया। रहीम थोड़ा हैरान हुए किंतु फिर उन्होंने आदर सहित ब्राह्मण को अपने महल में बुलवाया। ब्राह्मण महल के ठाठ-बाट देखकर घबराया और लजाने लगा। रहीम उसकी लज्जा व संकोच को पहचान गए और प्रेमपूर्वक उससे बोले—''साढू साहब आप संकोच छोड़कर यहां आराम से रहें आपको कोई कष्ट न होगा। मैं आप के जैसा साढू पाकर धन्य हुआ।'' दरिद्र ब्राह्मण शर्म से पानी हो गया और बोला—''सेनापतिजी मुझे लज्जित न करें, मुझसे भूल हो गई है। मैं तो बस आपके दर्शन करना चाहता था, अब मुझे जाने दें।'' किंतु रहीम ने हंसकर उनसे कहा—''ब्राह्मण महाराज आप लज्जित न हों कभी-कभी अनजाने में बनाए गए संबंध सत्य ही होते हैं, देखो संपत्ति और दरिद्रता दो बहनें होती हैं, मेरे घर संपत्ति है और आपके घर दरिद्रता, तो इस लिहाज से हम आपके साढू ही हैं।'' यह सुनकर ब्राह्मण हर्ष से गद्‌गद हो गया।

उदारता—एक दिन रहीम प्रजा की शिकायतें सुनने के बाद अपने महल लौट रहे थे। रास्ते में एक व्यक्ति ने रहीम की पालकी में लोहे की पंसेरी फेंक दी। रहीम उस पंसेरी की चोट से बाल-बाल बच गए और उनके रक्षकों ने तुरंत उस व्यक्ति को पकड़ लिया। महल पहुंच कर रहीम ने अपने रक्षकों को बुलाया और पूछा—''जानते हो उस आदमी ने हमारी पालकी में पंसेरी क्यों फैंकी?'' इस पर एक रक्षक ने कहा—''हुजूर, वह आपको मारना चाहता था।'' इस पर रहीम ने मुस्कुरा कर कहा—''नहीं, ऐसी बात नहीं है, उस व्यक्ति ने हमें पारस समझ कर हमसे अपने लोहे को छुआना चाहता था। पारस छू जाने पर लोहा सोना हो जाता है। अतः उस आदमी को पांच सेर सोना देकर मुक्त कर दो।''

रहीम के मतानुसार मन लगा कर कोई काम किया जाए तो सफलता निश्चित रूप से मिलती है। अगर अच्छी नीयत से प्रयास किया जाए तो नर क्या नारायण को भी अपने बस में किया जा सकता है—

''रहिमन मनहि लगाईं कै,
देखि लेहू किन कोय।
नर को बस करिबो कहा,
नारायन बस होय।।''

**64, प्रथम तल, इंद्रप्रस्थ कॉलोनी,
सेक्टर 30-33, फरीदाबाद-121003 (हरियाणा)**

त्रिवर्णी साहित्यकार - रहीम

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

17 सितंबर, सन् 1556 ई. को दूसरे मुगल सम्राट हुमायूं के अंतरंग सखा, अद्वितीय योद्धा, दूरदर्शी मंत्री तथा कवि हृदय बैरमखां 'खानखाना' की नवविवाहिता पत्नी सुलताना बेगम ने लाहौर में एक बालक को जन्म दिया। साठ वर्ष की आयु में अपना पहला पुत्र पाकर बैरम खां कितना प्रसन्न हुआ होगा, इसका अनुमान लगाना सहज है। पुत्र का नाम रखा गया अब्दुर्रहीम खां। बैरम खां उस समय पानीपत के दूसरे युद्ध में हेमू को पराजित करके तेरह वर्ष चार माह के अकबर को मुगल सिंहासन पर बिठाकर स्वयं उसके संरक्षक के रूप में मुगल सल्तनत को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयासरत थे।

रहीम का संपूर्ण जीवन मनुष्य के उत्थान-पतन की अपूर्व गाथा है। रहीम ने अभी जीवन को ठीक से देखना भी शुरू न किया था कि अचानक उनके जीवन में अमावस्या की काली रात आ गई। बैरम खां हज करने के लिए मक्का की ओर जा रहे थे। रास्ते में गुजरात में पाटन के विख्यात सहस्रलिंग सरोवर में नौका विहार करके निकले ही थे कि मुबारक खां लोहानी नामक एक पठान ने धोखे से बैरम खां का वध कर दिया। कहा जाता है कि मुबारक खां ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए यह किया था। 31 जनवरी, सन् 1561 को घटी इस घटना के समय रहीम खां की उम्र मात्र 4 वर्ष थी। विधवा सुलताना बेगम कुछ स्वामिभक्त सेवकों बाबा जंबूर तथा मुहम्मद अमीन दीवाना की सहायता से जान बचाते हुए अहमदाबाद चली गई।

अकबर को जब अपने संरक्षक की क्रूर हत्या का समाचार मिला, तो उसने तुरंत बैरम खां के परिवार को दरबार में बुला लिया। बादशाह अकबर ने उन्हें भरपूर सम्मान तथा सुख-सुविधा दी। रहीम का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का दायित्व अपने धर्मपुत्र की भांति किया और उसे राजकुमारों को दी जाने वाली उपाधि—मिर्जा खां से सम्मानित किया। रहीम की कुशाग्र बुद्धि, लगन और कर्मठता ने अकबर को बहुत प्रभावित किया था। शीघ्र ही रहीम ने मुल्ला मुहम्मद अमीन की देखरेख में अरबी, फारसी, तुर्की, छंद रचना, गणित, तर्कशास्त्र और फारसी व्याकरण का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। काव्य रचना, दानशीलता, राज्य संचालन, शौर्य, वीरता और दूरदर्शिता जैसे गुण उन्हें अपने माता-पिता से संस्कार में मिले थे। शिया पिता और सुन्नी माता तथा अकबर की उदार धर्मनिरपेक्ष नीति से रहीम का व्यक्तित्व असाधारण आकार ग्रहण करता चला गया। दरबारी वातावरण में रहते हुए रहीम ने संस्कृत तथा हिंदी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अकबर ने उनसे अंग्रेजी और फ्रेंच का भी ज्ञान प्राप्त करने को कहा था। रहीम के व्यक्तित्व में हिंदू-मुस्लिम एकता एवं सम्मान का जो स्वरूप उभरा, उसके संबंध में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जी का कथन है, ''अकबर ने दीन-ए-इलाही में हिंदुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविताओं में उसे, उससे भी बड़ा स्थान दिया। प्रत्युत यह समझना अधिक उपयुक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं, जो धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।''[1]

मिर्जा रहीम खां की योग्यता, लगन तथा कार्य कुशलता पर दरबारी विरोधियों की चालें तथा अंतःपुर की राजनीति भारी न पड़ जाए, इसलिए अकबर ने वैवाहिक मेल-मिलाप की नीति को अपनाते हुए रहीम का विवाह अपनी धाय माहम अनगा की बेटी माहबानू से करवा दिया।

रहीम के व्यक्तित्व के तीन मुख्य आयाम माने जा सकते हैं—योद्धा सेनापति, कवि हितैषी दानवीर तथा लोकहृदय सम्राट कवि। योद्धा और सेनापति के रूप में रहीम ने सन् 1573 से लेकर मृत्युपर्यंत सन् 1627 तक न केवल अनेक उतार-चढ़ाव देखे, अपितु अपनी असाधारण शूरवीरता, अद्भुत रणकौशल, कुशाग्र नेतृत्वक्षमता तथा कूटनीतिक सूझबूझ का ऐसा प्रमाण दिया, जो मुगल इतिहास में अद्वितीय है। रहीम को अपनी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप अनेकानेक पद-उपाधियां तथा सम्मान प्राप्त हुए। उन्हें गुजरात तथा अजमेर की सूबेदारी, मीरअर्ज का पद (जो केवल बादशाह तथा जनता दोनों के विश्वासपात्र एवं ईमानदार व्यक्ति को ही दिया जाता था) शाहजादा सलीम के अतालीक (शिक्षक) का कार्यभार, अतावेग का अत्यंत उच्च पद अकबर तथा जहांगीर दोनों द्वारा 'खानखाना' की उपाधि, वकील मुतलक जैसा मुगल दरबार का उच्चतम पद प्रदान किया गया। समय-समय पर बादशाह ने उन्हें जागीरें, ऊंचे मनसब, मुंहमांगे रुपए, जड़ाऊ तलवार, हाथी, घोड़े, ऊंट, सैनिक, अमीर आदि उपहार स्वरूप दिए। कभी-कभी गलतफहमियों तथा षड्यंत्रों के कारण

जहांगीर, नूरजहां तथा शाहजादा खुर्रम (शाहजहां) की नाराजगी भी झेलनी पड़ी।

युद्धवीर रहीम अनुपम दानवीर भी थे। उनकी दानवीरता के अनेकानेक प्रसंग कवियों ने वर्णित किए तथा जन-जन की जुबान पर भी छाए रहे। रहीम की दानवीरता, कवियों-कलाकारों को सम्मान-पुरस्कार तथा आश्रय प्रदान करने के किस्से रहीम रत्नावली (पं. मायाशंकर याज्ञिक) खानखाना नामा (मुंशी देवी प्रसाद), अब्दुर्रहीम खानखाना (डॉ. समरबहादुर सिंह) जैसे ग्रंथों में भरे पड़े हैं। कहा जाता है कि रहीम का लंगर सदैव सबके लिए खुला रहता था। जब रहीम खानखाना भोजन करते थे, तब पद और मर्यादा के अनुसार एक साथ सैंकड़ों लोगों को भोजन मिलता था। वे खाद्य पदार्थों के साथ कुछ रुपए और अशर्फियां रख देते थे, जो जिसके कौर में आए, वह उसके भाग्य का। आज तक यह कहावत प्रसिद्ध है—''रहीम खानखाना जिसके/खाने में भी खजाना।''

भोजन दान के अतिरिक्त रहीम बिना मांगे ही गुणियों, साधुओं, सैनिकों और विशिष्ट याचकों को दान-दक्षिणा देते थे। वे जानते थे कि कुलीन व्यक्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर भी मांगना सरल कार्य नहीं होता—

''गरज आपनी आप सौं,
रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलवधू,
पर घर जात लजाय।''

खरखेज युद्ध तथा आष्टी विजय के उपरांत अत्यधिक मात्रा में धन, संपत्ति, तोपें, घोड़े, हाथी शत्रुपक्ष से प्राप्त हुए। रहीम ने वह सारी धन संपत्ति तथा अन्य सामग्री के मूल्य के बराबर रुपया अपने सैनिकों तथा सामान्य व्यक्तियों में बंटवा दिया। उस समय उस संपत्ति का मूल्य 75 लाख रुपए से भी अधिक था। विश्व इतिहास में दान देने का ऐसा उदाहरण संभवतः दूसरा नहीं मिलेगा। प्रतिदिन द्रव्य दान देना रहीम खानखाना के जीवन तथा स्वभाव का अंग बन गया था। संभवतः दैनिक दान के प्रबंधक मियां फहीम होते थे। उन्हीं के बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है—''कमाए रहीम और लुटावें मियां फहीम।''

रहीम जब दान करने बैठते तो द्रव्य की ढेरी लगा लेते थे और आगंतुक को मुट्ठी भर दे दिया करते थे। मुट्ठी में जितना आया, उतना उसका भाग्य था। दान देते समय आंख उठाकर ऊपर देखना रहीम के सिद्धांत के विरुद्ध था। कौन ले जा रहा है कौन नहीं, यह जानने का प्रयत्न रहीम ने कभी नहीं किया। कवि गंग और रहीम के प्रश्नोत्तर प्रसिद्ध ही हैं। गंग ने पूछा—

''सीखे कहां नवाबजू,
ऐसी दैनी देन।
ज्यों-ज्यों कर ऊंचो कियौ,
त्यों-त्यों नीचे नैन।।''

रहीम ने उत्तर दिया—

''देनहार कोउ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरैं,
याते नीचे नैन।।''

ऐसे महादानी के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है, ''इनकी दानशीलता हृदय की सच्ची प्रेरणा के रूप में थी। कीर्ति की कामना से उसका कोई संपर्क नहीं था।''[2]

अब्दुर्रहीम खानखाना की उदारता एवं दानशीलता केवल सैनिकों, साधुओं या सामान्य जन तक ही सीमित नहीं थी, अपितु वे कवियों-कलाकारों की भी दिल खोलकर सहायता किया करते थे। वास्तव में उदारता उनकी स्वभावगत विशेषता थी और कवियों को आश्रय देना उनका व्यसन। उस समय के महानतम सम्राटों में यूरोप की महारानी एलीजाबेथ, ईरान के शाह अब्बास तथा भारत के अकबर प्रमुख थे। ये सभी कवियों एवं कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय तथा सम्मान देते थे। किंतु मोहम्मद अब्दुल गनी, आरदपीद मसानी, मौलाना शिबली, मौलाना आजाद, शाहनवाज खान आदि अनेकानेक इतिहासकारों, साहित्यकारों के वर्णनों के आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय भारत ही नहीं, अपितु समस्त एशिया एवं यूरोप में रहीम के मुकाबले कवियों का आश्रयदाता दूसरा कोई न था। उनके औदार्य एवं आश्रयदायित्व की उस समय इतनी धूम मच गई थी कि देश-विदेश के कवि उनके दरबार में इस प्रकार खिंचे चले आते थे; जैसे भ्रमर कमल पर अथवा पतंगा दीपक पर। बात इस अवस्था तक पहुंच गई थी कि सम्मान में थोड़ा-सा भी अंतर आने पर कवि, अपने आश्रयदाता को छोड़, रहीम के दरबार में जाने की धमकी दे दिया करते थे। यह घटना छोटे-मोटे राजाओं के साथ नहीं, अपितु ईरान के शाह अब्बास के दरबार में भी घट चुकी थी।[3] रहीम केवल कवियों को पुरस्कार ही नहीं देते थे, अपितु उन्हें पूरा आदर-सम्मान भी देते थे, जिससे वे कवि गद्‌गद हो जाते थे। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अब्दुर्रहीम खानखाना जैसा काव्य पारखी, कवि हितैषी कवि कोई दूसरा नहीं हुआ।

रहीम के व्यक्तित्व के दो आयामों-योद्धा-सेनापति तथा कवि हितैषी दानवीर पर चर्चा करने के पश्चात् उनके व्यक्तित्व के तीसरे तथा मुख्य आयाम-लोकहृदय सम्राट कवि का विश्लेषण-विवेचन करना समीचीन रहेगा। उनके व्यक्तित्व के पहले दोनों आयामों का संबंध मुख्यतः इतिहासकारों, विद्वानों, शोधार्थियों आदि से ही है, परंतु उनका कवि रूप तो आज भी जनमानस में इतना रचा-पचा है कि तथाकथित अनपढ़-गंवार लोग भी अपनी बातचीत में रहीम के दोहे उद्‌धृत करते रहते हैं। रहीम के काव्य पर अब तक अनेक शोध प्रबंध तथा समीक्षा ग्रंथ लिखे जा चुके हैं और निरंतर लिखे जा रहे हैं, पत्र-पत्रिकाओं के रहीम पर केंद्रित विशेषांक प्रकाशित होते रहते हैं। सच कहा जाए तो रहीम के काव्य ने रहीम के समग्र व्यक्तित्व को अमर कर दिया है। रहीम के काव्य का अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि वे त्रिवर्णी अर्थात तीन रंगों के साहित्यकार थे। उनके काव्य में नीति, शृंगार तथा भक्ति के तीन रंग स्पष्ट दृष्टिगोचर होते

हैं। इन तीनों में भी उन्हें लोकहृदय सम्राट कवि की पदवी दिलवाने वाला रंग-नीति काव्य का है। रहीम की रचनाओं के संबंध में विद्वानों में सदा से विचार-विमर्श होता रहा है। उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता पर भी निरंतर चर्चा हुई है। उनकी रचनाओं के एक दर्जन से भी अधिक संग्रह समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से 'रहिमन शतक' शीर्षक से ही पं. सूर्यनारायण दीक्षित, पं. नवनीत चतुर्वेदी, लाला भगवानदीन, ज्ञान भास्कर प्रेस बाराबंकी, शारदा प्रेस, कानपुर आदि कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त बाबू ब्रजरत्न दास का 'रहिमन विलास', पं. मायाशंकर याज्ञिक की 'रहीम रत्नावली', पं. विद्यानिवास मिश्र की 'रहीम ग्रंथावली', डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र की 'रहीम रचनावली' उल्लेखनीय हैं। डॉ. समरबहादुर सिंह द्वारा रचित 'अब्दुर्रहीम खानखाना' तथा डॉ. बालकृष्ण 'अकिंचन' द्वारा संकलित 'रहिमन शतकत्रय' की सुदीर्घ भूमिका भी रहीम काव्य के शोधार्थियों के लिए विशेष महत्त्व रखती हैं।

दुर्भाग्य से कवि रहीम का पूरा साहित्य आज भी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न विद्वानों द्वारा संकलित कवि रहीम की रचनाओं के आधार पर रहीम की अग्रलिखित पुस्तकें स्वीकृत की जाती हैं-नगर शोभा, बरवै नायिका भेद, बरवै, मदनाष्टक, खेट-कौतुकम, शृंगार सोरठा एवं फुटकर दोहे तथा पद। रहीम के काव्य में शृंगार, नीति तथा भक्ति की त्रिवेणी सतत प्रवहमान है। 'नगर शोभा' पुस्तक में भवन, उद्यान आदि निर्जीव भौतिक उपकरणों के साथ-साथ साक्षात्, सजीव, सरस सौंदर्य अर्थात् नारी के रूप सौंदर्य का मनोहारी चित्रण किया है। अकबर के मीना बाजार में क्रय-विक्रय का संपूर्ण कार्य करती स्त्रियों की चुहुलबाजियां, आंगिक चेष्टाएं, नयन बाण, मधु-मुस्कान का आदान-प्रदान ही संभवतः युवा रसिक हृदय रहीम की 'नगर शोभा' रचना का प्रेरणा स्रोत रहा होगा।

'नगर शोभा' पुस्तक के प्रारंभ के दो दोहे मंगलाचरण के हैं। इसके बाद के 142 दोहों में कवि रहीम ने ब्राह्मणी, खतरानी, जौहरिन, बढ़ैन, सुनारिन, रंगरेजिन, बनजारिन, लुहारिन, गुजरी, कसाइन, भटियारिन, नटनी, चमारी, घसियारिन, तुर्कनी, आदि 70 जाति की विभिन्न उद्योग-धंधों में संलग्न रमणियों का मनोहारी रूप प्रस्तुत किया है। इन चित्रों की सबसे मुख्य विशेषता है—जाति विशेष के सामाजिक गौरव का ध्यान रखते हुए उसी उद्योग में काम आने वाले पदार्थों एवं उपकरणों से जाति विशेष की नायिका का रूप चित्रण। उदाहरण के लिए ब्राह्मणी के रूप को परम पाप पल में हरने वाला कहा गया है—

''उत्तम जाती ब्राह्मणी,
देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत,
परसत वाके पाय।।''[4]

सुनारिन का काम स्वर्ण और सांचे से पड़ता है, अतः उसका वर्णन करते हुए रहीम लिखते हैं—

''परम रूप कंचन बरन,
शोभित नारि सुनारि।
मानो सांचे ढारि के,
बिधिना गढ़ी सुनारि।।''[5]

बरतन गढ़ने वाली ठठेरिन के शरीर के वर्णन में उसके कुचों को लुटिया (छोटा लोटा) तथा नितंबों को लोटे जैसी चित्रित किया गया है—

''आभूषन बसतर पहिर,
चितवन पिय मुख ओर।
मानो गढ़े नितंब कुच,
गडुबा ढार कठोर।।''[6]

शाक-भाजी बेचने वाली काछिन के कुचों को गोल भाटा (बैंगन), अधरों को लाल गाजर तथा भुजाओं को मांसल मूली से व्यक्त किया है—

''कुच भाटा, गाजर अधर,
मूरा से भुज भाइ।
बैठी लौका बेचई,
लेटी खीरा खाइ।।''[7]

नायिकाओं के चित्रण में कविवर रहीम ने उद्योग के अनुकूल शब्दावली का प्रयोग तो किया ही है, इन कामनियों के हाव-भाव, कार्य-व्यापार, अंग संचालन से भी उनके उद्योग की प्रत्यक्ष झलक दिखला दी है। उदाहरण के लिए रूई धुनने का कार्य करने वाली धुनियाइन का वर्णन करते हुए रहीम रूई धुनते समय धुनी हुई रूई के नरम बारीक रेशों का तांत से चिपटना जैसी क्रिया को धुनियाइन की प्रेम-क्रीड़ा से कैसे संबद्ध कर देते हैं, देखिए—

''धुनियाइन धुनि रैन दिन,
धरै सुरति की भांति।
वाकौ राग न बूझि हो,
कहा बजावै तांति।।
काम पराक्रम जब करै,
छुवत नरम हो जाइ।
रोम-रोम पिय के बदनह,
रूई सी लपटाइ।।''[8]

अर्थात् जब धुनियाइन के मन की तांत बजती है और कामदेव अपना पराक्रम दिखाते हैं, तो प्रिय के स्पर्श करते ही वह रूई-सी नरम हो जाती है, कठोर नहीं रहती और पुनः प्रिय के शरीर के रोम-रोम से उसी प्रकार लिपट जाती है जैसे धुनि हुई रूई, तांत से।

'नगर शोभा' में शृंगार के ऐसे 142 दोहों में कवि रहीम ने केवल नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन परंपरागत ढंग से नहीं किया, अपितु, तत्कालीन समाज में नारी के श्रम, सक्रियता, शक्ति तथा कर्मठता का भी प्रभावी वर्णन किया है।

रहीम द्वारा रचित 'बरवै नायिका भेद' हिंदी की एक चर्चित रचना है। रहीम के समय नायिका भेद की परंपरा संस्कृत में थी, हिंदी में नहीं। संस्कृत के ज्ञाता रहीम ने इसे सर्वथा नवीन छंद-'बरवै' के द्वारा हिंदी में प्रस्तुत किया। बरवै छंद की उत्पत्ति के संबंध में एक प्रसिद्ध घटना का उल्लेख डॉ.

बालकृष्ण 'अकिंचन' ने इस प्रकार किया है—'रहीम का एक सैनिक लंबे अवकाश में अपने घर गया हुआ था। इसी बीच उसका विवाह हो गया और वह नवपरिणीता दुल्हिन के साथ रसकेलियों में कुछ ऐसा निमग्न हो गया कि यह ज्ञात ही न हुआ कि अवकाश की अवधि कब निकल गई। ध्यान आने पर वह बहुत पछताया। उसे अपनी नौकरी छूट जाने का भय था। पति को दुखी देख, स्त्री ने जब दुख का कारण पूछा तो उस विदुषी ने पति को जाने की प्रेरणा देते हुए, दो पंक्ति लिखकर दे दी और उन्हें खानखाना की सेवा में उपस्थित करने को कहा। पंक्ति पढ़ते ही रहीम खानखाना स्थिति की वास्तविकता को समझ गए तथा सैनिक को क्षमा कर दिया। रहीम को वे पंक्तियां इतनी रुचीं कि उन्होंने उसमें स्वतः भी काव्य रचना की तथा अन्य गुणियों को लिखने के लिए प्रेरित किया। एक सैनिक की दुल्हिन द्वारा संप्रेषित निम्नलिखित पंक्तियों की प्रेरणा से रहीम ने नए छंद को जन्म दिया और पंक्तियों में आए प्रमुख शब्द 'बिरवा' के आधार पर उस छंद का नामकरण 'बरवै' हुआ—

''प्रेम प्रीति का बिरवा, चलेउ लगाय।
सींचन की सुधि लीजियो, सूखि न जाय।।''[9]

'बरवै नायिका' के कुल 116 छंदों में से 92 बरवै नायिका भेद के हैं, जिन्हें श्रृंगार काव्य में रखा जाता है। कवि रहीम द्वारा रचित श्रृंगार रस की एक अन्य पुस्तक है—श्रृंगार सोरठा, जो अनुपलब्ध है। स्वर्गीय पं. मायाशंकर याज्ञिक द्वारा 'रहीम रत्नावली' में दिए छह सोरठे ही इस अद्‌भुत पुस्तक की महत्ता, सरसता तथा संप्रेषनीयता का संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए दो सोरठे दिए जा रहे हैं—

''गई आगि उर लाय,
आगि लेन आइ जो तिय।
लागी नाहि बुझाय,
भभकि-भभकि बरि-बरि उठै।।''[10]

इस सोरठे में कवि रहीम ने उस समय प्रचलित ग्राम वधुओं द्वारा अपने घर का चूल्हा जलाने के लिए दूसरे के घर से आग मांग लाने की क्रिया को आधार बनाया है। आग मांगने आई युवती को देखकर मन में काम ज्वाला का भभक उठना स्वाभाविक था। इसी प्रकार, पड़ोसी के घर जाकर वहां से दीपक जलाकर ले आना तथा उसे बुझने से बचाने के लिए अपने आंचल की ओट में कर लेना उन दिनों सामान्य क्रिया थी। रससिद्ध कवि ने इस दृश्य में अपनी रूमानी कल्पना आरोपित कर अद्‌भुत चित्र खींचा है—

''दीपक हिए छिपाय,
नवल वधू घर लै चली।
कर विहीन पछिताय,
कुच लखि निज सीसै धुनै।।''[11]

सोरठे की दूसरी पंक्ति में संयोग श्रृंगार का अनूठा वर्णन है। चलते समय हवा से बचाने की कोशिश के बावजूद दीपक की लौ हिलती है। रहीम के लिए दीपक की लौ का हिलना, मात्र प्रकंपित होना नहीं है, अपितु दीपक द्वारा सिर धुन-धुनकर पछताना है। इसका कारण है—घने वस्त्रों से सदैव आच्छादित रहते हुए भी अपनी उत्तुंगता प्रदर्शित करते रहने वाले, नववधू के उरोज आज उसके इतने निकट हैं, फिर भी, हाथ न होने के कारण वह दीपक कुच मर्दन करने में असमर्थ है। 'कर-विहीन' होने की पीड़ा के कारण ही दीपक सिर धुनकर पछता रहा है।

इसी प्रकार कवि रहीम ने संयोग श्रृंगार के अंतर्गत नायिका भेद, नायिकाओं की विभिन्न क्रियाएं—कटाक्ष, संभाषण, अधर दान, अंगों तथा नख शिख की शोभा तथा वियोग श्रृंगार के अंतर्गत विरहनियों के दारुण वियोग, विभिन्न ऋतुओं, विशेषकर वर्षा, बसंत आदि में विरहाग्नि के उद्दीप्त हो जाने का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कवि रहीम का भ्रमरगीत बरवै काव्य हिंदी भ्रमरगीत परंपरा के प्रारंभिक रूप का दर्शन कराता है। विप्रलंभ श्रृंगार के चारों भेद—पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुण; विरह की दस दिशाएं—अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि जड़ता, मरण; अनुभाव के चारों भेद-कायिक, मानसिक, आहार्य तथा सात्विक आदि का सांगोपांग वर्णन रहीम के श्रृंगार काव्य में विद्यमान है।

कवि रहीम का भक्ति काव्य 'सर्वधर्म समभाव' का उत्कृष्ट उदाहरण है, भारत में गंगा-जमुनी संस्कृति का प्रारंभिक अनुकरणीय उद्‌घोष है। रहीम के समय में भारत में भक्ति-भावना अपने चरम उत्कर्ष की ओर अग्रसर थी। 'अकबर की उदार धर्मनीति, अनुकूल शिक्षा, संस्कृत भाषा का ज्ञान, गंग आदि सद्‌कवियों की संगति तथा तुलसी आदि संतों की मित्रता ने उस उदारचेता मुसलमान के हृदय में, सगुण भक्ति की वही धारा प्रवाहित कर दी, जिसके प्रवाह में तत्कालीन हिंदू समाज बड़े वेग से बहा जा रहा था। फुटकर बरवै छंदों, संस्कृत श्लोकों तथा अन्य छंदों में वे गणेश, हनुमान आदि हिंदू देवी-देवताओं की स्तुति कर चुके थे। इस सामग्री को देखकर कोई भी निष्कर्ष निकाल सकता है कि रहीम के हृदय में वैष्णवी भक्ति का अथाह एवं निश्छल पारावार तरंगायित था। उसमें धर्मगत संकीर्णता को कहीं स्थान न था। भक्ति-भाव भरे उनके हृदय से जो छंद निर्मित हुए, उन्हें देखकर यह आभास ही नहीं होता कि ये किसी मुसलमान की रचनाएं हैं।'[12]

डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र के अनुसार, ''रहीम उस मध्ययुगीन सहज मानवीय रचनात्मक दृष्टि के रचनाकार थे, जो हिंदू और मुसलमानों को इस महादेश का नागरिक मानकर देवी-देवताओं के नामों और रूपों के नाना भेदात्मक दृष्टियों में एकत्व की खोज से विकसित हो रही थी।''[13] रहीम-दोहावली के प्रथम दोहे में भारतीयों की धार्मिक आस्था की प्रतीक गंगा मैया, जिसे महादेव शिव ने अपने सिर पर धारण किया, की श्रद्धापूर्वक स्तुति की गई है। कवि रहीम का भक्ति भाव मुख्यतः श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के प्रति व्यक्त हुआ है। उनके भक्ति काव्य में लाघव, विद्‌ग्धता, नीति समन्विति, श्रद्धा, निष्ठा, वैराग्य, प्रेम, पौराणिक आधार स्पष्ट दिखाई देते हैं—

''रहीमन को कोउ का करै,
ज्वारी, चोर, लबार।
जो पत-राखनहार है,
माखन-चाखन-हार।।
मुनि नारी पाषान ही,
कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू,
तीनों मेरे अंग।।
रहिमन याचकता गहे,
बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूं कि भयो,
बावन आंगुर गात।।''

इन दोहों में श्रीकृष्ण, श्रीराम तथा भगवान नारायण के संबंध में प्रचलित मान्यताओं को 'गागर में सागर' भरते हुए व्यक्त किया है। भक्ति के प्रायः सभी रूप रहीम ने अपने काव्य में वर्णित किए हैं। दास्य भक्ति का यह दोहा भक्त कवि तुलसीदास एवं सूरदास याद दिला देता है—

''गहि सरनमागति राम की,
भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार का,
और न कछु उपाव।।
ते रहीम मन आपुनो,
कीन्हों चारू चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहे,
कृष्ण चंद्र की ओर।।''

एकनिष्ठ भक्ति का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

कवि रहीम को लोक में अमरत्व प्रदान करने वाला काव्य है—उनका नीतिकाव्य अपने इसी नीति काव्य के कारण आज भी उनके दोहे जनसामान्य की जुबान पर हैं। रहीम के नीति काव्य में जीवन जीने की पद्धति, उचित-अनुचित का विवेक, सामाजिक मर्यादाएं, धार्मिक मान्यताएं, आर्थिक नीतियां आदि का विश्लेषण-विवेचन किया गया है। रहीम के नीतिपरक दोहों का विषय वैविध्य आश्चर्यचकित कर देने वाला है। जीवन का शायद ही कोई पक्ष हो, जो उनके नीति काव्य में समाहित न हुआ हो। उनके वर्ण्य विषयों में प्रभु-भक्ति, सत्य-महिमा, दान-महिमा, याचना, मांगना, कुलवधू, काम आतुर नारी, राजा, राज्य के अधिकारी, संगति-कुसंगति, सज्जन-दुर्जन, प्रेम-प्रियतम, धन की आवश्यकता, सुरक्षा, लक्ष्मी, लक्ष्मी की चंचलता, दीन और दीनबंधु, विपत्ति, मित्रता, स्वामी-सेवक, निर्बल-सबल, घमंड, आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव, गोपनीयता, निज व्यथा, समय का प्रभाव, काव्य और कर्म, निर्धनता, सहिष्णुता, मीठी वाणी, सच्चा शूरवीर, उत्तम प्रकृति आदि समाहित हैं।

रहीम के अनेक दोहों में जीवन के रहस्य, सिद्धांत और उदाहरण कथन, सूक्ति-संदेश 'गागर में सागर' की भांति भरे पड़े हैं जैसे—

''अरज गरज मानै नहीं,
रहिमन ए जन चारि।
रिनिया, राजा, मांगता,
काम-आतुरी नारि।।

कदली, सीप, भुजंग-मुख,
स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए,
तैसोई फल दीन।।

खैर, खून, खांसी, खुसी,
बैर प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै,
जानत सकल जहान।।

यहि रहीम निज संग लै,
जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस,
होत-होत ही होय।।

ससि, संकोच, साहस, सलिल,
मान सनेह रहीम।
बढ़त-बढ़त बढ़ि जात है,
घटत-घटत घटि सीम।।

उरंग तुरग नारी नृपति,
नीच जाति हथियार।
रहिमन, इन्हें सभांरिए,
पलटत लगे न वार।

रहिमन तीन प्रकार ते,
हित अनहित पहिचानि।
परबस परे, परोस बस,
परे मामिला जानि।।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्यकालीन हिंदी साहित्य में अब्दुर्रहीम खानखाना अपने त्रिआयामी-योद्धा, दानवीर तथा कवि व्यक्तित्व एवं त्रिवर्णी—शृंगार, भक्ति तथा नीति काव्य के रचयिता साहित्यकार के रूप में अपना अनुपम, अद्वितीय स्थान रखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 359
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, (14वां संस्करण) पृ. 208
3. डॉ. बालकृष्ण 'अकिंचन' रहीम शतकत्रय, पृ. 44
4. वही, पृ. 71
5. वही, पृ. 71
6. वही, पृ. 71
7. वही, पृ. 72
8. वही, पृ. 72
9. वही, पृ. 77
10. वही, पृ. 94
11. वही, पृ. 94
12. वही, पृ. 107
13. रहीम रचनावली, पृ. 43
14. वही, पृ. 75

एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
श्री राम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली-110007

एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व

राजेंद्र परदेसी

भाषा किसी धर्म-बंधन में नहीं बंधती। इसलिए यह जरूरी नहीं कि एक भाषा के बोलने वाले सभी एक ही धर्म के हों। हिंदी भाषा बोलने वाले भी एक ही धर्म के नहीं हैं। इसमें हिंदू के साथ-साथ मुसलमान, ईसाई और सिख आदि भी हैं। हमारे देश में हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक बहुत से ऐसे कवि हुए हैं, जो मुसलमान होते हुए भी हिंदी में रचना किया करते थे तथा हिंदी के साथ-साथ संस्कृत के अच्छे पंडित थे। साथ ही वे कृष्ण भक्त थे। ऐसे रचनाकारों में अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी, सैयद गुलाम नबी रसलीन, रसखान, आलम और शेख के साथ-साथ रहीम प्रमुख थे, जिन्होंने हिंदी में रचनाएं प्रस्तुत करके अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया।

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। उनका जन्म लाहौर में हुआ था। वे अकबर के संरक्षक बैरम खां के पुत्र थे। रहीम की मां हुमायूं की पत्नी की छोटी बहन थी। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा अकबर की देख-रेख में हुई। बड़े होने पर पहले इन्हें पाटन की जागीर दी गई और फिर अजमेर की सूबेदारी सौंपी गई। इतना ही नहीं, रणथंभौर का किला भी दिया गया।

रहीम अरबी, फारसी और संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे। हिंदी के विख्यात कवि के रूप में ये अकबर के दरबार की शोभा थे। अकबरी दरबार के प्रमुख कवि गंग के साथ रहीम के दोस्ताना संबंध थे। रहीम ने ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही काव्य रचना आरंभ कर दी थी। इनकी रचनाओं में 'दोहावली', 'नगर शोभा', 'बरवै नायिका भेद' तथा 'मदनाष्टक' प्रमुख हैं। यह भी सुनने को मिलता है कि रहीम ने सतसई की भी रचना की थी। किंतु अभी तक उनके नीति संबंधी तीन सौ दोहे ही उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह 'रहीम रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

रहीम एक लोकप्रिय कवि थे। इनके नीति संबंधी दोहे सर्वसाधारण में प्रायः कहे और सुने जाते हैं। इनके दोहों की खासियत है कि उनमें नीति की नीरसता नहीं अपितु मार्मिकता के साथ-साथ कवि हृदय की संवेदनशीलता भी विद्यमान है। उनमें जीवन की विविध अनुभूतियों का चित्रण तो मिलता ही है, साथ ही उनके कथन हृदय पर सीधे चोट भी करते हैं। रचनाओं में नीति के अतिरिक्त भक्ति तथा श्रृंगार की भी सुंदर व्यंजना हुई है।

वैसे तो रहीम जनसाधारण में अपने दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं। किंतु उन्होंने कवित्त, सवैया, सोरठा तथा बरवै छंदों में भी सफल काव्य रचना की है। ब्रज और अवधी भाषा दोनों पर उनका समान अधिकार था। उनकी भाषा सरल, स्पष्ट और असरदार थी। जीवन की अनुभूतियों का दोहों के माध्यम से रहीम ने बड़ा मार्मिक चित्र उपस्थित किया है—

''रहिमन अंसुआ नैन ढरि,
जिय दुःख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते,
कस न भेद कहि देइ।।

कहि रहीम संपत्ति सगे,
बनत बहुत बहु रीति।
विपति-कसौटी जे कसे,
ते ही सांचे भीत।।

रहिमन निज मन की व्यथा,
मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलै हें लोग सब,
बांटि न लैहें कोय।।

रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरेउ चटकाय।
टूटे से फिर ना जुरै,
जुरै गांठ परि जाय।।''

रहीम बड़े स्वाभिमानी थे। सम्मान के साथ दिया गया विष भी उन्हें सहर्ष स्वीकार था। किंतु अपमान के साथ दिया गया अमृत प्रिय नहीं था। सोरठा के माध्यम से अपना यह मंतव्य प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है—

''रहिमन मोहि न सुहाय,
अमी पियावत मान हीन।
जो विष देत बुलाय,
प्रेम सहित मरिबो भलो।।''

बरवै छंद में गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए रहीम ने गुरु के प्रताप से अंधकार के दूर होने की बात दुहराई है—

''पुनि-पुनि बंदहुं गुरु के पद जलजात।
जिहि प्रताप ते मन के तिमिर बिलात।।''

भक्तिकाल के अंतिम चरण में रीतिकालीन प्रवृत्तियां पनपने लगी थीं। हिंदी में केशव के बाद रीति-निरूपण में रीतिकालीन अनेक कवियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने के कारण रहीम को भक्तिकाल तथा रीतिकाल

के संयोजक के रूप में देखा जाता है। 'बरवै नायिका भेद' और 'नगर शोभा' रीति निरूपक ग्रंथ हैं। पहले में नायक-नायिका भेद तथा दूसरे में विभिन्न वर्णों के अनुसार नायिकाओं का वर्णन मिलता है। 'बरवै नायिका भेद' में 'भानुदत्त' की 'रसमंजरी' को आधार बनाकर नायक-नायिका के अतिरिक्त सखी तथा उसके कर्मों का वर्णन बरवै छंद में किया गया है। इसमें प्रायः लक्षण नहीं हैं। अवधी में लिखित रीति निरूपण संबंधी ग्रंथों में यह प्रथम रचना है जो सरस, सुबोध एवं संक्षिप्त विवेचन की दृष्टि से अद्वितीय हैं। वस्तुतः केशव की 'रसिकप्रिया' के आधार पर इन ग्रंथों में नायिका भेद का वर्णन किया गया है। जिसे रीतिकाल के कवियों के लिए प्रेरक माना जा सकता है। रहीम ने अपनी रचनाओं में भक्ति एवं नीति संबंधी शुष्क विषय को भी काफी सरस रूप में प्रस्तुत किया है। इनकी रचनाओं में वैयक्तिक एवं लोकानुभवों को प्रमुख रूप से स्थान मिला है।

रहीम के व्यक्तित्व की विशेषता है जो जनसाधारण से लेकर समकालीन साहित्य जगत तक उन्हें लोकप्रिय बनाती है। वैसे अपने नीति संबंधी दोहों को लेकर आज भी वे आदर के साथ याद किए जाते हैं। वे सहृदय थे और कवि-विद्वानों का आदर करते थे। तुलसीदास के साथ उनके स्नेहिल संबंध थे, जो भावात्मक एकता को दर्शाता है। अकबर के प्रधान सेनापति एवं मंत्री होने के साथ-साथ वे एक वीर योद्धा भी थे। किंतु उनका कद इससे भी अधिक ऊंचा था, क्योंकि वे बहुत बड़े दानी थे। दानशीलता के अनेक उदाहरण जनश्रुति में मिलते हैं। एक जनश्रुति के अनुसार एक गरीब ब्राह्मण अर्थाभाव के कारण अपनी लड़की का विवाह करने में असमर्थ था। वह तुलसीदास के सामने उपस्थित होकर उनसे धन की याचना करने लगा किंतु तुलसी के पास धन कहां था? वे उस ब्राह्मण को दोहे की एक पंक्ति लिखकर कवि रहीम के पास भेज देते हैं। दोहे की वह पंक्ति थी–

''सुरतिय, नरतिय, नागतिय,
सब चाहत अस कोय।''

रहीम ने दोहे की पहली पंक्ति पढ़कर तुलसी का आशय समझ लिया और दूसरी पंक्ति लिखकर इसकी पूर्ति करते हुए उन्होंने ब्राह्मण को बहुत-सा धन दिया। दूसरी पंक्ति थी–

''गोद लिए हुलसी फिरै,
तुलसी सो सुत होय।।''

यह दोहा रहीम के हृदय की उन गहराइयों की ओर इशारा करता है जिसमें तुलसी का महान व्यक्तित्व आदरणीय बनकर पैदा हुआ था। तुलसी भी रहीम की दानशीलता से खूब परिचित थे। रहीम और तुलसी के पवित्र संबंध थे। जिसके कारण दोनों एक-दूसरे के लिए आदरणीय बने रहे। रहीम के दरबार से याचक कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। याचक को नकारात्मक जवाब देने वाला व्यक्ति मृतक समान होता है। रहीम ने इस संबंध में लिखा है–

''रहिमन वे नर मर चुके,
जे कहुं मांगन जाहि।
उनसे पहले वे मरे,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

रहीम स्वयं विद्वान तो थे ही, विद्वानों के प्रति उनके मन में सदा आदर के भाव विद्यमान थे। वे कवियों का खूब सम्मान करते थे। अकबरी दरबार के नवरत्नों में शुमार कवि गंग के 'छप्पय' पर रहीम ने उन्हें छत्तीस लाख रुपए दिए थे, जो उनकी जिंदादिली की एक खास पहचान है।

अकबर के बाद जहांगीर के शासनकाल में भी रहीम को काफी सम्मान मिला। किंतु उनको एक त्रासदी का सामना भी करना पड़ा था। जहांगीर की बेगम नूरजहां के आदेश से उन्हें कैद कर लिया गया। उनकी जागीरें छिन गईं। अमीरी गरीबी में तब्दील हो गई। उन्हें काफी कष्ट झेलना पड़ा। बाद में जहांगीर ने उन्हें क्षमादान दे दिया और वे कैदखाने से मुक्त हुए। फिर भी इनके जीवन का आखिरी समय काफी दयनीय रहा। ऐसा इसलिए हुआ कि नूरजहां अपने दामाद को भावी शासक बनाना चाहती थी किंतु रहीम ने शहजादे खुर्रम का समर्थन किया, जिससे रहीम को नूरजहां का कोपभाजन बनना पड़ा। कवि गंग ने भी शहजादा खुर्रम की प्रशंसा में एक छंद लिखा था, जिससे नाराज होकर नूरजहां ने उन्हें हाथी से कुचलवा दिया। रहीम को भी खुर्रम का समर्थन करना बड़ा महंगा पड़ा था। उनकी जिंदगी के दो छोर हैं–एक अमीरी और दूसरी गरीबी। दोनों का उन्होंने पूर्ण साक्षात्कार किया था। इसलिए उनकी काव्योक्तियां हृदय से निःसृत होकर स्वाभाविक स्तर पर काफी असरदार हो पाई हैं। ''रहिमन विपदा हूं भली, जो थोड़े दिन होय'' कहकर अपने जीवनानुभवों से सर्वसाधारण को परिचित करवाया है। संकट के दिनों में ही अपने-पराए का सच्चा बोध हो पाता है। इसलिए जीवन के किसी भी मोड़ पर कुछ दिनों के लिए विपत्ति का आना जरूरी है।

इस प्रकार रहीम शासन से लेकर साहित्य तक अपनी अलग छवि बनाने वाले एक ऐसे कवि थे जो नीतिगत निर्णय में आजीवन निष्णात एवं कुशल बने रहे। सुख-दुःख दोनों बड़े करीब से देखे। अपने आदर्शों पर अडिग रहे। भक्ति भावना को पंथ या संप्रदाय से अलग रखकर भक्ति की श्रेष्ठता बनाए रखा। सांप्रदायिक सद्भाव और एकता को कभी टूटने नहीं दिया। यही कारण है कि उनकी नीति विषयक रचनाएं व्यावहारिक स्तर पर आदर्श बनी रही। ऐसे महान व्यक्तित्व के स्वामी रहीम का निधन सन् 1627 में हुआ। उनके साहित्यिक एवं व्यावहारिक अवदानों को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

रहीम का ज्योतिष ज्ञान

अब्दुर्रहीम खानखाना ने भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रहों के फलाफल पर अपने विचार एक विचित्र खिचड़ी भाषा में व्यक्त किए थे। संस्कृत के साथ अरबी, फारसी और खड़ी बोली के शब्दों को मिलाकर संस्कृत छंदों

में एक पूर्णतः नया प्रयोग किया था। अरबी और फारसी शब्दों की संधि संस्कृति के शब्दों से करके उन्होंने एक विचित्र वर्णसंकरी सृष्टि की थी। पाठकों के मनोरंजनार्थ यथारूप सानुवाद प्रस्तुत है।

''यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने,
यदा चश्मकोरा भवेन्माल खाने
तदा ज्योतिषी कया लिखेगा पढ़ेगा
हुआ बालका बादशाही करेगा।।''

यदि बृहस्पति (मुश्तरी) कर्क या धनुराशि (कमान-धनु) में बैठा हो और शुक्र (चश्मकोरा) यदि धन स्थान (लग्न से दूसरे स्थान) में हो तो फिर ज्योतिषी को उसके भाग्य पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ग्रहों की इस प्रकार की स्थिति वाला लड़का राजा होकर रहेगा।

''यदा चश्मकोरा भवेन्माल खाने
यदा मुश्तरी दोस्त खाने विलग्ना
उतारिद्तनुस्थो बृहत्साबी स्यात्
बृहत् सूर्य मखमल खजानाश्वपूर्णः।।''

यदि शुक्र (चश्मकोरा) धन स्थान पर हो, बृहस्पति (मुश्तरी) मित्र स्थान (लग्न से चौथे स्थान) में हो, बुध लग्न में हो, सूर्य मेष राशि का हो तो जातक (अर्थात् वह व्यक्ति जिसकी कुंडली में उक्त रूप से ग्रह पड़े हों) बड़ा ही ऐश्वर्यशाली होता है और वह लाट साहबी (बृहत् साहबी) करता है।

''उतारिद् विलग्ने वयुये माहताबी
रविः खर्चखाने तमो मालखाने,
जहानस्थ धूरी भवेनन्नेकबख्तः
खजानाध्याढ्यो मुलुक साहबी ख्यात्।।''

यदि लग्न में बुध (उदारिद्) हो, व्यय स्थान में चंद्रमा (माहताब) हो, सूर्य भी व्यय स्थान (खर्चखाने) में हो, राहु (तमो) धन स्थान में हो तो जातक बड़ा ही भाग्यशाली और राजा होता है।

''यदा माहताबो भवेन्मालखाने
मिरीखोऽथवा मुश्तरी बख्तखाने,
उतारिद् बिलग्ने भवेदबख्त पूर्णे
भवेच्छानदारो अथवा बादशाहः।।''

यदि चंद्रमा धन स्थान में हो, मंगल (मिरिख) अथवा बृहस्पति भाग्य स्थान (लग्न से नवें स्थान) में हो, बुध (उतारिद्) लग्न में हो, तो जातक बड़ा भाग्यशाली होता है, शानदार होता है (भवेच्छानदारों) या राजा का पद पाता है।

''भवेदाफताबो यदा षष्ठखाने
पुनदैत्यपीरोऽथ केंद्र गुरुर्वा,
जातः शुर्तफील जातो ध्याढ्यो
जराजर्जरी वक्तदाता चिरायुः।।''

यदि लग्न से छठे स्थान में सूर्य (आफताब) हो, शुक्र (दैत्य पीर, दैत्यों का पीर) या बृहस्पति केंद्र (लग्न, चौथे, सातवें या दसवें स्थान) में बैठा हो, जातक बहुत से ऊंटों, हाथियों और घोड़ों का मालिक होता है और दीर्घजीवी भी होता है।

''तृतीये भवेराफताबस्य पुत्रो
यदा माहताबस्य पुत्रो बिलग्ने
भवेन्मुश्तरी केंद्र खाने नराणा
बृहत्साहबी तस्य तालेवरः स्यात्।।''

यदि लग्न से तृतीय स्थान में सूर्य पुत्र (आफताबस्य पुत्रो) शनि बैठा हो और चंद्र पुत्र (माहताबस्य पुत्रो) बुध लग्न में बैठा हो, बृहस्पति केंद्र स्थान में हो तो जातक बड़ा ऐश्वर्यशाली होता है।

''यदा मुश्तरी पंजखाने मिरीरवो
यदा बख्तखाने रिपावाफताबः
नरो बाअकूपो भवेत्कुंजरेशो
बृहत्तोरश्नों वाहिनी वारणाढ्यः।।''

यदि बृहस्पति लग्न से पांचवें स्थान में हो, मंगल भाग्य स्थान (लग्न से नवें स्थान पर हो), सूर्य शत्रु स्थान पर हो तो मनुष्य बुद्धिमान, बहुत हाथियों का मालिक, प्रतापी और धन, वाहन से पूर्ण होगा।

''उतारिद् बिलग्ने सुखे माहताबा
गुरूकर्मखाने तमो लाभ खाने
जहानस्य धूरी भवेन्नेकबख्तः
खजाना धनाढ्यो मुलुक साहबी स्यात्।।''

यदि बुध लग्न स्थान में हो, सुख स्थान (लग्न से चौथा स्थान) पर चंद्रमा बैठा हो, बृहस्पति कर्म स्थान (लग्न से दसवें स्थान) पर हो और राहु लाभ स्थान (ग्यारहवें स्थान) पर हो तो मनुष्य बड़ा भाग्यशाली, ऐश्वर्य-सहित और देशाधीश होता है।

''यदा देवपीरो भवद्बख्त खाने
पुनपुन दैत्यपीरो भवेद्रर्मखाने
उतारिद बिलग्ने तृतीय मिरीखः
शनिर्लाभ खाने नरः काबिल स्यात्।।''

यदि बृहस्पति (देवपीरो-देवगुरु) भाग्य स्थान (दख्तखाने) में हो, शुक्र धर्म स्थान में हो (भाग्य स्थान और धर्म स्थान दोनों एक ही होते हैं), मंगल तीसरे स्थान में हो, शनि लाभ स्थान (ग्यारहवें स्थान) पर हो तो मनुष्य प्रत्येक दृष्टिकोण से योग्य और यशस्वी होता है।

''महल माहताबा व्यये चाफताबो
यदा मुश्तरी केंद्रखाने त्रिकोणे
भवेन्मानवी देवतेजस्कराढ्यो
वृहस्ताहबी बख्त खूबी कमानः।।''

यदि चंद्रमा अपने घर (महल) का अर्थात् कर्क राशि का हो, सूर्य व्यय स्थान (लाभ से बारहवें स्थान) पर हो, बृहस्पति केंद्र में या त्रिकोण (पांचवे या नवें स्थान) में हो तो मनुष्य देवताओं के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यशाली और भाग्यवान होता है।

''खजानागजाढ्यों भवेल्लश्करढ्यों
जहानप्रियो मुश्तरी जायरखाने
मिरोखोऽथ लाभ बुधः पंजखाने
शनिः शत्रुखाने नरः काबिलः स्यात्।।''

यदि बृहस्पति पत्नी स्थान (जायखाने) अर्थात् लग्न से सातवें स्थान में हो, मंगल लाभ स्थान में, बुध पांचवे स्थान में हो, और शनि शत्रु स्थान (लग्न से छठे स्थान) में हो तो जातक के यहां हाथी, घोड़े बंधे रहते हैं। अतुल धन

और असंख्य जनों पर अधिकार होता है और वह संसार में लोकप्रिय तथा ख्यात होता है।

''कमर केंद्र खाने शनि शत्रु खाने
त्रिकोणे अथवा मुश्तरी चश्मकोरा
सजातो नरः साबिरः सद्गुणज्ञो
भवेच्छायरो मादारोऽथरब्बी।।''

यदि चंद्रमा केंद्र में हो, शनि शत्रु स्थान (लग्न से छठे स्थान) पर हो, बृहस्पति और शुक्र त्रिकोण (पांचवें या नवें स्थान) में हो, तो मनुष्य अत्यंत गुणी, कवि और धनवान होता है।

''आयुःखाने चश्मकोरा मालखाने चमुश्तरी
राहुर्जन्म पंदा बखाने शाह होवे मुल्क का।।''

यदि शुक्र अष्टम स्थान में हो, बृहस्पति द्वितीय स्थान (धन स्थान) में हो, राहु लग्न में हो तो मनुष्य देश का स्वामी होता है।

''धनस्थ कुमुदबंधु षष्ठे रविः स्यात्
सुखे बुधो व्योम्नि विद्वत् कविश्च
बृहत् ओहदा शील मखमल बनातः
शतुर्फील फानूस तंबू कनातः।।''

धन स्थान में चंद्रमा हो, छठे स्थान में सूर्य हो, सुख स्थान (लग्न से चौथे स्थान) में बुध हो, दसवें स्थान में बृहस्पति हो, तो जातक को बहुत बड़ा पद प्राप्त होता है। वह बड़ा शीलवान होता है, उसे अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनने को मिलते हैं। बहुत से ऊंट, हाथी, फानूस, तंबू, कनात भरे पड़े रहते हैं।

''आफताबे मालखाने यस्य जन्मनि च धुवम्।
सफल रोजी मुश्किल पड़े फाके मुफलिसम्।।''

जिस व्यक्ति के जन्म में सूर्य दूसरे स्थान पर पड़े, उनको आजीविका प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फांके पड़ते हैं और वह निर्धन रहता है।

''यदा शत्रुखाने पड़े उच्चका
करे खाक दौलत फिरे जाबजा।।''

यदि शत्रु स्थान (लग्न से छठे स्थान) पर कोई ग्रह उच्च का पड़े तो मनुष्य अपना घर फूंक कर सारी संपत्ति वृथा नष्ट कर तमाशा देखता है और जगह-जगह मारा-मारा फिरता है।

''आयुःखाने चश्मकोरा मालखाने च मुश्तरी
सबाबखाने चंद्र दीदं बादशाहं बर्बरी।।''

यदि शुक्र आठवें स्थान में हो, चंद्रमा भाग्य स्थान (लग्न से नवें) तो जातक बर्बरी देश का बादशाह होगा—

''यदा भाग्यमालिका चले घर पड़े
कमाकर सुदौलत खजाना भरे।
करे गंज बख्शी अमीरी सुफल
वजीरी अमीरी करे बेफिकर।।''

**44. शिव विहार, फरीदी नगर,
लखनऊ-226015 (उ.प्र.)**

रहीम और उनका काव्य

डॉ. सुरेंद्र गुप्त

ईसा की सोलहवीं शताब्दी, हिंदी साहित्य का स्वर्णिम युग था। इसी युग में जिसे भक्तिकाल भी कहा गया, महाकवि जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, मीरा तथा रसखान आदि ऐसे अनेक देदीप्यमान नक्षत्र हुए, जिनकी आभा से आज भी हिंदी साहित्याकाश उद्भासित हो रहा है। निर्गुण तथा सगुण धारा के इन महान कवियों ने हिंदी कविता को कलात्मक उच्चता प्रदान करते हुए, जिस उच्च कोटि के साहित्य का सृजन किया, वह अपने आप में बेजोड़ था। विराट और संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी महाकवि रहीम, जिनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था, इसी युग के प्रतिभासंपन्न रचनाकार थे। उनका जन्म मुगल शासक हुमायूं के सेनापति, बैरम खां के घर हुआ था। बैरम खां, हुमायूं के खास विश्वासपात्र थे। वह हुमायूं के पुत्र, अकबर के संरक्षक भी थे। कालांतर में जब रहीम के पिता बैरम खां की हत्या कर दी गई, तो रहीम के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का दायित्व सम्राट अकबर ने अपने हाथ में ले लिया। रहीम ने दरबारी सुख-सुविधाओं के बीच रहने के बावजूद अपनी शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान दिया और तुर्की, अरबी, फारसी, उर्दू, हिंदी तथा संस्कृत आदि भाषाओं में ज्ञान अर्जित किया। शिक्षा पूर्ण हो जाने पर, सम्राट अकबर ने रहीम का विवाह अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री माहबानू से करवा दिया। इनके तीन पुत्र तथा दो पुत्रियां थीं।

रहीम, अकबर के सुप्रसिद्ध नवरत्नों में से एक तथा उनके सेनापति भी थे। एक बार गुजरात में उपद्रव हो जाने पर उसे दबाने के लिए अकबर ने रहीम के नेतृत्व में सेना भेजी। जब वह विजयी पताका फहरा कर लौटे, तो अकबर ने इनका बहुत सम्मान किया और इन्हें गुजरात का सूबेदार बना दिया। इसी प्रकार जब रहीम, सेनापति के रूप में उदयपुर जीत कर आए तो अकबर ने इन्हें 'मीर अर्ज' की उपाधि से विभूषित किया। अकबर, रहीम के कामकाज से इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें अजमेर की सूबेदारी तथा 'मिर्जा खां' की उपाधि भी प्रदान कर दी।

अकबर की मृत्यु के उपरांत, उनके पुत्र जहांगीर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। जहांगीर ने भी रहीम को उसी प्रकार पद, मान-सम्मान तथा धन आदि देना जारी रखा, जो उन्हें अकबर के शासन काल में मिल रहे थे। किंतु पंद्रह वर्षों के अंतराल के बाद समय का ही फेर कहिए कि किसी कारण से जहांगीर ने वे सभी पद-प्रतिष्ठाएं, यहां तक कि खानखाना की उपाधि भी उनसे वापस ले ली। अतः इस दौरान उन्हें भारी दुःखों का सामना करना पड़ा। पर जल्दी ही जहांगीर को अपनी भूल का अहसास हुआ और उन्होंने रहीम को पहले की ही तरह सभी उपाधियों और पदों से सुसज्जित कर दिया। इसके अतिरिक्त भी जहांगीर ने उन्हें बहुत सी सामग्री, अर्थ तथा जागीर आदि प्रदान की। अकबर के दरबार में अब्दुर्रहीम खानखाना ही एक ऐसे उत्कृष्ट कवि थे, जिनका युवाकाल अकबर के दरबार में तथा बुढ़ापा जहांगीर के दरबार में बीता था। प्रौढ़ अवस्था में रहीम की हालत कोई खास अच्छी नहीं थी। पत्नी तथा पुत्रों की मृत्यु ने उन्हें बुरी तरह तोड़ दिया था। इन्हें महावत खां पर चढ़ाई करने के लिए लाहौर भेजा गया, जहां ये बीमार पड़ गए और उनका देहावसान हो गया।

खानखाना रहीम अपनी उदारता, सहृदयता, त्याग और दानशीलता के लिए भी विख्यात थे। ईरान के सुप्रसिद्ध कवि कौसरी ने ईरान के शाह अब्बा के दरबार में रहीम की उदारता का जिक्र करते हुए कहा था कि ईरान में कोई कवि दृष्टिगोचर नहीं होता जो उसके पदों का समुचित मूल्य आंक सके, इसके लिए उन्हें हिंदुस्तान में खानखाना के पास जाना होगा। इनकी उदारता की अनेक कथाएं प्रचलित हैं। यदि किसी कवि की कोई रचना रहीम को पसंद आ गई तो उन्होंने तुरंत उसे पारितोषिक दे दिया। हिंदी के प्रसिद्ध कवि गंग को तो उनहेंने एक छप्पय पर प्रसन्न होकर 36 लाख रुपए दे दिए थे।

रहीम की काव्य रचनाओं में रहीम दोहावली, खेट जातक कौतुकम्, नगर शोभा, बरवै, बरवै नायिका भेद, मदनाष्टक, श्रृंगार सोरठा, फुटकर काव्य और संस्कृत काव्य आदि का उल्लेख मिलता है।

दोहावली—यह कहा जाता है कि इस ग्रंथ में एक हजार के लगभग दोहे समाहित थे, किंतु इस समय 300 के लगभग ही प्राप्त हैं। कवि ने इन दोहों में श्रृंगार, भक्ति और नीतिपरक भावों को व्यक्त किया है।

खेट जातक कौतुकम—इस कृति में 124 श्लोक संगृहीत हैं। खेट कौतुक का अर्थ है—ग्रह-गति। इस अर्थ से स्पष्ट है कि इसमें कवि ने सभी ग्रहों की गति का वर्णन किया है। इसकी भाषा फारसी मिश्रित संस्कृत है।

नगर शोभा—इस कृति में भी वास्तविक दोहों की संख्या के बारे में भ्रम है। कहीं तो यह 143 दी गई हैं और कहीं पर 182। मंगलाचरण के दो दोहों को छोड़ कर शेष में नगर में निवास करने वाली कुलांगनाओं के जातीय सौंदर्य का वर्णन किया है, जिनमें ब्राह्मणी, क्षत्राणी, बनियाइन, सुनारिन, लुहारिन तथा रंगरेजिन आदि जातियों की युवतियां शामिल हैं।

बरवै—रहीम बरवै छंद के आविष्कारक माने गए हैं। इस में 108 छंद संगृहीत हैं। इस कृति के आरंभ में पहले छह दोहे मंगलाचरण के हैं। जिनमें श्रीगणेश, कृष्णजी, सूर्य भगवान, शिव तथा रामजी की वंदना है। इन दोहों में ऋतु-वर्णन, उद्धव तथा गोपियों के बीच संवाद, गोपियों के विरह, भजन-उपदेश आदि विविध भावों का मार्मिक चित्रण मिलता है।

बरवै नायिका भेद—इस रचना में 120 के लगभग दोहे हैं। आरंभ, मां सरस्वती की वंदना के साथ किया गया है। मंगलाचरण के उपरांत लेखक ने उत्तमा, मध्यमा, अधमा, स्वकीया, मुग्धा, अज्ञात यौवना, नवोढ़ा, प्रौढ़ा, परकीया, प्रेम गर्विता, रूप गर्विता आदि नायिकाओं का भेद बताते हुए उद्धरणों सहित विवेचन किया गया है।

मदनाष्टक—इस रचना में चौबीस छंद होने का उल्लेख मिलता है। शृंगार और प्रेम रस के इन छंदों में श्रीकृष्ण और गोपियों की रासलीला का सरस चित्रण किया गया है।

शृंगार सोरठा—इस रचना में उनके केवल छह सोरठे ही उपलब्ध हैं। इनमें कवि ने नायिका के रूप का सरस चित्रण किया है।

संस्कृत काव्य—रहीम विरचित कुछ पद संस्कृत में भी उपलब्ध हैं। किसी कृति के रूप में इन्हें नहीं बांधा जा गया है। इन पदों से इस बात की पुष्टि होती है कि इनका संस्कृत भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था।

फुटकर छंद—रहीम के कुछ पद ऐसे भी हैं जो ऊपरलिखित कृतियों में नहीं आते। इन स्फुट छंदों और पदों को 'फुटकर छंदों' के अंतर्गत रखा गया है। रहीम के काव्य का भावगत एवं विषयगत विश्लेषण करने के लिए इसे शृंगार, नीति एवं भक्तिपरक काव्य के रूप में विभाजित किया जा सकता है।

शृंगार काव्य—रहीम की बरवै नायिका भेद, मदनाष्टक, नगर शोभा, बरवै, शृंगार सोरठा आदि कृतियों में शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुंदर अंकन हुआ है। निम्नांकित दोहों में नायिका के नेत्रों और अधरों की मधुरता, उनके चितवनों का, नयन-बाण का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक ढंग से हुआ है—

''नैन सलौने अधर मधु,
कहि रहीम घट कौन।
मीठी भवे लोन पर,
अरु मीठे पर लौन।।''

''कुटिलन संग रहीम कहि,
साधु बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें,
उरज उमेटे जाहिं।।''

''कलवारी रस प्रेम को,
नैनन भरि भटि लेत।
जीवन मदमाती फिरै,
छाती छुविन न देत।।''

कवि ने प्रकृति के आलंबन, उद्दीपन, मानवीकरण तथा अलंकरणात्मक रूपों को बहुत सुंदर अंकन किया है। शृंगार रस के अंतर्गत प्रकृति का उद्दीपन रूप द्रष्टव्य है—

''रहिमन रजनी ही भली,
पिय सों होत मिलाप।
खरो दिवस केहि काम कौ,
रहिबौ आपुहि आप।।''

अतः रहीम ने अपने काव्य में संयोग के अंगों सौंदर्य, प्रेम, काम आदि का रोचक ढंग से निरूपण किया है। इनके काव्य में नायिकाओं की चेष्टाओं, अंगों, हाव-भाव, मुद्राओं तथा मनोदशाओं आदि का दिग्दर्शन होता है। 'नगर शोभा' में तो नगर में निवास करने वाली विभिन्न जातियों की युवतियों का सौंदर्य तथा उनके शारीरिक कामोद्दीपक अंगों की विशिष्टताओं का वर्णन अद्वितीय है।

भक्तिपरक काव्य—रहीम की हिंदू देवी-देवताओं में अटूट श्रद्धा एवं भक्ति भाव था। इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि रहीम ने रामायण, महाभारत, वेद तथा पुराणों आदि ग्रंथों का अध्ययन किया हुआ था। 'बरवै नायिका भेद' ग्रंथ की रचना से पूर्व, वह भारतीय परंपरा के अनुकूल मंगलाचरण करते हैं—

''वंदौ बिघन-बिनासन, ऋधि-सिधि ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि सीस।।''

''भज मन राम सियापति, रघु-कुल-ईस।
दीनबंधु दुखटारन, कोसलाधीस।।''

श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अर्चना के भाव, उनकी भक्ति भावना को प्रदर्शित करते हैं—

''जिहि रहीम मन आपुनो,
कीन्हों चतुर चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहे,
कृष्णचंद्र की ओर।।''

रहीम को अपने श्रीकृष्ण पर इतना विश्वास है कि जिसका रक्षक श्रीकृष्ण है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता—

''रहिमन को कोउ का करै,
ज्वारी चोर लबार।
जो पति-राखनहार हैं,
माखन-चाखनहार।।''

नीतिपरक—रहीम कृत नैतिक बोध का काव्य अपने आप में बहुत ही समृद्ध है। हर युग में मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने के लिए नैतिक मूल्यों की जरूरत बनी रहती है। उसी के आधार पर वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक उन्नयन का रास्ता तय किया जाता है। यह भी सत्य है कि भारतीय चिंतन, लोक केंद्रित रहा है और उसमें समष्टि हित की भावना सर्वोपरि रहती है। रहीम के दोहे इसका साक्षात् प्रमाण है। क्षमा जैसे मूल्य आज की संस्कृति के प्राण हैं—

''छिमा बड़ेन को चाहिए,
छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो,
जो भृगु मारी लात।।''

सत्य भारतीय संस्कृति का ही नहीं, अपितु जीवन का भी मूल आधार है। रहीम सत्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

''अब रहीम मुश्किल पड़ी,
गाढ़े दोऊ काम।
सांचेसे तो जग नहीं,
झूठे मिले न राम।।''

रहीम के अनुसार दुर्गुणी को सजा मिलनी चाहिए–

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुए मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

रहीम का कहना है कि नीच लोगों से न तो दोस्ती अच्छी है और न ही दुश्मनी–

''रहिमन ओछे नरन सों,
बैर भलो ना प्रीत।
काटे चाटे स्वान के,
दोऊ भांति बिपरीत।।''

रहीम का पूरा जीवन दर्शन, उनके इन नीतिपरक दोहों में व्यक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने काव्य में पूरा नीतिशास्त्र ही रच दिया हो। कहीं वह कहते हैं कि जब बुरे दिन आएं, चुप करके बैठना चाहिए, क्योंकि अच्छे दिन आते देर नहीं लगती और कहीं वह कहते हैं कि कुछ दिन की विपदा ही भली, क्योंकि इससे अपना हित और अनहित चाहने वाले का पता चलता है। एक दोहे के अनुसार उन्होंने स्थापित किया है कि यदि कोई किसी के पास मांगने चला गया तो उसका तो मरना हो ही गया, किंतु उससे पहले वह मर गया जिसके मुख से न निकल गई। इन्हीं नीतिपरक दोहों के कारण ही रहीम की अलग से पहचान है।

रहीम की काव्यभाषा–रहीम की कविता भाव ही नहीं वरन् भाषा, अलंकार, छंद की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व रखती हैं। उन्होंने भावों की संप्रेषणीयता के लिए लोकभाषा का चयन किया और उस काल में प्रयुक्त की जाने वाली ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, फारसी, उर्दू और संस्कृत भाषाओं को अपने काव्य सृजन के लिए चुना। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में ब्रजभाषा, काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अतः रहीम के दोहों में ब्रजभाषा का ही अधिक प्रयोग मिलता है। उन्होंने भाषा को क्लिष्ट कल्पना एवं प्रयोगों द्वारा बोझिल नहीं बनाया। भाषा की जो स्वाभाविकता इनके काव्य में परिलक्षित होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके काव्य में तत्सम्, तद्भव, देशज एवं प्रादेशिक शब्दों की बहुलता मिलती है। रहीम को छंद शास्त्र का अद्भुत ज्ञान था। जिस प्रकार जौहरी आभूषण में रत्न जड़ता है, उसी प्रकार दोहे में शब्द बैठाए जाते हैं। विषयानुकूल शब्द चयन इनके दोहों की विशिष्टता है। रहीम के दोहे-छंदो का मुकाबला कोई अन्य छंदकार नहीं कर सकता, क्योंकि इन्होंने विषय वस्तु एवं अलंकार, लोकजीवन में आने वाले प्रतिदिन के व्यवहार से ग्रहण किए हैं। सहजता इनके दोहों का आवश्यक गुण है। रहीम के दोहों में लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों का संयोग इन्हें कलात्मक संस्पर्श प्रदान करता है और अधिकतर दोहे लाक्षणिकता एवं व्यंग्यार्थ के कारण ही लोकप्रिय हैं। इनके दोहों में अलंकारों की छटा भी दर्शनीय है। शब्दालंकार और अर्थालंकार, इन दोनों प्रकार के अलंकारों की अभिव्यक्त रहीम के काव्य में उपलब्ध है। उपमा, रूपक, श्लेष, पुनरावृत्ति, विरोधाभास, काकुवक्रोक्ति, अन्योक्ति, यमक, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, लाटानुप्रास, आदि अलंकारों का प्रभावोत्पादक प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार रहीम का काव्य प्रेम, सौंदर्य, शृंगार और भक्तिरस की खान है। उन्होंने अपने दोहों में लोकनीति, लोकाचार, मानवीय धर्म आदि का अनेक धरातलों पर मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए प्रकृति और सामाजिक-धार्मिक जीवन से जुड़े सत्यों को बीन-बीन कर, ऐसे लोकभावन उद्धरणों को अपने दोहों का विषय बनाया है कि आश्चर्य होता है। वे विविध भावानुभूतियों के कुशल चितेरे हैं। तरुवर, ताड़, मेंहदी, चंदन वृक्ष, पेड़, बबूल, दादुर, भुजंग, कदली, सीप, खीरा, दीपक, कुम्हार, गौतम की पत्नी अहल्या, वामन अवतार, श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमानजी, भृगु ऋषि, सुदामा आदि को उद्धरण रूप में उकेरते हुए उपदेशात्मक, प्रेरणादायक, दार्शनिक सिद्धांतों तथा सामाजिक व्यवहारों का प्रतिपादन किया है। अतः रहीम के दोहों की ओजस्विता, प्रतीकात्मकता, बिंबधर्मिता, सिद्धहस्तता, कलात्मकता, प्रभाविष्णुता, सामाजिक-यथार्थता तथा वैचारिकता चमत्कारिक है। कितनी सदियां बीत जाने पर भी रहीम के दोहे आज संपूर्ण मानव समाज के जेहन में इस तरह रच-बस गए हैं कि उन्हें आए दिन बात-बात में सूक्तियों के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसीलिए ये सार्वकालिक, सार्वलौकिक तथा सार्वदेशिक हैं, कालजयी हैं।

आर.एन.-7, महेश नगर,
अम्बाला छावनी-122001

समरसता के पोषक

साधना श्रीवास्तव

हिंदी साहित्य के मुस्लिम धर्म विचारकों एवं साहित्यकारों में अब्दुर्रहीम खानखाना का उल्लेख एक समानधर्मी साहित्यकार के रूप में किया जाता है। रहीम अपने समय के साहित्यकारों में मूर्धन्य थे, जिनका चिंतन सार्वभौमिक था। अपने चिंतन को जनमानस तक पहुंचाने के लिए उन्होंने हिंदी मिश्रित बोलियों को अपनाया। अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने सत्य, धर्म, न्याय की शिक्षा तो दी ही, समाज को नैतिक उत्थान के लिए जाग्रत भी किया। भाषा के सरल प्रयोग से जन सामान्य को उनकी रचनाएं सहजता से कंठस्थ हो जाती और वे उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते थे।

हिंदी के महान मनीषी रहीम के पिता बैरम खां अकबर के संरक्षक थे। जिनको एक पठान सरदार ने धोखे से कत्ल कर दिया था, तब रहीम की आयु मात्र चार वर्ष थी। अकबर ने रहीम और उनकी मां को संरक्षण दिया। उनके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा की सुचारू व्यवस्था की। रहीम की कुशाग्र बुद्धि और पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था ने इनके कला कौशल को निखारा और मात्र ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने काव्य रचना प्रारंभ कर दी थी।

रहीम का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उनके व्यक्तित्व को उनकी विशेषताओं के द्वारा हम भली-भांति समझ सकते हैं।

बौद्धिक व्यक्तित्व—रहीम की कार्य-कुशलता, योग्यता और बुद्धिमता से प्रभावित होकर अकबर ने अजमेर की सूबेदारी एवं रणथंभौर का किला उन्हें प्रदान किया। दरबार के नवरत्नों में प्रमुख स्थान दिया। रहीम को अनेक भाषाओं एवं शास्त्रों का ज्ञान था। इन्होंने हिंदू-वेदशास्त्रों का भी अध्ययन-मनन किया था।

शाही परिवार में लालन-पालन होने के कारण यद्यपि रहीम को अभावों एवं परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ा तथापि वे जन सामान्य में घुल-मिल कर उनकी समस्याओं की जानकारी लेते एवं उनके समाधान करने का प्रयास करते थे।

किंवदंती है कि एक दिन एक गरीब ब्राह्मण ने खानखाना के द्वार पर जाकर कहा, नवाब से कहो कि तुम्हारा साढू आया है तो रहीम ने उसको सम्मान सहित बुलाकर अपने पास बैठाया एवं उसकी समस्या सुनकर उनकी सहायता की। किसी ने पूछा यह मंगता आपका साढू किस रिश्ते से हुआ? नवाब ने कहा, ''संपत्ति और विपत्ति दो बहनें हैं। एक (संपत्ति) हमारे घर में है और दूसरी (विपत्ति) इसके घर में, इस रिश्ते से यह हमारा साढू हुआ।''

अकबर के शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता स्थापित करने के जो प्रयास हुए उनके मूल में अब्दुर्रहीम खानखाना की प्रेरणा भी थी। रहीम की खासियत है कि उन्होंने मुस्लिम समाज के साथ-साथ हिंदू समाज में प्रचलित पौराणिक मिथकों का भरपूर प्रयोग किया है। इसी कारण उनके दोहे जन-जन के मानस में उतर गए तथा सूक्तियों के रूप में उनका प्रयोग होता है। यथा—

''रूठे सुजन मनाइए, जो रूठे सौ बार।
रहिमन फिर-फिर पोइए, टूटे मुक्ताहार।।''

खानखाना विद्वानों, कलाकारों की विशेष योग्यता को परख कर उनका सम्मान करते तथा उनकी कला को प्रोत्साहित कर नवीन रचना का निर्माण कराते। साथ ही कलाकारों के जीवन यापन हेतु समुचित व्यवस्था निजी धन से तो करते ही थे। राज दरबार में भी उनको उचित स्थान व सम्मान दिलाने का प्रयास करते।

राजनीतिक व्यक्तित्व—रहीम मुगल दरबार में उच्च पद पर आसीन थे, इससे उनके उत्तरदायित्व बहुत थे। वे उन सभी उत्तरदायित्वों का निर्वहन बड़ी कुशलतापूर्वक करते थे और एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था को कायम रखने में सफल रहते थे। अनेक युद्ध जीतकर उन्होंने मुगल शासन के दायरे को विस्तृत करने का संकल्प पूरा किया था। वे युद्ध का वीरतापूर्ण कौशल से संचालन करते थे। उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ से अकबर ने प्रजा-हित के अनेक कार्यों को अंजाम दिया। रहीम के साथी एवं परिजन भी उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से समाज सेवा एवं प्रजा-हित के कार्यों की ओर उन्मुख हुए।

साहित्यिक व्यक्तित्व—रहीम की रचनाओं—'रहीम दोहावली' या सतसई, 'बरवै नायिका भेद', 'शृंगार सोरठा', 'मदनाष्टक', 'रास पंचाध्यायी', 'नगर शोभा' मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होती हैं।

रचना संसार—रहीम ने अधिकांशतः नीति परक काव्य की रचना की है। भावात्मक एकता की दृष्टि से उनकी रचनाओं की आज भी उतनी प्रासंगिकता है, जितनी की उनके रचना काल में रही होगी। वे एक सरल, सहज, सत्य के चिंतक कवि थे। मानव जीवन की

संकीर्ण जीवन शैली के समयोचित परिवर्तन में विश्वास रखते थे। इसीलिए अपने दोहों से वे मानव के मूल स्वभाव की त्रुटियों को दूर रखना चाहते थे। जैसा मानव समाज वे देखना चाहते थे उसे सर्वप्रथम अपने जीवन में उतार कर आदर्श उपस्थित करते थे। उनका जीवन उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। रहीम के जीवन, साहित्य और व्यवहार इन तीनों में एक प्रकार की शुचिता एवं पवित्रता थी। इनका साहित्य सत्य जीवन का दर्शन कराता है। वे दानवीर उदार व्यक्ति थे। जब भी किसी की सहायतावश दान देते थे तो सदैव नीची नजरें करके देते थे। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा–

''देनहार कोउ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम मो पै करैं,
या ते नीचे नैन।।''

रहीम मानवीय गरिमा और उच्चता की पगडंडियों को भुलाना नहीं चाहते थे। वे हर अवस्था में मानव मूल्यों की सत्यता को जीवित रखना चाहते थे और इसलिए दान देने के पीछे, जो मूलभूत भावना काम करती थी, उसका बड़े सरल शब्दों में उल्लेख किया।

मानव की मूल प्रवृत्ति होती है किसी काम को करने के बाद उसका परिणाम सबको बताना और मैंने ही यह बड़ा काम किया ऐसा सोचकर अभिमान करना। रहीम ने इस प्रवृत्ति को नीति-दोहे के माध्यम से संशोधित करने के लिए कहा है–

''बड़े बड़ाई न करे,
बड़े न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहे,
लखा टका मेरा मोल।।''

प्रेम को जीवन का मूल मंत्र मानते हुए वे कहते हैं–

''रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर ना जुरे,
जुरे गांठ परी जाए।।''

जीवन का मूल मंत्र प्रेम होते हुए भी व्यक्ति के स्वाभिमान की रक्षा को सर्वोपरि मानते हैं और याचक वृत्ति को समाज का कलंक माना है। व्यक्ति को स्वाभिमान एवं अस्मिता कायम रखने की सीख देते हुए उन्होंने मांगने की लत वाले व्यक्ति को शववत् बताया है–

''रहिमन वे नर मर चुके,
जो कहुं मांगन जायं।
उनते पहिले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

रहीम का निजी जीवन सादा, सरल था। जाति-पांति, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब के भेद को वे नहीं मानते थे। समाज में योग्यतानुसार समान अवसर प्राप्त करने का अधिकार सभी को मिले यह उनकी सोच थी। योग्यता की परख जाति, धर्म, पंथ, अमीर, गरीब से परे रह कर होनी चाहिए इस तथ्य को समझाने के लिए उन्होने लिखा–

''रहिमन देखि बड़ेन को,
लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई,
कहा करै तरवारि।।''

तथा

''धनि रहीम जल पंक को,
लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है,
जगत पिआसो जाए।।''

इतना ही नहीं, जिसने जो काम किया है, उसका सही मूल्यांकन बिना किसी पक्षपात के समाज में होना चाहिए। इस पर भी रहीम ने कटाक्ष किया है–

''थोड़े करे बड़े न कूं,
बड़े बड़ाई होय।
त्यौं रहीम हनुवन्त सौं,
गिरधर कहे न कोय।।''

साथ ही इन्होंने महत् कार्य करने वालों की महानता को किसी भी प्रकार कम न आंकने की अनुशंसा भी की। जो व्यक्ति अच्छा कार्य करता है उसको पूर्ण आदर-सम्मान यदि दूसरा व्यक्ति नहीं देता तो यह उसकी निम्न मानसिकता का परिचायक है। महत् कार्य करने वालों को इससे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए–

''बड़े न जो कोऊ घट कहे,
तिन रहीम घट जान।
गिरधर मुरलीधर कहत,
मन दुःख कछु न मान।।''

बिना सोचे समझे समाज में दूसरों पर छींटाकशी, व्यंग्य करने वालों के उपचार का उपाय भी रहीम ने सरल उपमा से बताया है–

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुवे मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

ऐसे लोगों की बातों पर ध्यान न देकर अपने कार्य को सतत् प्रगति पथ पर बढ़ाते रहने का आशावादी सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

''रहिमन चुप ह्वै बैठिए,
देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आएंगे,
बनत न लागे देर।।''

रहीम एकेश्वरवाद को मानते हैं। पूरे मन से परमात्मा को सभी में एक समान देखते हुए उनका ध्यान करने से सभी की कृपा मनुष्य को मिलती है–

''एकै साधे सब सधे,
सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचवो,
फूलहिं फलहिं अघाय।।
अमर बेलि बिन मूल की,
प्रति पालन है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि,
खोजत फिरिए काहि।।''

रहीम दीन-दुःखी, निर्बल, निस्सहाय लोगों की सहायता को ईश पूजा के समान ही मानते थे तथा अपने स्वार्थ को न देखते हुए दीन-दुःखियो की सहायता करते थे। जैसे–

''तरवर फल नहिं खात है,
सरवर पिंअहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित,
संपत्ति संचहि सुजान।।
दीनन पै जो हित करै,
धन रहीम वे लोग।
कहां सुदामा वापुरो,
कृष्ण मित्रता जोग।।''

खानखाना स्वार्थपरता को सामाजिक जीवन का जहर मानते थे। अपने हित के लिए दूसरों की हानि करना, उन्हें नहीं रुचता था। मतलब के लिए मित्रता करना, नाते रिश्ते बनाना। काम निकल जाने पर मुंह मोड़ लेना। इन बातों का वे विरोध करते थे। उन्होंने दोहों के माध्यम से जन-मन को सीख देने का प्रयास किया–

''काज परै कछु और है,
काज सरै कछु और।
रहिमन भंवरी के परै,
नदी सिरावत मौर।।
कहि रहीम संपत्ति संगे
बन बहुत यह रीत।
विपति कसौटी जे कसै,
तेही सांचे मीत।।''

हिंदी के साथ संस्कृत, अवधी, फारसी में भी रहीम ने काव्य रचना की है। संस्कृत में खेट कौतुकम् ज्योतिष नामक ग्रंथ मिलता है। मदनाष्टक में संस्कृत मिश्रित खड़ी बोली में रचना की गई है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि रहीम एक महामानव थे। साहित्य के माध्यम से सामाजिक जीवन में सदाचरण, सामाजिक भाइचारे को स्थापित करने एवं सामाजिक, धार्मिक विभेदों को दूर करने के लिए वे सदा प्रतिबद्ध रहे।

संदर्भ ग्रंथ–

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक विजयेंद्र स्नातक, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, 1996, पृ. 123, 124
2. भारतीय मुक्तक परंपरा, लेखक डॉ. रामसागर त्रिपाठी, प्रथम संस्करण, 1960, पृ.115, 116, 117
3. मकरंद, मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र, भोपाल, कक्षा 12, पृ. 16

सज्जन चतुर सुजान

एहसास-ए-रूह के माहिर,
सज्जन चतुर सुजाना।
इनसानियत के कायल,
अब्दुर्रहीम खानखाना।।

मेवाती बेगम थीं माता,
और पिता थे बैरम खान।
दोनों के संस्कारों से युक्त थी,
उनकी ये संतान।।

बालपन में पिता को खोया,
सरपरसत अकबर सा पाया।
मुगल नीति की उथल पुथल ने,
जीने का सबक सिखाया।।

मानव से मानव मिले,
ऐसी थी उनकी चाहत।
जन समाज के हेल-मेल से,
मिलती थी उनको राहत।।

जाति-पांति और धर्म-पंथ की,
सीमा का फांद।
समरसता की डोर में पिरो,
कर दिया बांध।।

फैली थीं जन समाज में,
कुप्रथा और कुरीतियां।
सरल, सुबोध भाषा में,
जनमन को दी नीतियां।

अरबी, फारसी, उर्दू, हिंदी,
संस्कृत के महाज्ञानी।
पर जन समाज को हिंदी में ही
जगाने की ठानी।।

धीर, वीर, साहसी,
संस्कारवान और चरित्रवान।
दीन-हीन-निर्बल समाज की,
सेवा कर पाया सम्मान।।

राज-काज के कर्तव्यों का,
पालन ही था मुख्य ध्येय।
जनहित कारण तन-मन-धन का,
उत्सर्जन था सुदेय।।

ललित कला के ज्ञाता को,
देते थे सदा ही संरक्षण।
खानखाना के चरित्र का,
सबसे बड़ा था यह लक्षण।।

काव्य कला, चित्रकला, वास्तुकला,
का करते थे आराधन।
कलाकार की कुशलता देख,
देते उसे पूर्ण संसाधन।।

अकबर उनके गुणों के कारण,
भाई सा देता था मान।
पुण्यात्म अब्दुर्रहीम थे,
सब जीवों पर दयावान।।''

श्रीगणेश भवन, जीवाजी गंज, लश्कर,
ग्वालियर-474001 (म.प्र.)

दोहों का समाजशास्त्र तथा अब्दुर्रहीम खानखाना

डॉ. श्याम सिंह शशि

पाश्चात्य समाजशास्त्री समनर ने कहा था—''सोशियोलॉजी इज द सिस्टमेटिक स्टडी ऑफ सोसायटी''। इस सिस्टमेटिक स्टडी को दुर्खीम तथा जेम्सस फ्रेजर ने धर्म के साथ जोड़ कर एक नई मान्यता प्रस्तुत की। समाजशास्त्र के जनक अगस्त कॉम्ट से लेकर मैकाइवर व पेज तथा वेवलीन तक अनेक समाजशास्त्रियों ने जहां भिन्न-भिन्न समाज-दर्शन दिए वहां मार्गरिट मोड, हट्टन हर्शकोवित्स आदि मानव वैज्ञानिकों ने भारतीय जनजातियों सहित विश्व के पुरा समाजों का विशद अध्ययन किया। भारत के संत कवियों ने अंतःसाक्ष्य को अपने सृजन का आधार बनाया और ब्राह्य दृष्टि में भी समाज को परखा-देखा। उसमें जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव थे। एक अद्‌भुत अवलोकन दृष्टि थी, जिसने 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'बीजक' और अनेक संजीवनी ग्रंथ दिए। समाज को नई दिशा मिली और संत साहित्य भारतीय वाङ्मय तथा भारतीय साहित्य में भी स्थापित होता गया। साहित्य के समाजशास्त्र के साथ-साथ हम भारतीय समाजशास्त्र पर भी दृष्टिपात कर लें ताकि दोहों के समाजशास्त्र को समझने के लिए कुछ विचार-बिंदु प्राप्त हो सकें।

भारतीय समाजशास्त्रियों में आदि मनु के कथन चौदह मनुओं के अज्ञात इतिहास में समाए हैं, जिनकी खोज पुरातत्व शास्त्र तथा नृ-विज्ञान के द्वारा ही संभव है। आज मानव मशीन द्वारा बिग-बैंग को समझने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा महा प्रयोग किए जा रहे हैं किंतु मनवंतरों के मनुओं यानी स्वांभुव मनु से लेकर वैवस्वत मनु तक की सृष्टि-गाथा एक रहस्य है जिसे वेदों अर्थात् ज्ञान-ग्रंथों के मानव शास्त्रीय अध्ययन संभवतः उद्‌घटित कर सकें।

'मनुस्मृति' कोई एक ग्रंथ नहीं है जिसे मानव-स्मृति के आधार पर लिखा गया है। इसे किसी व्यासपीठ द्वारा गुरु-शिष्य परंपरा में हस्तांतरित किया गया होगा। शुंगकालीन मनु ने उसे संकलित किया। कुछ नया लिखा और बाद में मनु के नाम से उसमें अनेक प्रक्षेप किए गए जिसकी चर्चा आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती तथा अन्य विद्वानों ने की है।

वैदिक-समाजशास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन मानव-समाज के अलिखित इतिहास की खोज करता है। यह शोध पाषाण युग से पहले की बात करता है और एक अरब से अधिक वर्षों के सृष्टि-संवत् को विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद से जोड़कर नए तथ्यों को उजागर करता है। इस वेद में जहां प्रकृति के प्रति श्रद्धा -भाव तथा प्रार्थनाएं हैं, वहां यजुर्वेद में कर्मकांड साम में संगीत तथा अथर्व में विज्ञान के साथ-साथ कर्म पर आधारित समता-मूलक समाज का हाइपोथीसिस भी परिलक्षित है। सामवेद छंद शास्त्र को जन्म देता है, जो आगे चलकर उसके उपवेद-गंधर्व वेद द्वारा काव्य-धाराओं की व्याख्या करता है, जिसका अध्ययन प्राच्य काव्य शास्त्र का विषय है।

कालांतर में रस-अलंकार छंद शास्त्र के विधान बने और कविता छंद-यात्रा तय करते-करते हरिगीतिका, छप्पय, सवैया और दोहों तक पहुंच गई। आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण जैसे महाकाव्य की रचना की जिस पर आधारित तुलसी का 'रामचरित मानस' सगुण भक्ति को लेकर भारतीय समाज को एक दिशा देने में समर्थ सिद्ध हुआ। दूसरी ओर 'निर्गुण भक्ति' धारा ने दोहों की काव्य-कला को खूब पल्लवित-पुष्पित किया। डिंगल, पिंगल सवैया, चौपाई आदि पीछे छूट गए और धर्म तथा समाज की व्याख्या दोहों की सूक्तियों में समा गई। निर्गुण भक्ति धारा में कबीर सर्वोपरि माने जाते हैं। उनके पूर्वकालीन अथवा समकालीन संत कवियों में सूरदास, तुलसीदास तथा उनसे पूर्व के कवियों ने भी दोहे लिखे। उनके परवर्ती कवियों ने दोहों के द्वारा सामाजिक परिवर्तन में अद्‌भुत योगदान किया।

पूर्वकालीन कवियों में महाकवि बिहारी का शृंगार रस कालिदास के 'कुमारसंभव' को भी पीछे छोड़ देता है किंतु उनके एक दोहे की दो पंक्तियां किसी राजा को उसका कर्तव्य बोध करवाने में भी सफल सिद्ध होती है।। दोहों की पंक्तियां हैं—

''नहि पराग नहि मधुर मधु,
नहि विकास यहि काल।
अली कली ही सो बंध्यो,
आगे कौन हवाल।।''

चरम सत्ता ईश्वर के मुख्यतः दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण। उनके सगुण रूप में दृश्य-जगत का विकास अथवा विवर्त होता है। किंतु वास्तविक सत्ता निर्गुण ही होती है। गुणों के आधार पर उसका सर्वांगीण निर्वचन होना कठिन है। तमाम जगत में अंतर्यामी होते हुए भी वह तात्विक दृष्टि से अतिरेकी और

निर्गुण ही रहता है। वह राम-रहीम के दो रूपों में प्रतिष्ठित होते हुए भी एक ओंकार अथवा एकेश्वरवाद की आस्था में रूहानी रोशनी पाता है। यही एकमात्र सत्य है जिसे संतों की वाणी मनसा-वाचा-कर्मणा जीती रही है। कबीर, दादू, रैदास, मलूकदास और बाबा फरीद आदि संत कवि गुरु नानक को भी भाए थे। फलतः वे गुरु ग्रंथ साहिब में स्थान पा गए। हिंदी संत साहित्य में सूर, तुलसी तथा सगुण संत कवियों पर जितना लिखा गया उतना निर्गुण विचार धारा के संतों पर नहीं। कबीर अपवाद है, जिनकी वाणी को डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पूरी तरह पहचाना और कबीर वाणी का विशद मूल्यांकन किया। सूफी मत अल्लाह तथा राम का समेकित स्वरूप है अतः हिंदू और मुसलमान दोनों वर्गों ने उसे अपनाया।

दोहों का वास्तविक समाजशास्त्र कबीर से प्रारंभ होता है, जिसने हिंदू मुस्लिम समाजों में व्याप्त कुरीतियों पर कठोर प्रहार किया। कबीर ने मूर्ति-पूजा पर व्यंग्य करते हुए कहा था—

''पाहन पूजन हरि मिले,
तो मैं पूजूं पहार।
ताते ये चाकी भली,
पीस खाए संसार।।''

उन्होंने हिंदू मुस्लिम दोनों ही धर्मों की खबर ली और सतपथ का नव-दर्शन दिया। कबीर ने जाति-प्रथा से हटकर मानवता का संदेश जनभाषा में दिया। कबीर-वाणी कहती है।

''जाति न पूछो साधू की,
पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का,
पड़ी रहन दो म्यान।।''

दोहों का सामाजिक पक्ष जहां निर्गुण भक्ति पर अकाट्य तर्क प्रस्तुत करता है, वहां समाज की गली-सड़ी परंपराओं पर निर्भीक स्वर में आलोचना करने में भी पीछे नहीं रहता। कबीर के दोहों की यह विशेषता कबीर-पंथ को जन्म देती है। साहित्य की सम्यक् समीक्षा डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने की तथा संभवतः पहली बार आलोचना-साहित्य में कबीर तथा निर्गुण धारा दर्शन को उत्कृष्ट स्थान प्रदान किया गया।

वास्तव में दोहों तथा पदों में समाज-दर्शन भरा पड़ा है जो समाजशास्त्रीय अध्ययन को नई दिशा देता है। दोहों की काव्यधारा में रहीम अपना कथ्य कबीर की अपेक्षा बड़े शालीन ढंग से प्रस्तुत करते हैं—

''रहिमन देख बड़ेन को,
लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवै सुई,
कहा करै तलवार।।''

रहीम ने यद्यपि सोरठा, बरवै, सवैया और मालिनी छंदों में भी लिखा किंतु उनके दोहों ने ही उन्हें कालजयी कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके 700 दोहे 'सतसई' के रूप में प्रकाशित हैं। उनके दोहे नीतिपरक होने के साथ-साथ मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा इंडोलोजी जैसे विषयों के विशेषज्ञों के लिए अद्भुत चिंतन प्रदान करते हैं। उनके दोहों में आज के समाज को विश्व कल्याण के लिए संदेश कूट-कूट कर भरे हैं। भाषा इतनी सरल है कि किसी कोश को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

महाकवि रामधारीसिंह दिनकर अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' (पृष्ठ 317) में लिखते हैं—'हिंदुत्व इतना उदार था कि अनेक मतों के प्रति उदारता का बर्ताव करके उसने उन्हें अपना बना लिया था। किंतु, अब जो नया धर्म भारत में आया वह प्रजा का नहीं राजा का धर्म था और इस धर्म की चेष्टा यह थी कि हिंदुत्व से दोस्ती न करके उसे अपने ही भीतर आत्सात् कर लें। किंतु हिंदुत्व इस्लाम को लील नहीं सका। उलटे, इस्लाम से अपनी रक्षा करने के प्रयास में हिंदुत्व घोंघे की तरह सिकुड़ कर अपनी खोली में छिपने लगा। जात-पात के नियम उसने और भी कठोर बना लिए।''

सबसे पहले इस्लाम का प्रचार नगरों में आरंभ हुआ। क्योंकि, विजेता मुख्यतः नगरों में रहते थे। अंत्यज और निचली जाति के लोगों पर नगरों में सबसे अधिक अत्याचार होता था। ये लोग प्रायः नगर के भीतर बसने नहीं दिए जाते थे।... इस्लाम ने जब उदार आलिंगन के लिए अपनी बाहें इन अंत्यजों और ब्राह्मण-पीड़ित जातियों की ओर बढ़ाई तो ये जातियां प्रसन्नता से मुसलमान हो गई।

भारतवर्ष में इस्लाम के आगमन और प्रचार के साथ ही सूफी संतों का भी आगमन और प्रसार हुआ। एक ओर तलवार की धार थी, इस्लाम के प्रचार-प्रसार का जूनून था, राजसत्ता को हस्तगत करने का प्रयास था और दूसरी ओर इन संतों ने अपनी प्रेम भरी वाणियों से लोक-मानस पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। ये भावुक और सहृदय मुसलमान 'प्रेम-पीर की कहानियां लेकर साहित्य-क्षेत्र में आए। ये कहानियां प्रायः हिंदुओं के घर की थीं। भारतीय समाजशास्त्र में सूफी साहित्य का उदय एक सहज समन्वयवादी घटना थी जिसमें हिंदुत्व, इस्लाम, अध्यात्म तथा निर्गुण-सगुण सभी विचारधाराओं का विचित्र समावेश था।

रहीम न तो किसी धारा-विशेष के दोहाकार थे और न ही संत साहित्यकार। उनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। उनके पिता बैरम खां, अकबर की फौज में सेनापति थे। 17 सितंबर, सन् 1556 को लाहौर में जन्मे रहीम जब 4 वर्ष के थे तो उनके पिता युद्ध में मारे गए। बालक रहीम अनाथ हो गए। बादशाह अकबर रहीम को बहुत प्यार करते थे। वे उसे अपने महल में ले आए तथा पुत्रवत् परवरिश की। उन्होंने रहीम की मां सलीमा बेगम को भी अपने महल में रख लिया तथा उसे पत्नी का दर्जा दिया। रहीम को सल्तनत का कुछ हिस्सा भी मिला था।

रहीम बचपन से ही शेरो-शायरी करते थे। अकबर का प्रोत्साहन मिला तथा उन्हें मिर्जा खां की उपाधि भी प्रदान की गई। रहीम ने संस्कृत, हिंदी, उर्दू के साथ-साथ अरबी-

फारसी का भरपूर ज्ञान भी प्राप्त किया था। वे बहु-भाषाविद तथा बहुआयामी रचनाकार थे। उन्हें राजकवि भी कहा जा सकता है। रहीम को शाही वातावरण मिला था, अतः उनके काव्य में नीति-प्रधान दोहों की प्रधानता है। यह नीति समाजनीति से लेकर राजनीति तक यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। हम यहां उनके कुछ व्यक्तिपरक तथा समाज-सापेक्ष दोहों को उद्धृत कर रहे हैं।

''छिमा बड़न को चाहिए,
छोटन को उत्पात।
कहा रहीम हरि को घट्यो,
जो भृगु मारी लात।।''

यह लोकप्रिय दोहा मूल्यपरक शिक्षा के क्षेत्र में एक चिंतन-बिंदु की तरह शिक्षाशास्त्रियों को 'क्षमा वाणी' का संदेश देता है। तथा ऋषियों के महत्त्व को चित्रित करता है।

मानव-प्रकृति के संबंध में निम्न दोहे में एक सार-तत्व सन्निहित है—

''जो रहीम उत्तम प्रकृति,
का कर सकै कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं,
लपटे रहत भुजंग।।''

कुपात्र को दंड देना राज-काज के लिए महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य माना जाता है इस संबंध में एक नीतिपरक दोहा दृष्टव्य है—

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुए मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

आज का मानव कितना निर्लज्ज हो गया है, इस सबंध में रहीम का एक दोहा विवेक बनकर उपस्थित होता है और दर्शनशास्त्रियों के लिए कुछ सोचने को विवश कर देता है। रहीम कहते हैं—

''रहिमन पानी राखिए,
बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरें,
मोती-मानुष-चून।।''

मानव जीवन में दान का महत्व प्रकट करता है एक दोहा—

''रहिमन वे नर मर चुके,
जे कछुं मांगन जाहिं।
उनसे पहले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

वक्रोक्ति काव्य में प्राण-प्रतिष्ठा करती है तथा उसका सीधा संबंध लोक से होता है। लोकवाणी का उद्गम स्थल भी यही है जिसमें मुहावरे, लोकोक्तियां, पहेलियां तथा सुभाषित आदि लोकभाषा और लोकतत्व को समृद्ध करते हैं। रहीम-काव्य में भी यह सब देखने को मिलता है। लेकिन केवल कविता-कहानी लिखकर ही रचनाकार को अपने सृजन की इतिश्री नहीं माननी चाहिए। उसे विश्व वांड्मय को समृद्ध करने के लिए अन्य विधाओं में भी लिखना पड़ता है। रहीम यहां एक और मानवीय दृष्टि की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं। करुणा तथा दया से लबालब यह दोहा अप्लाइड समाज विज्ञानों के लिए एक कालजई संदेश देता है—

''दीन सबन को लखत है,
दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखत,
दीनबंधु सम होय।।''

बी–4/245, सफदरजंग एनक्लेव,
नई दिल्ली–110029

रहीम की काव्य शक्ति चेतना

डॉ. रत्नाकर पांडेय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि रहीम जीवन के सच्चे प्रत्यक्ष परिस्थितियों का मौलिक अनुभव करने वाले थे। उन्होंने तुलसी के वचनों के समान अपना प्रभाव छोड़ा था। हिंदीभाषी भू-भाग में सर्वसाधारण जन-जन के जिह्वा पर रहीम की रचनाएं स्मरणीय रहती हैं। सच्चा कवि भाषा के बंधन में नहीं बंधता बल्कि आत्म अनुभूतियों की सर्वव्यापकता को अपने शब्दों में जीवन प्रदान कर देता है। सच्चा कवि हिंदू-मुसलमान नहीं होता वह अपनी आत्म शक्ति से जो कुछ ग्रहण करता है वह उसका न होकर सारे समाज, राष्ट्र और मानवता की अनुभूति संपदा बन जाती है। अब्दुर्रहीम विश्वविख्यात कवि थे और उन्होंने अनेक भाषाओं में रचनाएं की थी। रहीम ने तुर्की, उर्दू, संस्कृत और फारसी का व्यापक धरातल ग्रहण किया है। यद्यपि रहीम ने मुगलयुगीन दरबारी वातावरण में नवरत्न रूप में अधिकांश जीवन का समय बिताया। तत्कालीन शासकीय राजनीति के वह शिखर पुरुष थे। रहीम ने नीति काव्य पर जो रचनाएं लिखी हैं वह केवल सामयिक प्रभाव डालने वाली नहीं बल्कि जीवन में पग-पग पर लगने वाली ठोकरों से इनसान को सावधान रखने का मूल मंत्र भी देती हुई दिखाई पड़ती हैं।

सन् 1556 में इतिहास प्रसिद्ध बैरम खां खानखाना के पुत्र के रूप में लाहौर में रहीम का जन्म हुआ था। उनकी मां सुल्ताना बेगम भारतीय मुसलमान थी। जब बैरम खां को पुत्र पैदा हुआ उस समय अकबर भी लाहौर में थे और उन्होंने ही बैरम खां के बेटे का नाम रहीम रखा था। बैरम खां के विवेकजन्य कूटनीतिक बुद्धिमत्ता से हुमायूं बहुत प्रभावित थे। हुमायूं ने बैरम खां को ही राजपाट का प्रबंध सौंप कर अकबर का अभिभावक भी नियुक्त किया था। बाद में बैरम खां राज्यद्रोही हो गए परंतु अकबर ने उनके विद्रोह को दबा दिया और उनकी यशःकीर्ति की रक्षा करते हुए उन्हें हज करने को भेज दिया। उस समय रहीम केवल चार वर्ष के थे। अकबर ने आगरा से शिशु रहीम को बुलाया, शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की और शाही परंपरा के अनुरूप उन्हें 'मिर्जा खां' का खिताब दिया। विद्या अभ्यास करते हुए रहीम ने तुर्की, अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत, हिंदी और कई अन्य भाषाओं का व्यापक अध्ययन किया। ग्यारह वर्ष की आयु आते-आते वह उपर्युक्त भाषाओं में काव्य रचना के लिए अत्यंत प्रतिभा संपन्न हो चुके थे। उन्हें किसी गुरु या उस्ताद की आवश्यकता नहीं थी। उनमें आशुकवि की शाश्वत शक्ति थी। रणक्षेत्र में हमेशा वह विजयी रहे और सामाजिक व्यवस्थाओं को जन-जीवन में सुदीर्घ और व्यापक बनाने के लिए जन-जन की आत्मा में प्रवेश पाने के लिए रहीम ने जो काव्य रचनाएं की वह अपने में अकेली एवं अद्‌भुत हैं। उनकी रचनाएं मौलिकता का द्योतक हैं और निरंतर समस्त मानव मन को संस्कार और शक्ति देने वाली हैं।

अकबर ने गुजरात विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में रहीम को सूबेदारी दी। कुंभलमेर और उदयपुर को विजय करने के उपरांत वह अकबर की निगाह में बहुत ऊंचे उठ गए। योग्यतम विश्वासपात्र रहीम को तत्कालीन 'मीर अर्ज' की उपाधि के साथ अजमेर की सूबेदारी और रणथंभौर का किला भी उपहारस्वरूप दिया। रहीम ने अपने प्राणों को संकट में डालकर ऐसी भीषण लड़ाई लड़ी कि मुजफ्फर को जंगलों में भागना पड़ा। रहीम सर्वविख्यात व्यक्ति थे। अकबर की नजरों में वह बैरम खां से भी बढ़कर थे। अंत में मुगल दरबार का सर्वोच्च पद जो राजा टोडरमल को प्राप्त था उससे रहीम को सम्मानित किया गया। मुगल दरबार की कहानियां बड़ी व्यापक हैं। नूरजहां की रहीम से नहीं पटी। बादशाह के विरुद्ध रहीम जहांगीर के साथ थे और सब कुछ अपना गंवा दिया और मर्दानगी से वह अकेले खड़े रहे।

रहीम सहज स्वभाव के निश्चल व्यक्ति थे। जीवन का अंतिम समय विरक्त होकर उन्होंने काटा। मृत्यु और विनाश के भीषण तांडव में रहीम ने कभी व्यावहारिकता नहीं छोड़ी। भयभीत हो मर्यादा का उल्लंघन कर विपत्तियों से घबरा जाना उन्होंने सीखा ही नहीं था। इन सबके प्रभाव से अपनी रचनाओं में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह बेजोड़ है। उन्होंने कहा है—

''रहिमन बिपदा हू भली,
जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में,
जानि परत सब कोय।।

× × ×

रहिमन चुप ह्वै बैठिए,
देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं,
बनत न लगिहै देर।।''

रहीम द्वारा लिखित कुल आठ काव्य कृतियां हिंदी जगत के समक्ष हैं—(1) रहीम दोहावली, (2) बरवै नायिका भेद, (3) बरवै संग्रह, (4) नगर शोभा, (5) मदनाष्टक, (6) शृंगार सोरठा, (7) रहीम काव्य, (8) खेट कौतुकम्।

प्रथम चार ग्रंथ ही रहीम के रचनात्मक उपलब्धियों का मार्मिक स्वरूप अपने में समेटे हैं। शेष चार ग्रंथ फुटकर पदों का विषयानुसार संकलन हैं। इधर-उधर बहुत से फुटकर पद भी उनके नाम से प्रचलित हैं। वास्तव में रहीम के अब तक 300 दोहे प्रकाशित हैं। सतसई भी उन्होंने लिखा था। वास्तव में रहीम दोहावली उनकी सबसे महान रचना है जिसमें 300 दोहे संकलित हैं। जो दोहे जन-जन की जुबान पर हैं उन्हीं का यह संकलन है।

रहीम व्यक्ति और समाज के गुण के पारखी थे और गुणी रचनाकारों को उन्होंने बिना किसी भेदभाव के भाषा जाति से ऊपर उठकर सम्मानित किया। दुखियों के लिए निरंतर उनका दरवाजा खुला रहता था। गंग, केशवदास, संत मंडन, जड़ा, प्रसिद्ध हरिनाथ तारा, अलाकुली, मुकुंद आदि ने न जाने कितने हिंदी के संत और कवि थे जो उनकी वीरता और दानवीरता का वर्णन करते हुए कृत-कृत्य हो जाते थे। गंग ने इनके दान की प्रशंसा करते हुए एक दोहा लिखा था—

''सीखे कहां नवाबजू,
ऐसी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचौ कियौ,
त्यों त्यों नीचे नैन।।''

रहीम ने उसी दोहे के नीचे लिखा—

''देनहार कोउ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर करैं,
याते नीचे नैन।।''

जहांगीर ने जब रहीम की जागीर छीन ली और अभावग्रस्त परिस्थितियों में चित्रकूट में वे जीवन जी रहे थे, उस समय भी याचक उनका पीछा नहीं छोड़ते थे। जब एक ब्राह्मण याचना करता हुआ पहुंचा तो रहीम खुद फाखामस्ती में थे। उस समय उन्होंने याचक ब्राह्मण को रीवा नरेश के नाम पत्र लिखकर दिया—

''चित्रकूट में रमि रहे,
रहिमन अवध नरेस।
जा पर विपदा परत है,
सो आवत यहि देस।।''

कहना न होगा कि रीवा नरेश ने एक लाख स्वर्ण मुद्राएं उस ब्राह्मण को दीं।

'बरवै नायिका भेद' में रहीम ने अपने हृदयगत अनन्य मार्मिक शृंगारपरक भावों का उद्घाटन करते हुए रागात्मक संबंधों की जैसी संवेदनाजन्य अभिव्यक्ति व्यंजनात्मक धरातल पर वर्णित की है वैसी हिंदी के अन्य किसी नायिका भेद में नहीं मिलती।

''लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया विथुरै बार।।
× × ×
पीतम इक सुमरिनियां, मोहि देहि जाव।
जेहि विधि तोर विरहवा, करब निभाव।।''

इस नायिका भेद ग्रंथ का मुकाबला केशवदास कृत 'रसिक प्रिया' को छोड़कर कोई ग्रंथ नहीं कर सकता। 'मदनाष्टक' संस्कृत और हिंदी की मिश्रित विलक्षण शैली में लिखा गया है। यह रहीम की मस्ती भरी चित्त-वित्तियों का जिंदादिल चित्रण है—

''विगत घन निशीथे चांद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंसी बजाई।।
रतिपति सुत निद्रा साइयां छोड़ भागी।
मदन सिरसि भूयः क्या बला आन लागी।।''

'खेट कौतुकम्' रहीम की ज्योतिष ज्ञान विषय संस्कृतनिष्ठ हिंदी पदों की रचना है। रहीम ने लिखा है—

''यदा मुश्तरी केंद्रखाने त्रिकोणे,
यदा वक्तखाने रिपौ आफतावः।
अतारिद् विलग्नो नरो वख्तपूर्णस्तदा
दीनदारो ऽथवा बादशाहः।।''

जन्म के समय बृहस्पति केंद्र में या त्रिकोण में सूर्य छठे घर में और बुध लग्न में हो तो वह मनुष्य अपने आप में बादशाह या महापुरुष बनता है।

'नगर शोभा' ऐसा शृंगार ग्रंथ है जिसमें रहीम ने रूप और सुंदरता का छविमय अंकन किया है। इन दोहों में उत्तर भारत में रहने वाली विभिन्न जातियों की महिलाओं के सौंदर्य की शृंगार व्यंजना वर्णन मतिराम और बिहारी की परंपरा को जीवंत रखा है।

'नगर शोभा' नामक कृति में प्रत्येक जाति के सौंदर्यपूर्ण गौरव को ध्यान में रखकर प्रत्येक जाति की नायिका का सौंदर्य चित्रण भी बड़े मन से और पूरी तरह डूब कर रहीम ने किया है। श्रेष्ठ ब्राह्मणी जाति के विषय की मौलिक परिकल्पना करते हुए रहीम ने लिखा है—

''उत्तम जाती ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय।।
× × ×
परजापति परमेश्वरी, गंग रूप समान।
जाके अंग तरंग में, करत नैन अस्नान।।''

उसी तरह कैथनि जाति की यौवना के विषय में अपनी कल्पना का रहीम ने इन पंक्तियों में वर्णन किया है—

''कैथनि कथन न पारई, प्रेम कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनौ, लिखे मैन की सैन।।
बरुनि बार लेखनि करै मसि काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिख नैन ते, पिय बांचन को देइ।।''

सुनारिन, कुम्हारिन, सुगंध बेचने वाली गंधिनी और रुई तांत से धुनाई करने वाली धुलियाइन आदि का उन्होंने बड़ा शृंगारिक चित्रण किया है। धुलियाइन का रूप वर्ण और उसकी लास्य रूप प्रकट करने में अपनी प्रेमपरक यौनोचित अंग-प्रत्यंग का चित्रण इस प्रकार किया है—

''धुनियाइन धुनि रैन दिन,
धरै सुरति की भांति।
बाकी राग न बूझि हो,
कहा बजावै तांति।।

काम पराक्रम जब करै,
छुबत नरम हो जाइ।
रोम-रोम प्रिय के वदन,
रुई सो लपटाई।।''

धोबन, गूजरी और अन्य जाति-उपजातियों की नायिकाओं को रहीम की देखने की रसमय दृष्टि है। कहीं खोट या कुटेब की दुर्भावना या वासनाजन्य अश्लील चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता। रहीम संस्कारशील कवि थे इसलिए सर्वत्र उनकी मौलिक दृष्टि की रचनात्मक शक्ति सर्वोपरि है।

रहीम हिंदू परंपराओं और रीति-रिवाजों व धार्मिक मान्यताओं के प्रति अपूर्व आस्तिक थे। उन्होंने शास्त्रीय अंतरकथाओं एवं तथ्यों को पूर्ण आस्तिता के साथ प्रकट किया है। इसीलिए रहीम—

''जै गरीब पर हित करें,
ते रहीम बड़ लोग।
कहां सुदामा बापुरो,
कृष्ण मिताई जोग।।''

रहीम ने सूर, तुलसी, नंददास आदि महान हिंदी कवियों की पंरपरा को आगे बढ़ाते हुए ईश्वर की खोज की जो अद्‌भुत परिकल्पना की है वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है—

''धूर धरत निज सीस पै,
कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी,
सो ढूंढत गजराज।।
× × ×
रहिमन को कोउ का करै,
ज्वारी, चोर, लबार।
जो पत राखन हार है,
माखन चाखन हार।।''

धर्मनिरपेक्ष और सर्व मानवता के हित में विश्वास करने वाले राष्ट्रीय चेतना का व्यक्तिगत शंखनाद करने वाले रहीम हमारे भारतीय जीवन के आदर्शों के प्रेरणास्त्रोत हैं। रहीम के व्यक्तित्व में नौ रत्नों के गुण थे। अकबरी दरबार में बिना गुणों के कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। वाक्‌पटुता के साथ व्यवहार कुशलता रहीम की काव्य शैली का बहुत बड़ा गुण है। रहीम के दोहे हर विद्वान, निपुण, अनपढ़, गंवार सब की जुबान पर इसलिए हैं कि रहीम के जो दिल में था वही जुबान पर लाते हुए अपनी लेखनी के माध्यम से जो नीति और नैतिकता का मंत्र लोगों के दिल में उकेर दिया वही जब तक मानवता रहेगी तब तक प्रकाश विहीन समाज को नैतिकता का प्रकाश देने का कार्य वह करेगा। उनके कुछ लोकप्रिय दोहे जो मुझे कंठस्थ हैं, वह यहां उद्‌धृत कर रहा हूं। इन दोहों ने हमारे निर्माण में, कठिन क्षणों में प्रेरणा दी, साथ दिया है। जीवन को शक्ति दी है वह ईश्वरीय आस्था का प्रतीक है।

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुवे मुखन को,
चहिए यही सजाय।।
× × ×
रहिमन विपदा हूं भली,
जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में,
जानि परे सब कोय।।
× × ×
रहिमन रहिला को भली,
जो परसे चित लाय।
परसत मन मैला करे,
सो मैदा जलि जाय।।
× × ×
रहिमन मोहि न सुहाय,
अमिय पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय,
मान सहित मरिबो भलो।।
× × ×
रहिमन पानी राखिए,
बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे,
मोती मानुस चून।।''

भक्तियुगीन काव्य साधना में कृष्णभक्ति, रामभक्ति, सगुण, निर्गुण, सूफी संत आदि अनेकानेक तत्कालीन पराधीन युग में भारतीयता को पराजित करने वाली शक्तियों से संघर्ष करने वाले और मानवता से विजयी बनने वाले कवि, कलाकार और चिंतक न होते तो देश अशोक के बाद ही पराधीन हो गया होता। निरंतर अडिग संघर्ष करते हुए भारतीय संस्कृति जीवन परंपरा के हित चिंतन का सटीक रचनात्मक कवियों ने उद्धार किया और लोगों को जीवन जीने की अमृत शक्ति दी, कष्टों को झेलकर सभी मानव मात्र को समानता की शक्तिमयी प्रेरणा दी। रहीम इस्लामिक संस्कृति के सपूत होकर भी जिस गति से भारतीय राष्ट्रीयता तथा मानव मात्र की रक्षा की वह हिंदू-मुसलमान नहीं बल्कि समस्त मानवता को विजयनी बनाने वाली महापुरुष की एक अपूर्व देन थी जो इतिहास में कम ही मिलती है। रहीम भारत के महान पुरुषों, श्रेष्ठतम कवियों में केवल हिंदी ही नहीं बल्कि समस्त उत्तर भारत की भाषाओं में अग्रणीय हैं।

फ्लैट नं.-2-4, प्लाट नं.-113-114,
कृष्ण कुंज, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

ओ रहिमन कौन सा पानी

अशोक चक्रधर

चौं रे चंपू! तेरी कापी में का लिख्यौ भयौ ऐ?

—चचा, कोरी है कॉपी।

—तौ कोरी कापी लै कै चौं घूमि रह्यो ऐ?

—पैन भी तो है मेरे पास।

—चलते-फिरते कबता लिखैगौ का?

—नहीं चचा! कविता लिखने के लिए कॉपी लेकर नहीं घूमना पड़ता। कविता जब आधी से ज्यादा खोपड़ी में बन चुकी होती है तब कागज पर आती है। और जब आती है तो कागज कहीं न कहीं से मिल ही जाता है। इस समय तो बैठने की जगह की तलाश में हूं। एक पत्रिका के रहीम विशेषांक के लिए लेख लिखना है। पता नहीं का लिखूंगा। विद्वानों में शरीक होना है तो बारीक विश्लेषण करके कोई खोजपूर्ण निबंध लिखूं क्या?

—खोज अबहिं खतम नायं भइ का?

—जब तक विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में पी.एचडी के लिए पंजीकरण होते रहेंगे, रहीम पर शोध जारी रहेंगे। अनेक पहलुओं के अनेक अनछुए पक्ष हैं। पुरानी स्थापनाओं पर अपना मत थोपना कठिन नहीं है।

—तौ फिर का सोची?

—किसी भी विषय पर नए सिरे से लिखा जा सकता है। जैसे मध्यकालीन साहित्य में रहीम का क्या योगदान है? अकबरकालीन समाज कैसा था? रहीम की भर्तृहरि, गांधी, विनोबा भावे, अन्ना हजारे वगैरह-वगैरह से तुलना की जा सकती है। उनकी समन्वय चेतना है, उनके मानवीय मूल्य भी हैं। बताइए, उनकी कविता में नीति, प्रीति, रीति, गीति जैसे तत्त्व ढूंढूं क्या? उनकी भाषा में कितनी भाषाएं समाहित हैं, इस पर सोचूं? आधुनिक संदर्भों में रहीम के तत्त्वों का आकलन करूं? बहुत ज्यादा उत्साह से काम लूं तो भूमंडलीकरण से भी रहीम का नाता जोड़ सकता हूं। बिजनिस मैनेजमेंट में रहीम के फंडे, बोलो क्या लिखूं?

—कछू लिखि दै। बगीची के तखत पर बैठ जा।

—उनके दोहे बचपन से सुने हैं। एक दोहा है, ''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून। पानी गए न ऊबरैं, मोती, मानस चून।।'' इस दोहे की व्याख्या करने वाले, तरह-तरह से करते रहे हैं। मोती पानी की बूंद से बनता है। मानस को मन का पानी चाहिए। चून में पानी न मिले तो भोजन कैसे मिले। पूरी जिंदगी अकबर और जहांगीर के लिए रहीम लड़ाइयां लड़ते रहे। इस दोहे में तलवार का पानी कहीं नहीं है। पानी तो बहुत तरह का होता है। समझ में नहीं आता, सिर्फ तीन तरह के उपयोग ही क्यों बताए रहीम ने?

—तौ लल्ला ऐसौ कर, डायरैक्ट रहीम ते ई पूछि लै कै पानी और कित्ते तरियां कौ होय?

—ये अच्छा आइडिया है चचा! अभी पूछता हूं रहीम से। कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी? गागर का पानी या सागर का पानी, अंदर का पानी या बाहर का पानी, आंख का पानी या नाक का पानी, रुतबे का पानी या धाक का पानी, कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी? शरम का पानी या धरम का पानी, करम का पानी या मरम का पानी, गहरे का पानी या चेहरे का पानी, पोखर का पानी या नहरे का पानी, कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी? निर्मल पानी या झिलमिल पानी, हलका पानी या बोझिल पानी, दरिया का पानी या गगरिया का पानी, मौत का पानी या उमरिया का पानी, कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी?

—और कौन सौ पानी, बताए जा!

—मोती का तो चलो उन्होंने बता दिया, पर मनौती का पानी! काठ का पानी कठौती का पानी, धार का पानी या लार का पानी, वार का या तलवार का पानी, कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी। रूप का पानी सरूप का पानी, पक्के या कच्चे कूप का पानी, छन्ने का पानी या गन्ने का पानी, फोकट का पानी अधन्ने का पानी, कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी? छाले का पानी या भले का पानी, काला पानी या नाले का पानी, जीने का पानी या पीने का पानी, मेहनत का पानी पसीने का पानी, कौन सा पानी, ओ रहिमन! कौन सा पानी?

—तौ लल्ला तू रहीम ते रार ठानिबे के चक्कर में है का?

—अरे, पंगा कौन लेगा चचा? रहीम की बातों में बड़ा सार था और रार ठान कर मैं रहीम से प्रेम का धागा नहीं तोड़ना चाहता। कहा था न उन्होंने, ''रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय। टूटे ते फिर ना जुरै, जुरै गांठि परि जाय।।'' मुझे रहीम के और अपने संबंधों में कोई गांठ नहीं लानी है। चचा, आई लव हिम।

जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली-110075

बहुभाषाविद् तथा अनुवादक रहीम

डॉ. अमूल्यरत्न महांति

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल और रीतिकाल के संधिस्थल पर खड़े होकर रहीम ने भारतीय चिंतन परंपरा तथा अतीत के गौरवशाली इतिहास का पूर्ण परिपाक करते हुए साहित्य-सृजन किया। अपने काव्य में लोक-संग्रह और लोक-रंजन का समन्वय कर लोकचेतना को समृद्ध बनाया।

रहीम बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। जहां एक ओर वे असाधारण वीर, साहसी सेनापति, कुशल प्रशासक और विवेकवान राजनीतिज्ञ थे, वहीं दूसरी ओर एक सफल साहित्यकार, अनुवादक और बहुभाषाविद् थे। संस्कृत काव्य 'खानखाना चरितम्' के रचयिता रुद्र सूरी ने इनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखा है—

''सकल गुण परीक्षके सीमा,
नरपति मंडल बदनैक धामा।
जयति जयति गीयमाननामा,
गिरिबन राज—नवाब खानखाना।।''[1]

रुद्र सूरी का यह कथन भी उनके बहुभाषाविद् होने का संकेत देता है। रहीम तुर्की-फारसी, उर्दू-अरबी, संस्कृत-हिंदी आदि भाषाओं के उद्भट विद्वान थे। अरबी, तुर्की, फारसी, हिंदी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं पर अधिकार होने के कारण ये अपने युग में सर्वोत्तम भाषाविद् माने जाते थे।[2] केवल इन भाषाओं पर ही नहीं, इनके अलावा हिंदी की प्रमुख बोलियों ब्रज, अवधी और खड़ी बोली पर भी रहीम की जबरदस्त पकड़ थी।

रहीम एक सफल अनुवादक थे। साहित्य-जगत में उनका आगमन एक अनुवादक के रूप में हुआ था। सबसे पहले साहित्य क्षेत्र में रहीम ने अपनी अनुसृजनात्मक लेखनी द्वारा बाबर के तुर्की भाषा में लिखित आत्मचरित 'तुजुक-ए-बाबरी' का फारसी में अनुवाद किया और उसका नाम 'वाकेआत बाबरी' रखा।[3] इस संबंध में डॉ. समर बहादुर सिंह ने अपनी कृति 'अब्दुर्रहीम खानखाना' में लिखा है 'तुजुक-ए-बाबरी' का 'वाकेआत बाबरी' नाम से ऐसा सरस और सुबोध फारसी अनुवाद देखकर अकबर का हृदय गद्गद हो गया था और उसने रहीम की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।[4] साहित्य जगत को यह रहीम की प्रथम देन थी।[5] 'तुजुक-ए-बाबरी' के दो अन्य अनुवाद होने के बावजूद रहीम द्वारा अनूदित 'वाकेआत बाबरी' सबसे उत्तम अनुवाद सर्वप्रसिद्ध हुआ।[6]

प्रत्येक सृजन-कर्म मूलतः अनुवाद कर्म है। यह अनुभूतियों, आवेगों-भावों तथा विचारों की शाब्दिक यात्रा है। चिंतन से प्रारंभ हुई यह प्रक्रिया, भाषा-विशेष में जाकर शब्दों के रूप में अनूदित होकर रूप ग्रहण करती है और रचनाकार की रचना बन जाती है। यही कारण है कि अनुवाद-कर्म की प्रक्रिया सार्वभौमिक है, सार्वकालिक है। इसी दृष्टि से प्रत्येक सर्जक एक अनुवादक है। कविवर रहीम भी इसके अपवाद नहीं हैं। उन्होंने भारतीय वाङ्मय के अनेक प्रसंगों और कथाओं को अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। लेकिन इसमें वे प्रसंगों को सीधा लाकर अपनी रचना में स्थापित नहीं करते, वरन् इससे भावों एवं प्रभावों को ही ग्रहण करते हैं। जिससे वे अपने को भावानुवादक की कोटि में शामिल कर लेते हैं। गौर से देखा जाए तो उनका यह अनुवाद-कर्म 'सृजनात्मक अनुवाद' है और वे अपने इस 'सृजनात्मक अनुवाद' के माध्यम से ही लौकिक ज्ञान की अनुभूति करवाते हैं।

रहीम मुगल सम्राट अकबर की सर्वधर्म समन्वयवादी नीति के ज्वलंत प्रमाण थे। वे स्वयं मुसलमान होते हुए भी हिंदू, पारसी, ईसाई, बौद्ध, जैन धर्मों तथा धर्म ग्रंथों के प्रति आदर का भाव रखते थे। इन्होंने भागवत, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, देवी-भागवत, नीति शतक, प्रसंगाभरणम्, शारंगधर पद्धति, हितोपदेश, पंचतंत्र, चाणक्य नीति आदि धार्मिक एवं नैतिक ग्रंथों का मनोमंथन कर जो ज्ञान-विभा अर्जित की, बड़ी चतुराई से सृजनात्मक पूंजी के रूप में अपनी रचनाओं में उसका प्रणयन किया।

रहीम, संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से संस्कृत-काव्य सृजन कर अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया। अपने संस्कृत ज्ञान के कारण इन्होंने संस्कृत साहित्य से भावों-प्रसंगों की छाया ग्रहण की। भर्तृहरि कृत 'नीतिशतक' में इस बात का उल्लेख है कि जो उत्तम प्रकृति के व्यक्ति होते हैं, बुरी संगत में होने पर भी अच्छे ही बने रहते हैं—

''विकृतिं नैव गच्छंति, संगदोषेण साधवः।
प्रवेष्टितं महासर्पेश्चंदनं न विषायते।।''
—(नीतिशतक, 76)

रहीम ने इससे भाव ग्रहण कर इसका जो सृजनात्मक अनुवाद किया वह देखते ही बनता है—

''जो रहीम उत्तम प्रकृति,
का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं,
लिपटे रहत भुजंग।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा 81, पृ. 85)

इसी प्रकार याचकता के प्रसंग में 'प्रसंगाभरणम्' में यह दर्शाया गया है कि याचकता बहुत बड़ा निकृष्ट कर्म है। इससे विश्व के कण-कण में रचे बसे विष्णु भगवान भी बौने हो जाते हैं—

''याचना हि पुरुषस्य महत्त्वं,
नाशयत्यखिलमेव तथाहि।
सद्य एवं भगवानपि विष्णुर्वामनो
भवति याचितुमिच्छम्।।''
—(प्रसंगाभरणम्, 17)

रहीम ने 'प्रसंगाभरणम्' के इस श्लोक से पूर्ण प्रभाव ही ग्रहण नहीं किया, अपितु अपनी भाषा में शब्दानुवाद करते हुए यह दोहा रच डाला—

''रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आंगुर गात।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-234, पृ. 101)

संस्कृत साहित्य में नीति वचनों का वर्चस्व है। संस्कृत के नीति काव्य में यह बताया गया है कि सरोवर और वृक्ष क्रमशः जल और फल धारण करते हैं किंतु स्वयं उसका सेवन नहीं करते, उसी प्रकार सज्जन परोपकार हेतु अपनी संपत्ति का संचय करता है। जैसे—

''पिवंति नद्यः स्वयमेव नाभ्यः,
स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः।
पचोमुचाम्भः क्वचिदस्ति पास्यं,
परोपकाराय सतां विभूतयः।।''

संस्कृत के इस श्लोक के आधार पर रहीम ने जो दोहा रचा, आज वह सबकी जीभ पर है—

''तरुवर फल नहिं खात है,
सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित,
संपत्ति संचहि सुजान।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-96, पृ. 86)

संस्कृत की अनूठी कृति 'शारंगधर पद्धति' के एक श्लोक में यह बताा गया है कि दुर्जन व्यक्ति से वैर अथवा प्रीति नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसका स्वभाव कुत्ते जैसा है। जिस तरह कुत्ते के काटने और चाटने दोनों से व्यक्ति के अनिष्ट होने का भय रहता है, ठीक उसी प्रकार का परिणाम दुर्जन व्यक्ति से वैर और प्रीति रखने पर ही मिलता है—

''वर्जनीयो मतिमता दुर्जनः सख्यवैरयोः।
श्वा भवत्पकाराय लिहन्नपि दशन्नपि।।''
—(शारंगधर पद्धति, 367)

रहीम ने इस श्लोक से सार ग्रहण करके इसकी अभिव्यक्ति अपने ढंग से की है—

''रहिमन ओछे नरन सों,
बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के,
दोऊ भांति विपरीति।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-184, पृ. 96)

अपनी रचना में रहीम ने न केवल शब्दानुवाद या भावानुवाद को महत्त्व दिया है, अपितु छायानुवाद के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। 'भाग्य' के बारे में संस्कृत में यह श्लोक कहा जाता है कि जिस जीव की रक्षा दैव करता है, वह अरक्षित होते हुए भी सुरक्षित रहता है और जिसे मारना चाहता है वह सुरक्षित होते हुए भी नष्ट हो जाता है—

''अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहतं विनिश्यति।
जीवत्थनोऽपि बने बिसर्जितः,
कृतप्रयतनोऽपि विनिश्यति।।''
—(शारंगधर पद्धति, 446)

रहीम ने अपने दोहे में इस भाव को कुछ ऐसे ही ढंग में व्यक्त किया है—

''रहिमन बहु भेषज करत,
व्याधि न छाड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन,
हरि अनाथ के नाथ।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-225, पृ. 100)

अन्यत्र, 'हितोपदेश' से भी रहीम आधार ग्रहण करते हुए नजर आते हैं। हितोपदेश में 'नियति' को सर्वशक्तिमान मानते हुए उसके प्रभाव को दर्शाया गया है। इसमें यह कहा गया है कि यद्यपि संसार में स्वर्ण मृग न होने के बारे में हर कोई जानता है फिर भी श्रीराम जैसे सर्वज्ञ व्यक्ति भी स्वर्ण मृग को देखने पर ललचा गए। इससे स्पष्ट है कि विपत्ति आने पर बुद्धि भी कुंद हो जाती है—

''असंभव हेम मृगस्य जन्म,
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले,
धियोपि पुंसां मालिनी भवंति।।''
—(हितोपदेश-24, पृ. 1)

रहीम ने 'हितोपदेश' के इस श्लोक में अंतर्निहित भाव को ग्रहण कर अपनी रचनात्मक प्रतिभा के जादुई स्पर्श से इसे कुछ ऐसे ही व्यक्त किया—

''जो रहीम भावी कतौं,
होति आपुने हाथ।
राम न जाते हरिन संग,
सीय न रावन साथ।।''
(रहीम ग्रंथावली, दोहा-90, पृ. 86)

संस्कृत के किसी नीति काव्यकार ने अपने श्लोक के जरिए नदियों, नाखून वाले प्राणियों, सींग वाले पशुओं, शस्त्रधारी और राजकुल की नारियों पर कभी विश्वास न करने की बात कही है—

''नदीनां नखिनां शृंगिणां शस्यपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।।''

संस्कृत के इस श्लोक से रहीम ने भाव तो ग्रहण किया किंतु उसमें वर्णित चरित्रों में परिवर्तन कर दिया। उन्होंने लिखा कि सांप, घोड़ा, नारी, राजा, नीच जाति के मनुष्य तथा शस्त्रों से सावधान रहना चाहिए क्योंकि ये उलटते ही वार करने से चूकते नहीं। जैसे—

''उरग, तुरंग, नारी नृपति,
नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए,
पलटत लगै न बार।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-17, पृ. 78)

'पंचतंत्र' में सूर्य को प्रतीक मानकर महान पुरुषों की बात कही गई है। जिस प्रकार उदय-अस्त के समय सूर्य एक प्रकार लाल-सा बना रहता है, ठीक उसी प्रकार महान व्यक्ति संपन्नता-विपन्नता के दौरान एक समान बने रहते हैं—

''उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।।''
—(पंचतंत्र, 2-6)

रहीम अपने दोहे में इस श्लोक से मर्म तो ग्रहण करते हैं पर उसका शब्दानुवाद नहीं करते। उसे स्वतंत्र रूप देते हैं। वे अपने दोहे में 'सूर्य' शब्द के बदले 'चंद्रमा' शब्द का प्रयोग करते हैं—

''यों रहीम सुखदुख सहत,
बड़े लोग सह सांति।
उवत चंद जेहि भांति सों,
अथवत ताही भांति।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-173, पृ. 95)

संस्कृत साहित्य में नीति की चर्चा मुखर है। संस्कृत में चाणक्य और भर्तृहरि अपने-अपने नीतिकाव्य के लिए विशेष स्थान रखते हैं। 'चाणक्य नीति' और 'नीतिशतक' में एक ही भावबोधक श्लोक है जिसमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील-गुण और धर्म से रहित मनुष्य का उदाहरण सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है—

''येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरंति।।''
—(चाणक्य नीति, 10-7, नीतिशतक-13)

रहीम पर चाणक्य और भर्तृहरि के नीतिकाव्य का बहुत अधिक प्रभाव था। अतः उन्होंने इस श्लोक से भाव ग्रहण करके उसमें थोड़ा परिवर्तन के साथ दोहा रचने में इसका उपयोग किया। जैसे—

''रहिमन विद्या बुद्धि नहिं,
नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै,
पसु बिनु पुंछ विषान।।''
—(रहीम ग्रंथावली, पृ. 21, दोहा-232)

रहीम की रचना पर केवल संस्कृत का प्रभाव नहीं है या फिर यों कहिए कि रहीम ने न केवल संस्कृत से ही अपने अनमोल रत्नों का संग्रह किया है। इन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त पालि-प्राकृत और अपभ्रंश से भी अपने दोहे के ताना-बाना बुनने की सामग्री इकट्ठी की है और उसे अपने ज्ञान तथा लोकानुभव के करघे में डालकर अनुवाद के द्वारा सुंदर पट का रूप दिया है। उदाहरण के तौर पर जातक कथाओं में याचना के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

''याचन सेदनं आहु पंचालानं रथै सभ।
यो याचनं पच्चक्खाति तमाहु पटि रोदनं।।''
—(जातक-3)

आगे रहीम इस दोहे से केवल भाव ही नहीं, शब्द तक भी ग्रहण कर लेते हैं और मधुप की तरह अपने संचित मधु से हिंदी के रसिक जनों के हृदतंत्री में मिठास की अनुभूति करवाते हैं—

''रहिमन वे नर मर चुके,
जे कहुं मांगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''
—(रहीम रत्नावली, पृ. 21, दोहा-234)

संस्कृत, पालि-प्राकृत, अपभ्रंश आदि कवियों के व्यतिरेक उनके पूर्ववर्ती हिंदी कवियों का प्रभाव भी रहीम के काव्य में स्पष्ट झलकता है। रहीम की रचनाओं में कबीर, सूर तथा तुलसीदास की पंक्तियों का भावसाम्य ढूंढा जा सकता है। यों कहिए कि रहीम ने इन कवियों से भाव और विचार दोनों ही ग्रहण किए हैं और इन्हें अपनी सृजनात्मक अनुवादकीय प्रतिभा का प्रलेप चढ़ाकर बड़ी रोचकता से हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इस क्रम में आइए देखें—

कबीर की रचनाओं से रहीम का भावसाम्य—

''मारी मरूं कुसंग की, केला कांठै बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि।।''
—(कबीर)

''कहु रहीम कैसे निभे, बेर केर को संग।
वो डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।।''
—(रहीम रत्नावली, दोहा-35, पृ. 80)

''हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समंद में, सो कत हेरी जाइ।।
—(कबीर)

''बिंदु मों सिंधु समान को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आप तें।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-298, पृ. 108)

सूरदास से रहीम की काव्यिक समानता—

''सीप गयो मुक्ता भयो,
कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो,
संगत को फल सूर।।''
—(सूरदास)

''कदली, सीप, भुजंग-मुख,
स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए,
तैसोई फल दीन।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-25, पृ. 79)

''मानत नहीं लोक-मर्यादा
हरि के रंग मजी।
सूरश्याम को मिली
चूने हरदी ज्यों संग रजी।।''
—(सूरदास)

''रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून।।''
—(रहीम ग्रंथावली, दोहा-223, पृ. 100)

तुलसीदास से रहीम की समानता–

''तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमें पूछिहै कौन।।''
–(तुलसीदास)

''पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन।।''
–(रहीम ग्रंथावली, दोहा-126, पृ. 90)

रहीम की काव्यिक यात्रा का अवलोकन करने पर यह बात उभर कर सामने आती है कि रहीम एक सफल अनुवादक हैं, जिन्होंने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का उपयोग कर संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी आदि अनेक भाषाओं का सार तत्त्व ग्रहण किया और अपनी रचना को संपुष्ट बनाया।

रहीम राष्ट्रीय ऐक्य के मूर्तिमंत प्रतीक हैं। उन्होंने तद्युगीन समाज के सांस्कृतिक विनाश को रोकने के लिए संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषा-साहित्य के अनेकानेक प्रसंगों को अपनी सहानुभूति का जामा पहनाया। उसका शब्दानुवाद, भावानुवाद और छायानुवाद करके अपने काव्य को नई अर्थवत्ता तथा अर्थदीप्ति प्रदान की जिससे उनका साहित्य सदा के लिए जनता की धरोहर बना।

संदर्भ ग्रंथ–

1. खानखाना चरितम्, रुद्र सूरि-3/13
2. History of Jahangir, Beni Prasad, P. 21-22
3. रहीम काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. मंजू शर्मा, पृ. 50
4. अब्दुर्रहीम खानखाना, डॉ. समरबहादुर सिंह, पृ. 7
5. अकबरनामा, भाग-3, पृ. 862
6. मुगलकालीन भारत, सैयद रिजवी, पृ. 18
7. रहीम ग्रंथावली, संपादक डॉ. विद्यानिवास मिश्र और गोविंद रजनीश।
8. रहीम रत्नावली, संपादक, पं. मायाशंकर याज्ञिक
9. रहीम साहित्य की भूमिका, डॉ. बमबम सिंह 'नीलकमल'
10. रहीम का नीतिकाव्य, डॉ. बालकृष्ण अकिंचन।

सहायक सचिव, हिंदी शिक्षा समिति, ओड़िशा,
अरुणोदय मार्केट, कटक-12 (ओड़िशा)

जन-चेतना के संवाहक और जीवन-रस स्रोत रहीम

शशिधर खान

मानव मन की एक सर्वव्याप्त विसंगति यह है कि मनुष्य सुख में तो अपने में ही लीन रहता है और इसका भोग भी स्वयं करना चाहता है। किसी के साथ बांटना उसे अच्छा नहीं लगता। लेकिन दुख के समय मनुष्य को अपने आस-पड़ोस और दूर-दराज के लोग याद आने लगते हैं। बाहरी दुनिया और समाज से जुड़कर मन हल्का करना चाहता है। उसे अपने ही अंदर से निकले भ्रम को पालने में तात्कालिक संतोष मिलता है कि कोई-न-कोई तो बांटने वाले मित्र मिल जाएंगे। चूंकि दुख कोई नहीं चाहता, इसलिए दुख मनुष्य को पीड़ा देता है और ज्यादा समय तक सालता है। यह मानव-जीवन का सत्य है और इसी को नीतिगत बनाया है अंतर्चेतना को स्वर देनेवाले महान संत कवि रहीम ने—

''रहिमन निज मन की व्यथा,
मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलई हैं लोग सब,
बांटि न लई हैं कोय।।''

भक्तकालीन युग के सर्वाधिक प्रभावशाली कवि रहीम न केवल अपने समय के, बल्कि हर समय, हर युग के लिए महान माने जाते हैं। विशेषकर नीति-काव्य के क्षेत्र में वे अद्वितीय और अतुलनीय हैं। रहीम के दोहे हिंदी साहित्य की ऐसी धरोहर हैं, जिन्हें जानने के लिए हिंदी अलग से कोई विषय के रूप में पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। अक्षर ज्ञान प्राप्त करने के बाद से ही आपको सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, कबीर की तरह रहीम से भेंट हो जाएगी। लेकिन इन सबों में सबसे विशिष्ट स्थान रहीम का है। एक बार अगर आपने रहीम के दोहे सुन लिए या कहीं पढ़ लिए तो अंतिम सांस लेने तक उन दोहों की याद आती रहेंगी। मन के अंदर और बाहर से लेकर जीवन का कोई पहलू रहीम की सीख से अछूता नहीं है। पग-पग पर आपकी जुबान पर रहीम के दोहे आपका मार्गदर्शन करने और नीति के रास्ते पर चलते रहने को प्रेरित करते हैं।

इसलिए रहीम को अंतर्चेतना की अतल गहराइयों में समाने वाला कवि माना गया है। चाहे प्रेम हो, सांसारिक या संन्यासी का जीवन हो अथवा सामाजिक जीवन के जीविकोपार्जन, आपसी संबंध, व्याधि, मृत्यु समेत कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां जीवन-रस से परिपूर्ण रहीम न हों।

अर्ब्दुरहीम खानखाना बादशाह अकबर के नौ रत्नों में से एक थे, जिसे भारतीय साहित्य और संस्कृति के उन्नयन का स्वर्णिम काल कहते हैं। लेकिन रहीम की रचनाओं में जो यथार्थ है, वह कल्पना की दुनिया नहीं है। उनके दोहे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने रहीम के अपने समय में रहे होंगे। सारे उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन, अंधेरा-उजाला और फूल-कांटे इस रस में सराबोर हैं। जो आंखों के सामने देखा, भोगा, महसूस किया, वही समाज को समर्पित कर दिया। जीवन की सच्चाई से ओतप्रोत का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि पानी के लिए हाहाकार मचने के समय आपके मुंह से अपने-आप निकल जाता है—

''रहिमन पानी राखिए,
बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे,
मोती मानुष चून।।''

हालांकि इसका तात्पर्य उस पानी से नहीं है, जिस संदर्भ में यह दोहा हमारे मुंह से निकलता है। लेकिन हमारे मन-मस्तिष्क में किसी-न-किसी रूप में रहीम विद्यमान तो हैं। रहीम ने इस प्रतीक के माध्यम से मर्यादा पालन की शिक्षा दी है और उत्तम चरित्र पर बल दिया है, जो शालीन व्यक्तित्व का मधुसार है। उनकी दृष्टि में पानी या मान मानव-जीवन का वजन है—

''मान सहित विष खाइके,
संभु भयो जगदीश।
बिना मान अमृत पिए,
राहु दपयो सीस।।''

रहीम दोहावली में सब कुछ है। यह वास्तव में ज्ञानामृत कलश और जन-चेतना का शाब्दिक स्वरूप है। मनुष्य को विपत्ति और दुख देनेवाली तृष्णा पर नियंत्रण तथा संतोष को रहीम ने सबसे बड़ा सुख माना है। निर्गुण और सगुण ब्रह्म दोनों है। समाज में रहते हुए भी वैरागी और सांसारिक काम करते हुए भी उससे निर्लिप्त वीतराग होने का उपदेश रहीम देते हैं। अर्थात् चाहत का अंत ही सबसे बड़ी विजय है—

''चाह गई चिंता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए वो ही साहनसाह।।''

ऊपर हमने दुख का उल्लेख किया है, जिसमें मृत्यु भी शामिल है। लोग सोचते हैं कि मृत्यु के समय किसी के साथ बैठकर रो लेने से मन हल्का हो जाता है। दुख की चर्चा अपने बंधु-

बांध्वों से करने से हम समझते हैं कि वे भी दुखी होंगे। इसकी सीख रहीम ने दी है कि दुख कोई नहीं बांटता, उल्टे सुनकर सब उपहास उड़ाते हैं।

यह बात तो दुनिया के सभी संत-महात्माओं ने कही है कि दुख आदमी को मांजता है। लेकिन रहीम का अंदाजे-बयां सबसे अलग है–

''दिव्य दीनता के रसहि का जाने जग अंधु।
भली विचारी दीनता दीनबंधु से बंधु।।''

रहीम के मुताबिक दुख वह कसौटी है, जिसके द्वारा सच्चे तथा कच्चे मित्रों, सगे-संबंधियों की खरी परीक्षा हो जाती है–

''रहिमन विपदा हूं भली,
जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में,
जान परत सब कोय।।''

कुसमय या दुर्दिन के समय तो मित्र भी शत्रु जैसे घातक हो जाते हैं। जहां भाग्य सहायक नहीं, वहां बस अंधकार ही अंधकार है–

''जेहि अंचल दीपक दुरयो,
हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परै,
मित्र शत्रु है जात।।''

''जो रहीम दीपक दसा
तिय राखत पर ओट।
समय परे तों होत है,
बाही पर की चोट।।''

ऐसे समय में धैर्य और सावधानी के साथ सौभाग्य की प्रतीक्षा करनी चाहिए–

''रहिमन चुप ह्वै बैठिए,
देख दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं,
बनत न लगिहैं देर।।''

रहीम दोहावली के अधिकांश दोहे राजा को सभी दोषों से बचाने पर केंद्रित हैं। क्योंकि राजा के स्वभाव और आदतों का प्रभाव राजनीति पर पड़ता है और उससे प्रजा भी प्रभावित होती है। कई विद्वानों ने रहीम की तुलना भर्तृहरि से की है। भर्तृहरि के कई श्लोकों में रहीम से मिलते-जुलते भाव हैं। रहीम की तरह ही भर्तृहरि भी जन-मानस में रचे-बसे हैं। उत्तर भारत की कई लोक नाट्य कथाओं में राजा भर्तृहरि (बोलचाल में भरथरी) की कहानियां प्रचलित हैं। उनके शृंगार, नीति और वैराग्य शतक काफी प्रसिद्ध हुए हैं। भर्तृहरि स्वयं राजा थे और राजशक्ति या राजनीति के लिए कहा–''वह वेश्या की तरह किसी समय सत्यवादिनी, किसी समय असत्यवादिनी, किसी समय कठोर तथा किसी समय प्रियवादिनी होती है। वह किसी समय दयालू तथा किसी समय ईर्ष्यालु, वह कभी धन लुटानेवाली और कभी धन संचय करनेवाली होती है''। यथा–

''सत्यानृता न परूषा प्रियवादिनी च
हिंस्त्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा।।''

अनुभवी रहीम ने राजशक्ति की चंचलता एवं नाजुकमिजाजी की बहुत ही सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की है। उन्होंने नारी के साथ ही साथ राजसत्ता या स्वयं नृप की कृतघ्नता का खुला चित्रण प्रस्तुत किया है और उनसे सावधान रहने की आज्ञा दी है–

''उरग तुरग नारी नृपति,
नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए,
पलटत लगत न वार।।''

मूल्यवान समय की शृंखला ही तो जीवन है। अतः इसके उन्मेष के लिए समय की पहचान, आदर और उपयोग आवश्यक है। 'समय बड़ा बलवान' जन-जन में व्याप्त कहावत है, जो रहीम सदियों पहले कह गए–जो चूका वो गया–

''समय लाभ सम लाभ नहीं
समय चूक सब चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी,
समय चूक की हूक।।''

''रहिमन कुटिल कुठार ज्यों
करि डारत है टूक।
चतुरन के कसकत रहे,
समय चूक की हूक।।''

अकबर के दरबार में अनेक उच्च कोटि के हिंदी कवि हुए हैं। इन सबमें श्रेष्ठ अब्दुर्रहीम खानखाना हैं। वे किसी धर्म, संप्रदाय, जाति या पंथ की सीमाओं में बंधे नहीं थे। भारतीय वेद, पुराण, नीति-शास्त्र, दर्शन समेत विश्व के तमाम सूफी और सात्विक दर्शनों का सार रहीम की रचनाओं में मिल जाता है।

अमीर खुसरो की भांति रहीम तुर्की, फारसी, अरबी और संस्कृत भाषाओं के जानकार थे, जिनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यंत महान और उदार थी। रहीम के दोहों की मर्मस्पर्शिता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि साधारण जनता ने इस आधार पर बहुत-सी कहानियां बना ली हैं। दोहों के भावों के अनुसार रहीम के जीवन की परिस्थितियों की कल्पना की गई है और इस प्रकार जन साधरण के बीच इस विश्वास पर मुहर लग गई है कि ये सीधे जीवन से निकले दोहे हैं।

मानसिक औदार्य, सांस्कृतिक विशालता और धार्मिक सहिष्णुता के विषय में रहीम की तुलना गिने-चुने महान व्यक्तियों में की जाती है। इतने विस्तृत सांस्कृतिक आधार फल पर जीवन को देखनेवाले कवि की रचना 'खेट कौतुकम्' जैसे अरबी, फारसी, संस्कृत, हिंदी के मिश्रण का कौतुक और 'मदनाष्टक' की मौज, आश्चर्य और कुतूहल का विषय बन जाती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह देखकर तो लगता है कि इस कवि का हृदय मानवीय रस से परिपूर्ण और अनासक्त तथा अनाविल सौंदर्य दृष्टि से समृद्ध था। जीवन के अनेक घात-प्रतिघात के भीतर से भी, राजकीय षड्यंत्रों की चपेट में बार-बार आते रहने के बाद भी, तरह-तरह के उतार-चढ़ाव में उठते-गिरते रहने के बावजूद जिस कवि के हृदय का मानवीय रस निःशेष नहीं हुआ, उसके हृदय की अद्‌भुत सरसता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

रहीम की 'बरवै नायिका भेद' इतनी सरस रचना है कि, कहते हैं गोसाईं तुलसीदासजी उससे प्रभावित हुए थे और बरवै छंद में रामायण की कथा लिखने का उत्साह जगा था, जो 'बरवै रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। गोस्वामीजी की मृत्यु के दो वर्ष बाद सन् 1627 ई. में इनकी मृत्यु बताई जाती है।

तुलसी और रहीम ने अपने अनुभवों को नीति की उक्तियों और सूक्तियों में व्यक्त कर गजब की मार्मिकता, प्रभाव और चमत्कार पैदा कर दिया है। खासतौर पर रहीम इस काव्य-क्षेत्र के प्रतिष्ठित कवि हैं। भाषा-विन्यास में भी रहीम का सानी नहीं है। उन्होंने एक ही साथ अवधी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली में भी काव्य रचना की और रीतिकालीन कवियों पर भी अपनी छाप छोड़ी। रहीम की खड़ी बोली की पंक्ति–

''कलित ललित काला वा जवाहिर जड़ा था
चपल चखनवाला चांदनी में खड़ा था
कटि तट बिच मेला-पीत सेला अवेला
कलि बन अलवेला यार मेरा अकेला।''

रहीम को ग्रामीण ठेठ अवधी पर कितना अधिकार था, इसका मीठा चित्रण है–

''थके बइठि गोड़बरिया भीड़हु पाउ।
पिय तन पेखि गरमिया विजन डुलाउ।।
जस मद मातिल हथिया हुमकत जाय।
चितवित छैल तरूनिया युहु मुसकाय।।''

रहीम की अवधी पर भोजपुरी का भी प्रभाव कुछ स्थलों पर दीख पड़ता है। इसके विषय में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का विचार है कि मित्र गोस्वामी तुलसीदास के बनारस में रहने के कारण रहीम उनसे मिलने आते-जाते रहते थे और कुछ अवधि तक वहीं के लोगों के बीच रम जाते थे। कवि की स्वतः यह विशेषता थी कि जहां कहीं भी थोड़े समय रह जाते थे वहां की बोली का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। भाषा तो बोलियों से ही चलती है। रहीम के इस हृदय में भोजपुरी का बहुत सुंदर पुट है–

''रातुल भयेसि मुगउआ निरख पखान।
ऐहि मधु भरल अधरवा करत समान।।
कठिन नींद भिनुसरवा आलस पाइ।
धन दे मूरख मितवा रहल लोभाइ।।''

तुलसी और रहीम को हिंदी के मूर्धन्य विद्वानों ने हिंदीभाषी भू-भाग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि माना है, जिनके वचन सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं। इसका कारण है, जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। वैसे लोकप्रियता में कबीर और अमीर खुसरो भी अपनी सानी नहीं रखते। लेकिन उनकी रचनाओं में तुलसी और रहीम की तरह विविधता नहीं है। तुलसी और रहीम का एक-दूसरे पर प्रभाव भी उनके समकालीन होने के कारण पड़ा है। दोनों महापुरुषों की चित्रकूट में भी भेंट का कहीं-कहीं वृतांत मिलता है। कहा जाता है कि दरबारी कवि होने के कारण साथ-साथ एक कुशल योद्धा होने के बावजूद रहीम का बुढ़ापा बहुत कष्ट में बीता और वे संसार से विरक्त होकर तपस्वी जीवन बिताने चित्रकूट चले गए थे। तुलसी की चौपाई किसे नहीं मालूम–

''चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर।''

स्वयं रहीम की शब्दों में–

''चित्रकूट में रमि रहे,
रहिमन अवध नरेस।
जा पर विपदा परत है,
सो आवत यहि देस।।''

कहते है, इस संतन की भीड़ में एक रहीम भी रहे होंगे।

ब्रजभाषा में भी रहीम के दोहों में खड़ी बोली और अवधी का मिश्रण पाया जाता है। रहीम का लोकप्रिय दोहा–

''रहिमन तीत न कीजिए,
जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला,
भीतर फांके तीन।।''

खीरा खाने के तरीके को रहीम ने कड़वा बोलनेवाले से जोड़ा–

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुए मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

ब्रजभाषा के इस नीति वचन में फारसी के जीवन परिचित शब्दों का प्रयोग देखिए।

''फरजी साह न हवै सकै,
गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधी चाल सो,
प्यादो होत वजीर।।''

खानखाना के संपूर्ण साहित्य में एक ही साथ भाषाई शब्द-विन्यास में सामंजस्य, सामाजिक-सांस्कृतिक एकता और धार्मिक समरसता का बहुआयामी मिलाप है। पाठक या श्रोता हमेशा हमेशा के लिए मुग्ध बन जाता है। किसी रचनाकार के लिए इससे बड़ी सफलता की बात और क्या हो सकती है कि हर पाठक को लगे मानो उसी के मन की भावना व्यक्त की गई हो। यह हिंदी साहित्य की अनमोल थाती है।

रहीम ने दुख को बहुत करीब से भोगा और झेला। जब वे चार वर्ष की उम्र के थे तभी उनके पिता बैरम खां की हत्या हो गई। रहीम ने अपनी सभी संतानों की मृत्यु अपने जीते-जी देखी। बेटी का वैधव्य अपनी आंखों से देखा और बुढ़ापे में बेगम भी परलोक सिधार गई। इसलिए रहीम के सवैयों और कवित्तों में दुख में धैर्य न खोने की बात ज्यादा कही गई है, इसलिए जन-जन को यह भोगा हुआ यथार्थ लगता है।

लेकिन रहीम की विविधता में कोई कमी नहीं है। शृंगार और भक्ति रस की भावनाएं भी उनकी कलम से अछूती नहीं बची, जो रीतिकालीन कवियों का शृंगार मानी जाती हैं। आदिकाल संस्कृत ग्रंथों की तो यही विशेषता है और वह भी रहीम में मौजूद है–

''यदा मुश्तरी केंद्र खाने त्रिकोणे
यदा वक्तखाने रिपौ आफताबः।
अतारिद् विलग्नो नरो वख्तपूर्णस्तदा
दीनदारोऽथवा बादशाहः।।''

यह पद 'खेट कौतुकम' का है, जिसमें राज्याभिषेक के लिए नक्षत्रों का योग बताया गया है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है—'मदनाष्टक' और 'बरवै नायिका भेद'—दोनों ही रहीम की शृंगारपरक रचना हैं। उसकी कुछ बानगी लेते चलें—

''लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरै बार।।
पीतम इक सुमरिनियां मोहि देहि जाव।
जेइ विधि तोर विरहवा करव निभाव।।''

और दूसरी कमालियत देखिए कि विवाह से बचने का भी उपदेश देते हैं। जिसमें भक्ति भी है—

''रहिमन ब्याह विआधि है,
सकुहु तो जाहु बचाय।
पांयन बेड़ी परत हैं,
ढोल बजाय बजाय।।''

''रहिमन बहु भेषज करत,
ब्याधि न छांड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन,
हरि अनाथ के साथ।।''

रहीम ने शृंगार रस को ज्यादा तवज्जो नहीं दी। उल्टे एक सूक्तिकार के रूप में सर्वत्र ऐसे छा गए कि उनके समय में अधिकांश शृंगारिक रचनाएं करनेवालों को भी उनकी शैली अपनानी पड़ी।

रहीम की लोकप्रियता और जीवन-जगत के कवि होने का असली कारण है कि उन्होंने सबसे अलग हटकर सरल, सीधी एवं सुबोध शब्दावली अपनाई। न वे पेचीदा दार्शनिक सिद्धांतों के चक्कर में पड़े और न योग की टेढ़ी-मेढ़ी अभिव्यक्तियों के फेर में। सौंदर्य सज्जा की घुमावदार अभिव्यक्ति भी उन्हें पसंद नहीं। किसी कवि के लोकप्रिय होने के लिए साहित्यकारों ने जिन विशेषताओं—लोकाचार, लोकगीत वाले लय, सुर, पारंपरिक रीति-रिवाज, रोजमर्रा की मस्तमौला जिंदगी की झांकियां ये सब रहीम के दोहों में गुंथे हैं। इसमें सभी धर्मों और संप्रदायों की लोक-गाथाएं मिल जाती हैं। अपने चारों ओर बिखरे कंकड़-पत्थर को उठाकर अभिव्यक्ति के ऐसे आभूषण रहीम ने बनाए कि मणि-माणिक्य भी मात खा जाते हैं।

पृथ्वी के इस कवि को न पाताल में धंसने की आवश्यकता पड़ी, न आकाश में उड़ने की। आसपास के खेत-खलिहानों, बाग-बगीचों तथा घर-आंगन में रहीम मौजूद हैं—

''रहिमन जग की रीति,
मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति,
जहां गांठ तंह रस नहीं।।''

''रहिमन तहां न जाइए,
जहां कपट को हेत।
हम तन डारत ढेकुली,
सींचत अपनो खेत।।''

रहीम ने भक्ति, दर्शन और वैराग्य जैसे तत्त्वों की अभिव्यक्ति में भी घोर लौकिक तथ्यों का सहारा लिया, जिसके लिए अन्य कवियों ने पारलौकिक बिंबों को जोड़कर दुरूह बनाया।

देखिए यह प्रस्तुति—

''रहिमन राम न उर धरे,
रहत विषय लपटाय।
पसु खर खात सवाद सौं,
गुर गुलियाए खाय।।''

जीवन की पाठशाला में पढ़े हुए पाठों को ही अब्दुर्रहीम खानखाना ने दोहों के सांचे में ढालकर प्रस्तुत किया है। उपदेश और सीख को जितने सरस और आकर्षक रूप में रहीम ने रखा वैसा कबीर को छोड़कर अन्य कोई संत कवि नहीं रख सके। गुरु ग्रंथ साहिब में भी कबीर के पद मिलते हैं। वैसे इन दोनों कवियों के दोहों के साथ इनका नाम जुड़ा होना—'रहिमन', 'कह कबीर' ही पहचान है, लेकिन अगर किसी दोहे में नाम न भी हो तब भी लोग जान जाएंगे कि यह किनकी रचना है। इनमें थोड़ा सा फर्क है कि कबीर ने जहां ढोंग, पोंगापंथ और कुरीतियों पर सीधा व्यंग्य किया है, वहीं रहीम का अंदाज नीति परक और उपदेशात्मक ज्यादा है। ऐसा उदाहरण दुर्लभ है, जिसमें खड़ी बोली के प्रथम कवि अमीर खुसरो भी हों, निर्गुण संत, विरक्ति, वीतराग के पर्याय कबीर भी हों और तुलसी का तो कुछ कहना ही नहीं। रामायण, महाभारत, पुराण, गीता सभी हिंदू धर्मग्रंथों के कथानकों को रहीम ने उदाहरण के लिए चुना और लौकिक जीवन के व्यवहार पक्ष को उसके द्वारा समझाने का प्रयत्न किया।

**बी-102, ऑफिसर्स हॉस्टल,
बेली रोड, पटना-800001**

रहीम के नीतिपरक दोहे : जीवन अनुभवों से फूटते आलोक-वृत

हरजेंद्र चौधरी

यों तो कोई भी रचना किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से रचनाकार के अपने अनुभवों या प्रवृत्तियों से निःसृत होती है, पर मध्य काल के सुप्रतिष्ठित व लोकप्रिय हिंदी कवि रहीम की कविता में उनके उबड़खाबड़ जीवन-अनुभवों के अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण ढूंढे जा सकते हैं। हिंदी के पाठक उन्हें 'रहीम', 'रहिमन', या 'रहीमदास' के नाम से जानते हैं तो इतिहास के अध्येता उन्हें अकबर के संरक्षक, सम्राट-निर्माता बैरम खां के पुत्र, मुगल दरबार के एक 'नवरत्न' व अनेक मुगल बादशाहों के करीबी विश्वासपात्र के रूप में जानते हैं। कुशल योद्धा और निपुण प्रशासक होने के कारण अकबर ने उन्हें 'खानखाना' की उपाधि से नवाजा था। कलम और तलवार के धनी रहीम की जीवन-यात्रा में अनेक उतार-चढ़ाव आए। इन उतार-चढ़ावों के बावजूद रहीम ने अपना व्यावहारिक और रचनात्मक संतुलन कभी नहीं खोया। न तो 'चढ़ावों' के दौरान किसी तरह का अहंकार उनको दबोच पाया और न ही 'उतार' की स्थितियां उनको अवसादग्रस्त बना सकीं। उनकी मनोवृत्ति और सोच में गजब की 'ऑब्जेक्टिविटी' (वस्तुनिष्ठा) थी, जिसने उनको अपनी व्यक्तिगत परेशानियों के बीच धंसे होने पर भी जीवन को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि दी।

रहीम के नीति संबंधी दोहे कोरे उपदेशात्मक उद्‌गार न होकर उनके जीवनानुभवों से फूटे प्रकाश-वृत हैं, जो आज भी किन्हीं शाश्वत सत्यों की तरह हमारे लिए व्यक्तिगत और सामाजिक संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

उनके अनेक दोहे पढ़कर तो लगता है कि महत्त्वाकांक्षी होने के बावजूद रहीम राज-भय और लालच से काफी हद तक मुक्त थे। इसलिए वे 'शाहों के शाह' थे। रहीम के जीवन में राज-कोप से पीड़ित होने के अनेक दौर आए। उन्हीं में से किसी दौर में उनकी यह वाणी फूटी होगी—

''चाह गई, चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए, वे साहन के साह।।''

यदि आप इच्छाओं तथा लोभ-लाभ की चिंताओं से मुक्त हो गए हैं तो आप 'शासित' नहीं रहते, 'शासक' (बल्कि शासक-निर्माता) हो जाते हैं। रहीम भी हुए थे। उनके पिता बैरम खां तो शाब्दिक अर्थ में शासक-निर्माता थे ही। यदि बैरम खां की महत्त्वाकांक्षा अंधी व आक्रामक होती तो महान मुगल साम्राज्य अपनी किशोरावस्था में ही दम तोड़ चुका होता; जनवरी 1556 में दिल्ली के पुराने किले की 'लाइब्रेरी' की विकट ऊंचाई वाली सीढ़ियों से गिरकर हुमायूं की मृत्यु के उपरांत कुल चौदह साल की उम्र में उनके बेटे शहजादा अकबर का राज्याभिषेक न हुआ होता। जाहिर है कि बैरम खां का स्वभाव अलग तरह का होता तो दक्षिण एशिया का इतिहास भी कुछ और ही रहा होता। कहा जा सकता है कि भारत और मुगल साम्राज्य का इतिहास किसी न किसी रूप में बैरम खां का ऋणी है।

रहीम की मनोवृत्ति की पृष्ठभूमि में संभवतः उनके पिता की विरासत और आनुवंशिकी सक्रिय थी। इस बात को समझने के लिए हमें रहीम के जीवन और समय की कतिपय घटनाओं पर गौर करना होगा। रहीम के पिता बाबर की सेना के एक वफादार सैनिक, हुमायूं के विश्वासपात्र और अकबर के संरक्षक व अभिभावक के रूप में इतिहास में जाने जाते हैं। ईस्वी सन् 1556 दक्षिण एशिया के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। संयोग की बात है कि 1556 के पहले महीने में हुमायूं की मृत्यु हुई और उसी वर्ष की चौदह फरवरी को पंजाब के गुरदासपुर जिले में स्थित कलानौर नामक स्थान पर चौदह वर्षीय अकबर का राज्याभिषेक संपन्न हुआ। 1556 के नवंबर में पानीपत के दूसरे युद्ध में अकबर की सेनाओं की निर्णायक विजय ने मुगल साम्राज्य के विस्तार और उसकी पुनर्स्थापना का रास्ता खोल दिया। इसका सर्वाधिक श्रेय अकबर के संरक्षक और रहीम के पिता बैरम खां को जाता है। सन् 1556 में लाहौर में अब्दुर्रहीम का जन्म हुआ।

जब रहीम चार साल के थे, गुजरात के पाटन नामक स्थान से हज के लिए प्रस्थान करते की तैयारी में जुटे उनके पिता की हत्या हो गई। कुछ वफादार लोगों ने बालक रहीम की रक्षा की। अहमदाबाद और जालौर में पड़ाव डालते हुए अंततः बालक रहीम और उनके परिवारजनों को 1562 में अकबर के दरबार में पहुंचने पर राजकीय संरक्षण प्रदान किया

गया। इससे रहीम का बचपन तमाम तरह की संपन्नता के बीच बीता। रहीम को शाही जीवन की तमाम सुविधाएं प्रदान की गईं। शहजादों के समान ही उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की गई।

रहीम के प्रति अकबर बहुत स्नेह रखता था। रहीम को शाही दरबार और शाही परिवार का हिस्सा बनाने के लिए अकबर ने कई कदम उठाए। उसने शहजादों की तरह ही रहीम को भी 'मिर्जा खां' कहकर संबोधित करना शुरू कर दिया। बैरम खां की दूसरी पत्नी (रहीम की विमाता) से शादी कर ली, जिसके फलस्वरूप रहीम अकबर का सौतेला बेटा बन गया। उसने अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री 'माहबानू' से सोलह वर्ष की आयु में ही रहीम का विवाह करवाकर शाही परिवार में उसका रिश्ता जोड़ दिया। पढ़ाई-लिखाई में बालक रहीम बहुत तेज था। उसने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत आदि भाषाओं के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र व छंद शास्त्र जैसे विषयों में भी निपुणता हासिल कर ली।

शाही दरबार के महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में रहीम को प्रशासन, कूटनीति, युद्धनीति आदि में भी सक्रिय रहना पड़ता था। उन्होंने कई लड़ाइयां लड़ीं और जीतीं। गुजरात-विजय के बाद अकबर ने रहीम को 'खानखाना' की उपाधि से नवाजा था। कभी-कभी अकबर से असहमति और विवाद के अवसर भी आए परंतु जल्दी ही समझौते की स्थिति बन जाती थी।

सन् 1605 में अकबर की मृत्यु के बाद जहांगीर राजगद्दी पर बैठा। उसने दो-तीन साल तक रहीम की कोई पूछ नहीं की। कहते हैं कि 1608 में रहीम के जहांगीर के दरबार में उपस्थित होने का अवसर आया तो रहीम भावुक होकर जहांगीर के पैरों पर गिर पड़े। कालांतार में शहजादा खुर्रम (बाद का बादशाह शाहजहां) से रहीम की असहमति तीखे विरोध में परिणत हो गई थी। इसके लिए रहीम को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया था। ऐसे उतार-चढ़ावों के दौरान बहुविध अनुभवों की बानगी उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है।

हिंदी-कवि के रूप में 'रहीमदास' को कृष्ण-भक्त माना जाता है। भक्ति के अलावा उन्होंने शृंगार और नीति (व्यवहार-कुशलता) को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। रहीम की ग्यारह रचनाएं हैं। 'दोहावली' और 'नगर शोभा' में दोहे संकलित हैं तो अवधी भाषा में रचित 'बरवै नायिका भेद' बरवै छंद और शृंगार का अद्‌भुत तालमेल प्रस्तुत करने वाली एक प्रसिद्ध रचना है। मालिनी छंद में कृष्ण की रास-लीला को केंद्रीय विषय बनाने वाली रचना 'मदनाष्टक' में रहीम ने संस्कृत और खड़ी बोली को मिला-जुला कर अभिव्यक्ति का नया प्रयोग किया है। अपने 'संस्कृत काव्य' में संस्कृत रचित भक्ति-श्लोकों के साथ-साथ रहीम ने छप्पय और दोहा छंद में उनका भावानुवाद भी प्रस्तुत किया है। यह भी एक तरह से नया प्रयोग कहा जा सकता है।

इस संक्षिप्त लेख को हम रहीम के नीति-संबंधी दोहों तक सीमित रखकर यह समझने का प्रयास करेंगे कि इन दोहों में रहीम के जीवन-अनुभवों की झलक कहां-कहां और किस रूप में मिलती है। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि रहीम की 'कविताई' में उनके जीवन और समय की घटनाओं के स्थूल विवरण नहीं मिलते, बल्कि कवि के मन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों की विश्लेषित-निष्कर्षित संक्षिप्त काव्यात्मक 'सूक्तियां' मिलती हैं, जिन्हें दोहे जैसे छंद में पिरो दिया गया है। निजी जीवन-अनुभवों के अलावा रहीम पर संस्कृत काव्य-परंपरा का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

रहीम को जीवन और मुगल-दरबार में जितना महत्त्व और सम्मान मिला, कुछ ऐसे दौर भी आए कि उन्हें उतने ही गहरे तिरस्कार और अभावों का सामना भी करना पड़ा। उन्हीं अनुभवों की बदौलत अपने संपर्क में आने वाले लोगों की सही परख के लिए रहीम जीवन में आने वाले अल्पावधिक संकट को भी कृतज्ञतापूर्ण याद करते हैं--

''रहिमन विपदा हूं भली,
जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में,
जानि परत सब कोय।।''

जीवन में आने वाले संकट मनुष्य को अधिक समझदार भी बनाते हैं और अधिक संवेदनशील भी। सामान्य बोलचाल और 'हैलो-हैलो' तक सीमित संबंध रखने से तो आपको अपने संपर्क में आने वाले लोगों की असलियत का पता नहीं चलता। मीठी-मीठी और समय-बिताऊ बातें तो सब कर लेते हैं। कौन आपके बुरे में है और कौन भले में, इसका ठीक से पता तभी चलता है जब आप किसी विपदा में फंसे हों और खुदा न करे, आपको मदद की जरूरत पड़ जाए—

''सब को सब कोऊ करै,
कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए,
जब कछु अटकै काम।।''

इसी तर्ज का एक दोहा और देखें—

''कहि रहीम संपति सगे,
बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे,
ते ही सांचे मीत।।''

नियति ने रहीम को सदैव सत्ता के इर्द-गिर्द रखा। कभी लगभग केंद्र में तो कभी उसके हाशिए पर। कभी अर्श पर तो कभी फर्श पर। बादशाहों ने उनका सम्मान भी किया और

कभी-कभी तिरस्कार भी। दरबारी षड्यंत्रों के कारण रहीम अनेक बार कुछ-कुछ समय के लिए बादशाहों के कोप-भाजन बने, इतिहास में इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं। रहीम को जीवन के ऐसे पड़ावों पर तीखी उपेक्षा का अनुभव हुआ होगा। जीवन के कुछ मोड़ों पर उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों से भी दो-चार होना पड़ा। अनेक कटु अनुभवों से गुजरने के बाद ही रहीम के मन से ये उद्‌गार फूटे होंगे कि तिरस्कार किसी के भी द्वारा किया जाए, स्वीकार्य नहीं हो सकता। यदि आपको सुविधाएं और तिरस्कार साथ-साथ मिलें तो बेहतर हो कि ऐसी जीवन-स्थिति से तुरंत प्रयाण करके आप अपने सम्मान-स्वाभिमान की रक्षा को प्राथमिकता दें—

''रहिमन तब लगि ठहरिए,
दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं,
तुरतह करिय पयान।।''

जहां व्यक्ति के चरित्र और उसकी सत्यनिष्ठा पर आंच आने की आशंका हो, वहां से भी फटाफट दूर चले जाना चाहिए। सम्मान-स्वाभिमान के साथ-साथ अपने शील की रक्षा के आग्रह को ध्वनित करने वाला निम्नलिखित दोहा भी दृष्टव्य है—

''रहिमन रहिबो वा भलो,
जो लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए,
तुरत कीजिए कूच।।''

बादशाहों व शहजादों से मिलने वाली उपेक्षा के अनेक रूप हो सकते थे। उनमें से एक यह था कि कवि को मिलने वाली आर्थिक सहायता और सुविधाओं में गंभीर कटौती कर दी जाती थी या कि उन्हें पूरी तरह बंद कर दिया जाता था। ऐसे में जाहिर है कि कवि के अच्छे दिन लद जाते थे और दुर्दिन आ जाते थे। बादशाह से गरमा-गरमी होने के कारण कवि के निजी जीवन का मौसम बदल जाता था। हरियाली सूख जाती थी। अनेक प्रकार की चिंताएं मन पर अपने उमस-भरे पंजे गड़ाने लगती थीं। सूखते सरोवर के बचे-खुचे पानी में स्वयं को जैसे-तैसे जिंदा रखने की कोशिशों में जुटी मछली जैसी हालत हो जाती थी—

''खरच बढ़्यो, उद्यम घट्यो,
नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए,
थोरे जल की मीन।।''

पर रहीम जानते हैं कि व्यक्तियों और परिवारों के जीवन में आर्थिक उतार-चढ़ाव आते रहते हैं क्योंकि पैसा बहुत आनी-जानी चीज है। धनदेवी लक्ष्मी तो चंचला है, एक जगह टिककर रहना उसके स्वभाव में नहीं है—

''कमला थिर न रहीम कहि,
यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू,
क्यों न चंचला होय।।''

यह बात गौरतलब है कि अपने दुर्दिनों के दौरान भी रहीम आर्थिक संकट की इतनी चिंता करते दिखाई नहीं पड़ते, जितने मानवीय संबंधों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की। यह उनकी रचनात्मकता और उनके व्यक्तित्व का एक सबल और उजला पक्ष है—

''दुरदिन परे रहीम कहि,
भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि की,
जो न होय हित हानि।।''

रहीम अपने सर्वाधिक दोहे में—'रहिमन धागा प्रेम का'—में प्रेम को बचाए रखने की ही चिंता करते हैं। कहते हैं कि जब कोई संबंध झटके से टूटता है तो उसके पुनर्जीवित होने पर भी उसमें वह पहले वाली प्राणवत्ता शेष नहीं रह जाती। टूटन की एक कड़वी ग्रंथि मन में घर किए रहती है—

''रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर न जुरे,
जुरे गांठ परी जाय।।''

रहीम के लिए मानवीय संबंधों का बीज-बिंदु प्रेम, पारस्परिक विश्वास और समर्पण-भावना है, लेन-देन या व्यापार-बुद्धि नहीं। एक बहुत सामान्य घरेलू-सा उदाहरण देकर कवि ने गाढ़ी और लचीली पारस्परिकता को प्रेम-निर्वाह के कारगर उपाय के रूप में प्रस्तावित किया है। आटे में हल्दी मिलाए जाने पर दोनों क्रमशः अपना-अपना रंग छोड़कर एक-दूसरे के रंग में रंगने शुरू हो जाते हैं। हल्दी अपना पीलापन छोड़ने लगती है और आटा अपनी सफेदी। दोनों एक-दूसरे की ओर 'झुक' जाते हैं। इस तरह का संवेदित, अहंकारशून्य लचीलापन टिकाऊ और असली प्रेम का गुण है—

''रहिमन प्रीति सराहिए,
मिले होत रंग दून।
ज्यौं जरदी हरदी तजै,
तजै सफेदी चून।।''

प्रेम तो पारस्परिक दायित्व-निर्वाह की मांग करता है, प्रतियोगिता की नहीं। उसमें जय-पराजय का कोई प्रश्न नहीं उठता—

''यह न रहीम सराहिए,
देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिए,
हारि होय कै जीति।।''

प्रेम के आदर्श रूप को भौतिकता के हस्तक्षेप और स्पर्श से अछूता रखने की मानवीय सदिच्छा के बावजूद यह बात तो निर्विवाद है कि व्यक्ति की आर्थिक स्थिति उसके बहुविध संबंधों के बनने-बिगड़ने में बड़ी भूमिका निभाती हैं। आप साधन-संपन्न हैं तो आपके साथ मित्रता करने-रखने के लिए बहुत से अनजान लोग भी ललकेंगे। बहुविध उपायों

से आपके करीब आने की जुगत बैठाएंगे। पर आपकी विपन्नता की स्थिति में आपके करीबी भी आपसे दूर जा छिटकेंगे। रहीम के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए। उन्हें मानवीय संबंधों की मूलभूत प्रकृति की गहरी जानकारी है। इस संदर्भ में निम्नलिखित दोहा काबिले-गौर है–

''कहि रहीम संपति सगे,
बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे,
ते ही सांचे मीत।।''

राजाओं-बादशाहों के करीबी और विश्वासपात्र होने के नाते रहीम उनके 'निष्ठुर' स्वभाव से परिचित थे। राजाओं के 'मूड' का कभी पता नहीं चलता कि कब क्या कर बैठें। निम्नलिखित दोहे में कवि का कहना है कि सांप, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीच जाति और हथियार का कोई भरोसा नहीं कि कब किस तरफ पलट जाए। रहीम इन पर कारगर नियंत्रण रखने का सुझाव देते हैं। स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श के इस जमाने में इस दोहे के कुछ अंशों पर गहरा अस्वीकार और विवाद हो सकता है, पर नृपति (राजा) यानी 'सत्ता' के स्वभाव पर यह एक सच्ची और तीखी टिप्पणी है–

''उरग, तुरग, नारी, नृपति,
नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए,
पलटत लगै न बार।।''

सत्तावानों से टक्कर लेने के क्या परिणाम हो सकते हैं, इस बात से भी रहीम भली-भांति परिचित हैं। वे आजकल के अनेक कवियों वाली क्रांतिकारी मुद्रा धारण किए बिना सच्चाई को स्वीकार करते हैं–

''कैसे निबहैं निबल जन,
करि सबलन सो गैर।
रहिमन बसि सागर विषे,
करत मगर सौं बैर।।''

अभाव के दिनों में लोगों की ऊल-जलूल और घटिया बातें भी सुननी पड़ती हैं। पौराणिक दृष्टांत को माध्यम बनाकर रहीम कहते हैं कि संकट में घिरे-फंसे भीम जैसे सक्षम लोग भी चीरहरण जैसी अपमानजनक स्थिति तक के विरुद्ध तीखी और अपेक्षित प्रतिक्रिया नहीं कर पाते–

''समय परे ओछे बचन,
सब के सहै रहीम।
सभा दुसासन पट गहे,
गदा लिए रहे भीम।।''

रहीम का मानना है कि अपने तमाम दुख-दर्द और अपनी तकलीफें चुपचाप सहन करके ही व्यक्ति जग हंसाई से बच सकता है। जग हंसाई एक अपमानजनक स्थिति है, इसलिए कवि अपने निजी दुख को मन में ही छुपाए रखने का आग्रही है–

''रहिमन निज मन की बिथा,
मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब,
बांटि न लैहैं कोय।।''

रहीम के लिए आत्म-सम्मान का बहुत महत्त्व था। यदि आत्म-सम्मान गया तो फिर बचा ही क्या? कांतिहीन मोती का आभूषण के रूप में उपयोग नहीं हो सकता, जलहीन (यानी सूखे, अनगुंथे) आटे से रोटी नहीं बनाई जा सकती। इसी तरह अपना स्वाभिमान खो चुके यक्ति का जीवन निरर्थक है। रहीम आग्रहपूर्ण स्वर में अपने आप को और पाठकों को आगाह करते हैं कि अपने स्वाभिमान की रक्षा कीजिए। अपने पानी (आत्म-सम्मान) को बचाकर रखिए–

''रहिमन पानी राखिए,
बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै,
मोती, मानुष, चून।।''

रहीम अकबर के नवरत्नों में से एक थे। मानवीय गुणों और मनुष्य-मात्र को महत्त्व देने वाले थे। कुछ दोहों में आध्यात्मिक-सी टोन में समानता की भी बात करते हैं। कभी-कभी उन्हें जरूर लगा होगा कि बौद्धिकों और रचनाकारों को बादशाह के द्वारा अपेक्षित महत्त्व और सम्मान नहीं दिया जा रहा। इसी तरह ये गुणी लोग भी बादशाह को अपने से बड़ा नहीं, बल्कि छोटा गिनते हैं। ऐसी प्रतीति के दबाव से ही यह दोहा अस्तित्व में आया होगा–

''भूप गनत लघु गुनिन को,
गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिर तें भूमि लौं,
लखौं तो एकै रूप।।''

रहीम संभवतः सत्ता और बौद्धिकता के बीच संतुलन साधने के पक्षधर हैं। पर लगता है कि रहीम का झुकाव बौद्धिकों और संस्कृति-कर्मियों की तरफ अधिक है। वे बादशाहों के साथ 'लगभग समानता' और मित्रता का संबंध रखना चाहते हैं। संस्कृति और कला की ऊंचाइयों और गहरे प्रभावों के समक्ष उन्हें राजनीति का महत्त्व अपेक्षाकृत उथला और कम स्थाई लगता रहा होगा। अपने समकालीन, महान संगीत-रत्न तानसेन के संगीत के प्रभाव को रहीम केवल सीकरी की सीमाओं के पार जाता हुआ ही नहीं सुनते, बल्कि पूरे ब्रह्मांड में उसकी प्रभावपूर्ण व्याप्ति का अनुभव करते हैं; ऐसी व्याप्ति, जिसका अहसास सर्वव्यापी विधाता को भी है–

''बिधना यह जिय जानि कै,
सेसहि दिए न कान।
धरा मेरु सब डोलि हैं,
तानसेन के तान।।''

अपने समकालीन कलाकार को इतने सम्मान और प्रशंसा भाव से याद करना रहीम की उदारता का प्रमाण माना जा सकता है।

बादशाहों, मंत्रियों, संस्कृति-कर्मियों और दरबारी-वर्ग के अन्य लोगों के अलावा रहीम का संपर्क जनसाधारण व सामान्य सैनिकों आदि से भी रहता था। इस बात के संकेत उसकी रचनाओं में भी मिलते हैं और ऐतिहासिक स्रोतों में भी। रहीम जानते थे कि अपनी-अपनी जगह हर कोई महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य हों या वस्तुएं, रहीम कवि 'बड़े' के चक्कर में पड़कर 'लघु' के महत्त्व की उपेक्षा नहीं करते—

''रहिमन देखि बड़ेन को,
लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई,
कहा करे तलवारि।।''

रहीम दानवीर थे। लोगों की मदद करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। अपने अनेक समकालीन कवियों से भी रहीम का सपंर्क रहता था। उन्होंने कुछ कवियों को आर्थिक सहायता भी दी थी। अपने दुर्दिनों के दौरान लोगों की मदद न कर पाने की स्थिति में वे उनसे विनयपूर्वक क्षमा मांग लेते थे। उनके दोहों में अभाव-भरे विपन्न दुर्दिनों का प्रसंग बार-बार आता है। दान देते हुए वे अपनी दृष्टि सदा नीची रखते थे। इस बात पर उनका गहरा विश्वास था कि 'सबका दाता वही एक' है। यही कारण है कि उन्हें कभी भी अपने दानवीर होने का अहंकार नहीं हुआ। दानवीरता ने रहीम को अहंकारी बनने की अपेक्षा अधिक विनम्र ही बनाया। दान देते समय अपनी आंखें नीची रखने के कारण का खुलासा कवि ने निम्नलिखित दोहे में किया है—

''देनहार कोउ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं,
याते नीचे नैन।।''

रहीम दान और सहयोग-सहायता देने में विश्वास करते थे, परंतु उन्हें याचक होना नहीं भाता था। आर्थिक अभाव के दौरान दान न दे पाने की स्थिति में उन्हें लज्जा और पश्चात्ताप का बोध होता था। रहीम बार-बार कहते हैं कि याचक होने से आदमी का कद घट जाता है, व्यक्तित्व छोटा पड़ जाता है। उनके कई दोहों में आर्थिक अभावों और याचकता के प्रति उनकी नापसंदगी और उनकी अनुभवजन्य सोच को अभिव्यक्ति मिली है। निम्नलिखित दोहे में उन्होंने नई कुलवधू की लज्जा का उदाहरण देकर स्वार्थी या याचक होने पर अपनी शर्मिंदगी की बात की है—

''गरज आपनी आपसौं,
रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलवधू,
पर घर जाय लजाय।।''

इसी तरह वामनावतार संबंधी सुज्ञात पौराणिक प्रसंग को दृष्टांत बनाकर कवि ने अपने निजी अनुभवों को व्यापकतर, देशकालातीत अनुभव-जगत से जोड़ दिया है—

''मांगे घटत रहीम पद,
कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करो,
तऊ बावनै नाम।।''

''रहिमन याचकता गहे,
बड़े छोटे ह्वै जात।
नारायन हू को भयो,
बावन आँगुर गात।।''

हम जानते हैं कि रहीम का व्यक्तित्व बौना नहीं था। नियति ने उन्हें जो दिया, सहर्ष स्वीकार किया। जो उन्हें नहीं मिला, उसके लिए मन में ललक तो रहती थी, पर उसके लिए उन्होंने अपनी मर्यादा कभी नहीं छोड़ी। दरबारी माहौल में भी अपने स्वाभिमान को बचाए रखने वाले 'अब्दुर्रहीम खानखाना' कवि और व्यक्ति दोनों रूपों में पूरे आदमकद रहे हैं। कवि-रूप में तो उनकी विशिष्ट ऊंचाई और लोकप्रियता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

ई-1/2, सेक्टर-7, रोहिणी,
नई दिल्ली-110085

हिंदी कविता कानन के अनमोल कुसुम रहीम

डॉ. बीना बुदकी

भारत की सामाजिक संस्कृति के चमकते तारे आज भी हमारे देश का आदर्श आलोक प्रसारित करने वाले स्तंभों में थे रहीम। इनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। अकबर के दरबार में नौ रत्नों में रहीम सबसे आगे थे। वे न केवल विद्वान मंत्री थे अपितु एक कुशल योद्धा थे। इसके अतिरिक्त वे एक सफल कवि भी थे। इनके अनेक ग्रंथ रचे हुए हैं परंतु इनकी दोहावली सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है।

रहीम के व्यक्तित्व की एक और उल्लेखनीय बात है—दानशीलता! एक बार इन्होंने गंग कवि को 36 लाख रुपए दान में दिए। एक बार एक दरिद्र ब्राह्मण अपनी कन्या की शादी हेतु कुछ धनराशि मांगने के लिए तुलसीदास के पास गया। तुलसीदास ने उसे रहीम के पास भेजा और साथ में स्वरचित दोहे की एक पंक्ति लिखकर दी और इसे रहीम को देने के लिए कहा। दोहे की पंक्ति इस प्रकार है—

"सुरतिय नरतिय नागतिय,
सब चाहत अस कोय।"

ब्राह्मण देवता अब्दुर्रहीम खानखाना के पास पहुंचा और अपनी व्यथा-कथा बयान की और गोस्वामी तुलसीदास द्वारा उनके नाम दोहे की लिखित पहली पंक्ति दे दी। रहीम आंखें नीची करके दाहिने हाथ से स्वर्ण मुद्राओं के ढेर से मुट्ठी भर-भर कर याचक के झोले में डालते रहे।

विदाई के समय तुलसी की पंक्ति के साथ निम्न पंक्ति जोड़कर उसे तुलसीदास को देने के लिए कहा—

"गोद लिये हुलसी फिरै,
तुलसी सो सुत होय।।"

शाहजादा सलीम जो अकबर के देहांत के बाद जहांगीर नाम से दिल्ली की सल्तनत के शहंशाह बने। वह जब पिता के हुकुम से दुश्मन को परास्त करने के लिए फौज लेकर गए तो उनके सेनापति अब्दुर्रहीम खानखाना ही थे। शाहजादा सलीम जब अपने सैनिक अभियान से लौट रहे थे तो उनके मन में अपने पिता के प्रति विद्रोह करने का ख्याल आया ताकि जल्दी सिंहासन पर कब्जा जमा सके। इस इच्छा को सफल बनाने में रहीम रोड़ा बन गए। रहीम के द्वारा अपनी इच्छा पूर्ति में बाधक बनने के कारण जहांगीर ने पिता के देहांत के बाद राज्य सत्ता संभालते ही उन्हें पदच्युत कर दिया। अपना राजसी वैभव लुट जाने के बाद रहीम चित्रकूट चले गए और वहीं पर आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ काव्य साधना भी करने लगे।

याचक लोगों ने दान प्राप्ति के लिए उनका दामन न छोड़ा और चित्रकूट तक जाकर उनसे याचना करने लगे। रहीम उनसे कहते—

"यारो यारी छोड़ दो, अब रहीम वह नाहिं।
अब रहीम घर-घर फिरै, मांग मधुकरी खाहिं।।"

चित्रकूट के सुरम्य स्थान पर एकांतवास में मंदाकिनी के तट पर कुटिया में वास करने के समय उनकी वाणी से जो अनमोल रत्न फूट पड़े, वे हिंदी साहित्य की कालजयी निधि हैं।

अपने पिता बैरम खां के समय से स्वयं एक दरबारी और सेनानायक बनने तक उन्होंने वैभवशाली जीवन व्यतीत किया था। लेकिन बाद में अपनी दुर्दशा से द्रवित होकर अपनी इस अवस्था के अनुभव की व्यंजना इस दोहे में की—

"तबही लौं जीवो भलो, दैबो होय न धीम।
जग में रहिबौ कुंचित गति, उचित न होय रहीम।।"

रहीम ने अपनी गहरी अनुभूतियों के द्वारा जीवन के धर्म और मर्म को समझाया। गूढ़ से गूढ़ विषयों पर अपनी लेखनी का प्रयोग किया। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपनी वाणी में सरल भाषा का प्रयोग किया जिससे मामूली पढ़ा-लिखा पाठक भी उनके द्वारा व्यक्त भावों को सहज ही समझ सकते हैं।

अरबी, संस्कृत, फारसी भाषाओं के निष्णात हिंदी के लोकप्रिय कवियों में रहीम का स्थान सर्वोपरि है। रहीम ने अपनी विद्वत्ता, अद्वितीय योग्यता के कारण मुगल सम्राट अकबर को प्रभावित किया था। अपने जीवनकाल में अनेक राजनीतिक दांव-पेंच और उतार-चढ़ाव देखे थे। कुशल सेनापति होने के साथ-साथ उनकी राजनीतिक सूझबूझ और प्रतिभा अति असाधारण थी। एक सच्चे मुसलमान होने के साथ-साथ वह हिंदू धर्म से अत्यंत प्रभावित थे। कृष्णभक्ति में इतने डूबे थे कि उन्हें सहज ही कृष्णभक्त शिरोमणि कहा जा सकता है।

इनकी कृतियों में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और श्रृंगार पर सरस रचनाएं मिलती हैं। दोहे लिखने में इन्हें तुलसी और बिहारी के समकक्ष रखा जा सकता है। इनके दोहे सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। वे सीधे चोट करते हैं। उनमें जो चमत्कार है, वह पढ़ने वालों और सुनने वालों को अपनी ओर बरबस खींचता है।

लोक नीति—अपने विविधतापूर्ण जीवन में रहीम ने जो समय-समय पर लोक नीति के संदर्भ में दोहे लिखे हैं वो बरबस भर्तृहरि के नीति शतकों की याद दिलाते हैं।

आपस में मिलते समय सभी लोग राम-राम और सलाम करते हैं। परंतु कौन मित्र है और कौन शत्रु है इसका पता काम पड़ने पर ही चल पाता है। लेकिन दुष्ट की दुष्टता को सजा मिलनी ही चाहिए। देखिए—

"सब कोऊ सबसे करैं, राम, जुहारु सलाम।
हित अनहित तब जानिए, जा दिन अटके काम।।

खीरा सिर सो काटिय, मलिए नोन लगाय।
रहिमन कडुवे मुखन को, चहिए यही सजाय।।''

कोई ओछा अथवा छोटा यदि उन्नति करता है तो मारे घमंड के बुरी तरह इतराता है। रहीम शतरंज के खेल का उदाहरण देते हुए कहते हैं—जब प्यादा फरजी बन जाता है तो वह टेढ़ी चाल चलने लगता है। इसी प्रकार नीच लोगों का साथ करने से भला कौन कलंकित नहीं होता है। शराब बेचने वाली के पास यदि हाथ में दूध हो तो लोग उसे भी शराब ही समझने लगते हैं। गंगा नदी की महानता सभी जानते हैं। किंतु जब वह समुद्र में चली जाती है तो उसको कोई नहीं जानता उसका अस्तित्व ही मिट जाता है।

''जो 'रहीम' ओछो बड़ै, तो अति ही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय।।
'रहिमन' नीच संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, सब समुझहिं मद ताहि।।
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गए रहीम।।''

मित्र कब शत्रु बन जाता है। रहीम कहते हैं साड़ी के जिस आंचल से दीए को छिपा कर महिला पवन से उसकी रक्षा करती है—उसे मिटने से बचाती है। दीपक उस स्त्री के आंचल को ही जला डालता है जिससे मुसीबत के समय उसकी रक्षा होती है। तात्पर्य यह कि बुरे दिन आने पर मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

जिसे घर से निकाल दिया जाता है, वह सताने के कारण अंतर की (घर की घटना) बात बाहर कहते हैं जिस प्रकार आंखों से ढुलक कर आंसू अंतर की व्यथा प्रकट कर देते हैं। जिसे घर से निकाल बाहर कर दिया, वह घर का भेद दूसरों से क्यों न कहेगा। करे कोई और भरे कोई। पगली जीभ का क्या किया जाए जो न जाने क्या-क्या उल्टी-सीधी बातें कह डालती है। यह बकवास कहकर खुद तो मुंह के अंदर चली जाती है और बेचारे सिर को जूतियां खानी पड़ती हैं। जब तक दान, मान और सम्मान जहां पर मिले, रहिए वहां पर, किंतु जब लगे कि अब यहां इज्जत घट रही है, उस स्थान से तुरंत निकल जाना चाहिए—

''जिहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात।।
रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ।।
रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगी सरग पाताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल।।

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान, मान, सम्मान।
घटत मान देखिए जबहिं, तुरतहि करिय पयान।।''

प्रेम की महिमा—रहीम प्रेम की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं—यह बड़ी नाजुक वस्तु है। इसे ठेस पहुंचने न दें।

''रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर न जुरे, जुरे गांठ परी जाय।।''

जिन आंखों में प्रियतम का प्रेम छवि बनकर समाया है। वहां किसी दूसरी छवि का कोई स्थान नहीं। यदि माया, सच्चे प्रेमी के मन में आने की चेष्टा करे तो उसे सफलता नहीं मिलेगी।

''प्रीतम छवि नैनन बसि,
पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम ठाखि,
पथिक आप फिर जाय।।''

सारांश यह है कि भारतीय दर्शन, भक्ति आदि से प्रभावित रहीम ने छोटे-छोटे दोहों में हिंदू दर्शन, धर्म के आधार पर कहानियों, घटनाओं को वर्णन करके अद्‌भुत काम किया है या यों कहिए गागर में सागर भर दिया है।

अनमोल रत्न

भक्तिकाल के सब कवियों में
कवि रहीम का बड़ा नाम है
नीति परक दोहों का लेखन
सरस्वती का धन्य धाम है
दो-दो पंक्ति में रहीम ने
दुनिया का सब सार कह दिया
सच पूछो तो ज्ञान धर्म का
इक पूरा संसार कह दिया
चमक रह साहित्य गगन में
सूरदास, तुलसी और रसखान
वैसे ही हैं अमिट सितारे
कवि रहीम रसखान कबीरा

एक पंक्ति में बात कही जो
दूजी मैं उसका फिर हल है
प्रमाणिकता ही रहीम की
सफल लेखनी का संबल है
सदियों पहले जो रहीम ने
लिखा आज भी मूल्यवान है
जन जन के मानस मंदिर में
वह श्रद्धा संग विद्यमान है
जिसने पढ़कर के रहीम को
समझा उसको मिली राह है
जिज्ञासाएं शांत हुई हैं
हुई ज्ञान की तृप्त चाह है

सीधी सादी रही जिंदगी
लेकिन उसमें ज्ञान खरा है
अनुभव का भंडार अपरिमित
कवि रहीम का सदा भरा है
भाषा सरल लिखी है लेकिन
गूढ़ भाव इसमें असीम है
सागर जैसी गहराई से
मोती लाए कवि रहीम हैं
घर परिवार रहा साधारण
मगर असाधारण जीवन था
विषमताओं के बीच रहीम का
रहा महकता यश चंदन सा

बोलचाल का शिल्प काव्य में
भाव मगर जीवन दर्शन का
रूढ़िवाद के अंधकार में
नया सवेरा परिवर्तन का
भेदभाव की मरुस्थली में
समता के आनंद कुंज थे
जग आलोकित करने वाले
कवि रहीम प्रकाश पुंज थे
हे युग कवि आज भी हिंदी
मान रही उपकार तुम्हारा
तुमने अपनी काव्यकला से
इसका सुंदर रूप संवारा।।

**721-721, इजमीमा कॉम्पलेक्स, माइंड स्पेस,
मलाड (पश्चिम), मुंबई-400064**

कुशल सेनापति एवं सफल कवि

प्रो. चमनलाल सप्रू

मध्ययुगीन प्रतिनिधि हिंदी कवियों में अब्दुर्रहीम खानाखाना का नाम अग्रणी है। मुगल खानदान के यशस्वी सम्राट अकबर के नवरत्नों में एक होने के अतिरिक्त कुशल सेनापति एवं सफल कवि ही नहीं थे अपितु अपने समकालीन कवियों के भी कद्रदां थे। हिंदी साहित्य जगत में इन्हें संक्षिप्त नाम रहीम से ही याद किया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास के पास एक गरीब ब्राह्मण आया और अपनी दुर्दशा का वर्णन करने के साथ अपनी बेटी के हाथ पीले करने के लिए कहीं से आर्थिक सहायता करवाने का अनुरोध करने लगा। तुलसीदास ने एक दोहे की पंक्ति लिखकर ब्राह्मण को सौंपी। उसे निर्देश दिया कि अकबर के दरबारी रहीम के पास जाओ उन्हें मेरी यह पंक्ति देकर निवेदन करो। वह दानवीर है। अवश्य तुम्हारी सहायता करेगा। तुलसीदास की लिखी पंक्ति इस प्रकार थी–

''सुरतिय, नरतिय, नागतिय,
सब चाहत अस कोय।।''

ब्राह्मण देवता ने रहीम के पास जाकर कन्या के विवाह संस्कार को संपन्न करने के लिए निवेदन किया और तुलसी की लिखी पंक्ति भेंट की। रहीम ने खूब सारा धन देकर उसे विदा किया और तुलसीदास के पत्र पर लिखी दोहे की पंक्ति को पूरा करके उन्हें देने के लिए कहा। रहीम द्वारा लिखी पंक्ति इस प्रकार थी–

''गोद लिए हुलसी फिरै,
तुलसी सो सुत होय।।''

किंवदंती है कि रहीम ने गंग कवि को छत्तीस लाख रुपए भेंट किए थे। किसी याचक ने दानवीर रहीम की उदारता और दान देने की शैली के बारे में पूछा–

''सींखी कहां नवाब जू ऐसी दीनी दैन,
ज्यों ज्यों कर ऊंचो उठै, त्यों त्यों नीचै नैन।।''

रहीम ने झट उत्तर दिया–

''देनहार कोऊ और है, भेजत सौं दिन रैन।
लोग भरम हम पर करैं, याते नीचे नैन।।''

अर्थात् हे नवाब साहिब रहीम आप जितना हाथ ऊपर करके अतुल धनराशि देते हैं उतनी ही आंखें नीचे कर लेते हो यह कहां से सीखा? रहीम ने झट उत्तर दिया–देने वाला मैं नहीं कोई और है–परमात्मा है। वही दिन-रात मेरे कोष में भेजते हैं। किंतु लोग मुझे दानवीर होने का भ्रम पालते हैं। इसीलिए विनम्र हूं और मेरी आंखें नीचे रहती हैं।

अकबर के नवरत्नों में बीरबल को छोड़ रहीम के समान कोई भी इतना लोकप्रिय नहीं हुआ। वो इतने सिद्धहस्त कवि थे कि उनकी प्रकाशित रचनाएं साहित्य भंडार को आज भी आलोकित कर रही हैं। ''तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदी भाषी भूभाग में सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं। भाषा पर तुलसी का-सा ही अधिकार हम रहीम का भी पाते हैं।'' उनकी कविताओं में आए हुए प्रसंगों को देखते ही यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि हिंदू-दर्शन और साहित्य तथा अलंकार शास्त्र का उन्हें उतना ही अच्छा ज्ञान था जितना अच्छा ज्ञान का दावा बड़े हिंदू विद्वान कर सकता है। अपने धर्म पर सुदृढ़ विश्वास रखते हुए भी एक मुसलमान कितना अधिक भारतीय हो सकता है, रहीम उसके अद्वितीय प्रमाण हैं।

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने फारसी का एक दीवान भी रचा था। वाकयात-इ-बाबरी का तुर्की जबान से फारसी में तरजुमां किया था। उन्होंने कुछ मिश्रित रचनाएं भी की हैं जिनमें संस्कृत और खड़ी बोली, दोनों ही भाषाओं का प्रयोग किया। ऐसी रचनाओं के कारण उर्दू साहित्य के इतिहास में रहीम को उर्दू का कवि भी माना गया है। किंतु रहीम उर्दू में नहीं लिखते थे। उनकी सभी रचनाएं या तो फारसी में मिलती है अथवा शुद्ध हिंदी में। इसके अतिरिक्त उनकी कौतुकी रचनाएं खिचड़ी भाषा में मिलती हैं।

रहीम की कौतुकी रचना का एक नमूना देखिए–

''दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरूलतां
मैं था गया बाग में
काचिता कुरंगशाव नयना
गुल तोड़ती थी खड़ी।।''

रहीम की एक और कृति चर्चा में है। ''खेट–कौतुक जातकम्'' नाम से रचित यह रचना ज्योतिष से संबंधित है। इसमें संस्कृत, फारसी और हिंदी भाषाओं का संगम है।

रहीम के दोहों का वैशिष्ट्य–रहीम के रचित अधिकांश दोहों की विषय वस्तु है–प्रेम, लोकनीति, निजबाती, उपालम्भ, चेतावनी आदि।

प्रेम एक अत्यंत कोमल तत्त्व है। इसे संभाल कर संजोने की आवश्यकता है। प्रेम का धागा बड़ा ही नाजुक है। लोगों को चेतावनी देते हुए रहीम कहते हैं कि इसे झटका मत दो। टूट गया तो फिर जुड़ेगा नहीं और जोड़ भी दिया तो गांठ पड़ जाएगी। अर्थात् प्रिय और प्रेमी के बीच दुराव आ जाएगा–

''रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिर न जुरे, जुरे गांठ परी जाय।।''

ऐसे ही प्रेम की सराहना की जाए, जिसमें अंतर न रह जाए। चूना और हल्दी मिलकर

अपना-अपना रंग छोड़ देते हैं—अर्थात् दृष्टा रह जाता है और न दृश्य—

''रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेद चून।।''

आग में पड़कर लकड़ी सुलग-सुलग कर बुझ जाती है, बुझ कर वह सुलगती नहीं है। लेकिन प्रेम की आग में जल कर प्रेमीजन बुझ कर भी सुलगते रहते हैं—

''जे सुलगे ते बुझ गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि के सुलगाहिं।।''

बैकुंठ में जाकर कल्पवृक्ष की छांह तले बैठ कर सुख पाने का क्या लाभ है? यदि वहां प्रियतम न हों। उससे तो ढाक का पेड़ ही सुखदायक है, यदि उसकी छांह में प्रियतम के साथ गलबांह देकर बैठने को मिले—

''कहा करौ बैकुंठ लै, कल्पवृक्ष की छांव।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल पीतम बांह।।''

लेन-देन के नाते से जुड़ा हुआ प्रेम सराहने योग्य नहीं है। प्रेम क्या कोई खरीदने-बेचने की चीज है। उसमें तो लगा दिया जाए प्राणों का दांव, परवाह नहीं कि हार हो या जीत—

''यह न रहीम सराहिए, लेन देन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिए, हार होय के जीत।।''

प्रेम का मार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिए तय करने योग्य नहीं है। उस पर चलना बड़ा कठिन है, जैसे मोम के घोड़े पर सवार होकर आग पर चलना होता है—

''रहिमन मैन-तुरंग चढ़ी, चलिबो पावक मोहिं।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोऊ निबहत नाहिं।।''

मित्र वही जो विपदा में साथ दे—रहीम मित्र की परिभाषा करते हुए कहता है कि मित्र वही है जो विपत्ति में साथ देकर सहायता करे। लेकिन जो मित्र विपत्ति के समय दूर हो जाए वह किस काम का है? मक्खन मथते-मथते रह जाता है, किंतु मट्ठा दही का साथ छोड़ देता है—

''मथत मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परै ठहराय।।''

जिस प्यारे हितैषी मित्र ने तन और मन पर कब्जा कर रखा है और दिल में सदा के लिए बस गया हो, उससे सुख और दुःख कहने की अब कौन सी बात रह गई है। इसे रहीम यों बयान करते हैं—

''जिहि रहीम तन मन लियो,
कियो हिए विच भौन।
तासों सुख-दुःख कहन की,
रही बात अब कौन।।''

कृष्णभक्त रहीम कृष्ण-सुदामा की अलौकिक मित्रता का वर्णन करने नहीं चूकते हैं—

''जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम ते लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।''

अपने प्रभु से उपालंभ में रहीम सकुचाते हैं। हे प्रभु! पहले तो आपने कृपा कर मुझे अपनी ओर खींच लिया और फिर इस तरह दूर फेंक दिया कि मैं दर्शन पाने को तरस रहा हूं। उदाहरण के लिए धनुष का मिलन देते हैं—

''हरि! रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खींच अपनी ओर को, उरि दियो पुनि दूर।।''

मैंने स्वामी से प्रीति जोड़ी, किंतु उन्हें अच्छी नहीं लगी, ऐसा लगता है। मैं गरीब सेवक हूं और मेरे स्वामी के अगणित मित्र है। ठीक ही है, असंख्य मित्रों वाला स्वामी गरीबों की ओर ध्यान क्यों देने लगेगा—

''रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं।
जिनके अगणित मीत है, हमें गरीबन को गनैं।।''

चिंता और चिता में अंतर बताते हुए चिंता को चिता से बड़ा दुःखदायक मानते हुए रहीम कहते हैं—चिता तो शव को जलाती है और चिंता जीवित प्राणी को जलाती रहती है। देखिए—

''रहिमन कठिन चितान तै, चिंता को चित चैत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत।।''

नीति के दोहे—रहीम ने अनेक दोहे नीति के हैं। उनकी बानगी देखिए। आपस में मिलने पर एक-दूसरे से नमस्कार-सलाम कहते हैं। परंतु मित्र कौन और शत्रु कौन? इसका पता काम पड़ने पर ही मिलता है—

''सब कोऊ सबसों करैं, राम जुहार सलाम।
हित अनहित तब जानिए, जा दिन अटके काम।।''

कड़वे वचन कहने वाले को दंड देने की प्रथा है। उदाहरण कड़वे खीरे का दिया गया है—

''खीरा सिर सो काटिय, मलिए नोन लगाय।
रहिमन कड़ुवे मुखन की, चहिए यही सजाय।।''

नीच लोगों के साथ रहने पर भले लोग भी कलंकित होते हैं। रहीम इस तथ्य का इस दोहे में वर्णन करते हैं—

''रहिमन नीचन संग बसि,
लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि,
सब समुझहिं मद ताहि।।''

जहांगीर के द्वारा अपमानित और पदच्युत होने पर रहीम चित्रकूट चले गए और वहीं पर इबादत और साहित्य साधना के साथ संत समागम में जीवन बिताने लगे। अपने सांसारिक रूप में दुर्दिनों का वर्णन करते हुए लिखा—

''खर्च बढ़्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन।।
धन थोरो इज्जत बड़ी, कहि रहीम का बात।
जैसे कुल की कुल वधू, चिथड़न माहिं समात।।
अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़ दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम।।
तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपत्ति संचहि सुजान।।''

रहीम ने एक सेनानायक और अकबर के दरबारी पर आसीन अकूत धनराशि अर्जित की थी। एक सज्जन होने के कारण वह दूसरों की सहायता हेतु संपत्ति का उदारतापूर्वक दान देते थे। किंतु राजसी प्रतिष्ठा से दूर होकर अब चित्रकूट में विरक्त का जीवन यापन करते समय याचकों से कहते थे—

''यारो यारी छोड़ दो, अब रहीम वह नाहि।
अब रहीम घर घर फिरै, मांग मधुकरी खांहि।।''

13-बी, ई-3, शताब्दी विहार,
सेक्टर-52, नोएडा-201301

आध्यात्मिक विराटता का रचनात्मक उत्सव है रहीम

पंडित सुरेश नीरव

रहीम हमारी काव्य-धारा के संस्कृति-पुरुष हैं। उनकी रचनाएं आध्यात्मिक-विराटता का रचनात्मक उत्सव हैं, जिसका स्पर्श पाकर मनुष्यता आनंदित होती है रहीम के रचनात्मक और सामाजिक व्यवहार में दृष्टिगत विनम्रता वीरता के कंठ में सुशोभित ईश्वर भक्ति की मौक्तिक माला है और यह सारस्वत वीतरागी-विनम्रता उसी में आ सकती है जिसने अपने चिंतन के तराजू के एक पलड़े में सुख और दूसरे में दुःख को एक साथ रखकर तौला हो।

रहीम पर लिखना पराक्रम और करुणा के दो अनुभूति अक्षांशों से एक साथ गुजरने जैसा है और रहीम पर कुछ कहना तो जैसे सांप्रदायिक सद्भाव की तीर्थयात्रा ही करना है। रहीम हर तरह से अनूठे हैं। वे लाहौर में माघ महीने के कृष्ण पक्ष में गुरुवार को एक मुस्लिम परिवार बैरम खां के यहां जन्म लेते हैं मगर रहते हैं कृष्णभक्ति में मगन। बादशाह के खिलाफ गुजरात में बगावतियों के तलवार की ताकत से छक्के छुड़ाकर जहां एक तरफ वे 'खानखाना' की उपाधि से अलंकृत हैं, तो दूसरी तरफ मानवीय करुणा से सुसंस्कृत वही अब्दुर्रहीम भी हैं। अरबी भाषा में रहीम का अर्थ ही है—दयालु, महादयालु इतना दयालु कि जो ईश्वर के समतुल्य हो जाए। रहीम यानी रहम करने वाला। रहीम वो है रहम जिसके भीतर हो और जो स्वयं रहम के भीतर हो। खानखाना यानी कि जो प्रतिष्ठा का खुद खजाना हो तभी तो रहीम मुगल-ए-आजम अकबर के दरबार के नवरत्न हैं। कूटनीति के इतने बड़े ज्ञाता कि टोडरमल की मृत्यु के बाद 'वकील' की अति प्रतिष्ठित उपाधि से भी इन्हीं को अलंकृत किया गया। केवल इतना ही नहीं अकबर के दरबार में एक ऐसे विश्वस्त व्यक्ति की जो सत्ता और जनता के बीच एक सेतु का कार्य कर सके इसके सफल संचालन के लिए लिए 'मीर अर्ज' नामक एक पद हुआ करता था और इस पद के लिए भी अकबर को अपने दरबार के अमीरों में रहीम से ज्यादा योग्य कोई और अमीर नहीं जंचा इसलिए बादशाह अकबर के यहां पुत्र जन्मा तो उस शाहजादे सलीम के शिक्षक के लिए भी बादशाह ने शेर अहमद, मीर कलां और अबुल फजल जैसे विद्वानों के दरबार में होते हुए भी रहीम को ही अपने शाहजादे का अतालीक बनाया। गोस्वामी तुलसीदास, गंग, नरहरि, केशव और मंडन जैसे महाकवियों ने रहीम की काव्य-प्रतिभा की काफी प्रशंसा की है। धर्म से मुसलमान और संस्कृति में पूरी तरह बहिरंतर भारतीय रहीम हमारी संस्कृति के मूल दर्शन विभिन्नता में एकता के कालजयी प्रतीक हैं। इतिहास में, तंत्र में वे प्रतिष्ठित हैं और लोक में वह प्रशंसित हैं। उनका कालजयी यश लोक और तंत्र दोनों में समवेत रूप से सुरक्षित है। अरबी, फारसी, संस्कृत, तुर्की, ब्रज और अवधी के प्रकांड विद्वान इस बहुभाषाविद कवि ने तलवार की झंकार में भी भक्ति रस की धार का जो अनूठा सृजन किया है वह अद्वितीय है। दोहा, सोरठा, सवैया, बरवै, मालिनी और कवित्त में रहीम ने मनुष्यता के धर्म को कविता की शक्ल में ढाला है।

कविताओं के जरिये जो उन्होंने समाज को नैतिक शिक्षाएं दी हैं वह हमारी संस्कृति का

अक्षुण्ण स्रोत हैं। और यह स्रोत तब तक बना रहेगा जब तक हमारी संस्कृति जिंदा रहेगी।

एक तरफ रहीम हिंदुस्तान के बादशाह के महत्त्वपूर्ण अमीर हैं तो दूसरी तरफ वे एक ऐसे पुत्र जिसके सिर से पिता का साया बचपन में ही हट गया। रहीम ऐसे योद्धा हैं, जिसने जीवन और मृत्यु को एक संत की तरह साक्षी भाव से जिया। जैसे कमल का फूल जल में रहकर भी जल से भीगता नहीं है वैसे ही रहीम सुख और दुख दोनों में तटस्थ भाव से तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे संपन्नता के महलों में भी एक सच्चे फकीर की तरह जिए। उन्होंने हमेशा यही माना कि हम सब माध्यम हैं और हमें संचालित करने वाली परम शक्ति ईश्वर है। इसलिए रहीम ने जो भी धन कमाया उसे उन्होंने बड़ी विनम्रता से समाज के लोगों में वितरित भी किया। वे दान में निष्ठा रखते थे

और प्रतिदिन बिना किसी भेद-भाव के लोगों को दान दिया करते थे।

रहीम दान कर रहे हैं मगर दान करने का कहीं कोई अहंकार नहीं। मानते हैं कि रात-दिन जो हम सभी को दे रहा है, वह देने वाला तो कोई और है। लोगों को कहीं यह भ्रम न हो जाए कि मैं दे रहा हूं इसलिए अपनी आंखें नीची रखता हूं। यह है एक वीर की विनम्रता। आज के दौर में जब लोग-बाग छोटों की उपेक्षा कर बड़ों की चरण वंदना में लगे हुए हैं तब रहीम की यह सीख हमें चेताती है कि–

''रहिमन देख बड़ेन कौ,
लघु न दीजे डार।
जहां काम आवै सुई,
कहा करै तरवार।।''

पीड़ा जिसे मांजती है उसका कवित्त उतना ही निखरता है। रहीम को भी पीड़ा ने खूब मांजा। यह पीड़ा ही करुणा में रूपांतरित होकर रहीम की कविताओं में ढलती रही। वे प्रेम और सौहार्द्र के अमर गायक बन गए–

''रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरो चटकाय।
टूटे से फिर न जुरे,
जुरे गांठ परी जाय।।''

अपने जीवन की तमाम उथल-पुथल के बीच भी रहीम अहिर्निश साहित्य साधना में लीन रहे और अपना सृजन धर्म निभाते रहे। उनकी प्रमुख काव्यकृतियों में 'नगर शोभा', 'बरवै नायिका भेद', 'दोहावली', 'मदनाष्टक', 'शृंगार सोरठा', 'फुटकर पद', 'संस्कृत श्लोक', 'खेट कौतुक जातकम्', 'रास पंचाध्यायी' तथा फारसी की दो कृतियां 'वाकेआत बाबरी' और 'फारसी दीवान' उल्लेखनीय हैं। रहीम की काव्यधारा शृंगार, नीति और भक्ति का पावन प्रयाग है। रहीम के व्यक्तित्व में जो धर्मनिरपेक्षता और सहिष्णुता दृष्टिगत होती है, उसका एक कारण संभवतः अकबर जैसे सम्राट की छत्र-छाया में उनका लालन-पालन होना था। अकबर ने तो स्वयं ही 'दीन-ए-इलाही' में हिंदुत्व को प्रमुखता से स्थान दिया था। इसी प्रभाव के कारण ही रहीम ने भी अपनी कविताओं में हिंदू देवी-देवताओं, पौराणिक मिथकों, रामायण और गीता के संदर्भों को बड़ी बारीकी और गहराई के साथ अपनी रचनाओं में पिरोया है।

रहीम ने अपनी कविताओं के जरिए भारतीय लोकमानस का जो अंतर्मन है, परंपरा और मान्यताओं की जो मूल संपदा है उसको बड़े ही यथार्थपरक ढंग से उद्घाटित कर हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। रहीम की गंगा और विष्णु पर लिखी रचनाएं जहां उनकी चेतना पर वैष्णवता के प्रभाव को इंगित करती हैं तो वहीं उनकी कृति 'खेट कौतुक जातकम्' और 'द्वविशद योगावलि' इस तथ्य की पुष्टि करती है कि रहीम को ज्योतिष की भी अच्छी जानकारी थी। 'वाकेआत बाबरी' बाबर की आत्मकथा है। जो बाबर द्वारा तुर्की में लिखी गई थी। रहीम ने इसका फारसी में अनुवाद किया। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि रहीम को तुर्की भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान था।

रहीम को दोहा और बरवै में असाधारण सिद्धि प्राप्त थी। रहीम के बरवै तुलसी पर जादू कर गए और कहा जाता है कि उन्होंने तब 'बरवै रामायण' लिखी। रहीम के दोहों ने बिहारी, मतिराम, व्यास, वृंद और रसनिधि जैसे सिद्ध कवियों को दोहामय कर दिया। रहीम की 'बरवै नायिका भेद' कृति में शृंगार रस अवधी में खूब महकता है, जिसमें नायिकाओं के भेद और गोपियों के विरह की मीठी आंच आज भी पाठकों को रिझाती और लुभाती है। रहीम ने करुणा, भक्ति और हास्य सभी रसों में अपनी लेखनी चलाई और तरह-तरह से समाज के लोगों को जगाया। जीवन के उत्तरार्द्ध में रहीम अपने जन्म स्थान लाहौर में जाकर रहने लगे। शरीर भले ही लाहौर में रहा लेकिन उनका मन दिल्ली में अटका रहा। जर्जर, बूढ़े शरीर के साथ बीमारी की हालत में सन् 1627 के अप्रैल महीने में रहीम दिल्ली आए। कुछ दिन बाद रहीम ने अपनी जिंदगी की आखिरी सांस ली। हुमायूं के मकबरे के पास ही मध्ययुगीन काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि रहीम, धर्मनिरपेक्षता के प्रतीक रहीम, करुणावतार रहीम की मधुर स्मृतियां इस मकबरे में आज तक महक रही हैं। इतिहास पुरुष रहीम भले ही अब इस संसार में न हो मगर भारतीय संस्कृति को कविता में गाने वाले, उचारने वाले कवि रहीम भारतीय जनमानस में आज भी स्पंदित हैं। उनका यश असंदिग्ध चिरंजीविता वाला यश है, जो समय के साथ कभी बूढ़ा नहीं होगा।

आई-204, गोविंद पुरम्, गाजियाबाद (उ.प्र.)

मानवतावादी रहीम

अंजना महापात्र

मनुष्य जीवन भगवान की देन है। प्रत्येक प्राणी में भिन्न-भिन्न प्रकार के सद्गुणों के साथ-साथ मानवीय गुणों का होना भी अत्यंत आवश्यक है। एक मानवतावादी व्यक्ति वही कहलाता है, जो मानवीय गुणों से पूर्ण होता है। उसमें मानवीय गुणों के साथ-साथ परोपकार, दया, क्षमा, सहनशीलता, स्वाभिमान एवं निष्कपटता जैसे गुण भी निहित होने चाहिए।

जिन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा एवं लेखनी द्वारा हिंदी साहित्य की सेवा की है, उनमें रहीम अग्रगण्य हैं। रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना है। रहीम हिंदी काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ थे। वे उदार हृदय वाले व्यक्ति थे। किसी भी दीन-दुःखी एवं असहाय व्यक्तियों की दयनीय अवस्था उनसे देखी नहीं जाती थी। बिना कुछ सोचे-समझे तुरंत ही मदद के लिए निकल पड़ते थे। परोपकार की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे परोपकार का कार्य दिखावे या बाह्याडंबर के उद्देश्य से नहीं करते थे बल्कि उन्हें तो परोपकार से आत्मसंतुष्टि मिलती थी।

रहीम को विरासत में रण-कौशल, युद्धभूमि में विजयी होना एवं निपुणता मिली थी। उदार हृदय होने के कारण रहीम धीरे-धीरे युद्धभूमि में बर्बरतापूर्वक की जाने वाली हत्याओं से विचलित होने लगे थे। इसलिए एक दिन उन्होंने इस सबसे दूर रहने का निश्चय मन में ठान लिया।

मानवतावादी रहीम का हृदय सदैव लोगों के लिए द्रवित हो उठता था। वे मानव प्रेमी थे। उनको जीवन की वास्तविकता का अपार ज्ञान था। इसलिए लोगों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि–

''यारो यारी छांड़िए,
अब रहीम वे नाहिं।।
ये रहीम दर-दर फिरैं,
मांगि मधुकरी खाहिं।''

अर्थात् सुखद समय में बहुत से लोग मित्र बनते हैं। लोगों का साथ मिलता है, परंतु दुःख के समय एवं निर्धनता की स्थिति में कोई तुम्हारा साथ नहीं देता।

रहीम का व्यक्तित्व विलक्षण बुद्धि, कार्य-कुशलता, अपूर्व प्रतिभा-लगन से परिपूर्ण था। 'अकबरी दरबार' के लेखक मोहम्मद हुसैन आजाद ने रहीम की स्मरण शक्ति, हाजिर जवाबी तथा काव्य-संगीत प्रेम की सराहना करते हुए लिखा है–''उनके मुखमंडल से सौंदर्य रश्मियां-सी फूटती थीं जो स्वजनों को ही नहीं, राह चलते पथिकों को भी आकर्षित कर लिया करती थीं। चित्रकार उनके व्यक्तित्व से चित्र-निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करते थे और दरबारी अपनी बैठकों में बालक रहीम का चित्र सजाते थे। सम्राट अकबर तो किसी न किसी बहाने उन्हें अधिकांशतः अपने पास ही रखते थे। उनके पिता के शत्रु भी रहीम को स्नेह से देखते थे–जादू वह जो सर चढ़ के बोले।''[1]

समय को पहचानने और दूरदृष्टि से भविष्य को आंकने वाले रहीम का लौकिक ज्ञान अद्वितीय था। रहीम ने युगीन जीवन और समाज की परिस्थितियों का खुली दृष्टि से अवलोकन किया और विविध मार्मिक अनुभवों से साक्षात्कार किया।

अध्ययनशील प्रवृत्ति के रहीम प्रतिभाशाली, सर्जक और कुशल अनुवादक थे। रहीम बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार और उत्कृष्ट कवि थे। तत्कालीन कवि, उनकी काव्य-प्रतिभा के कायल थे। ललित कला के प्रेमी एवं पारखी रहीम का सौंदर्य बोध सूक्ष्म था।

मानवतावादी रहीम ने मानव-कल्याण हेतु बहुत कुछ किया है। उन्होंने प्रकृति की सुंदरता का अनुभव किया और अने काव्य में उसका वर्णन भी किया। ''उन्होंने सुंदर बाग-बगीचे तो लगवाए ही, साथ ही वे प्रकृति से प्राप्त फलादि के संबंध में भी विशेष रसिक थे। उन्होंने भारत में सर्वप्रथम खरबूजे की खेती करवाई। बलकबारा नामक गांव में इसकी खेती आरंभ हुई थी और बाद में पूरे हिंदुस्तान में यह खेती होने लगी थी।''[2]

रहीम परंपरा-प्रथित सामाजिक विश्वासों और लौकिक जीवनानुभवों से लोगों को यह उपदेश देते हैं कि छोटे और बड़े लोगों का अपना-अपना महत्त्व होता है–जहां तलवार की जरूरत है वहां सुई काम नहीं आती और जहां सुई की आवश्यकता होती है, वहां तलवार काम नहीं देती–

''रहिमन देख बड़ने को,
लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई,
कहा करै तरवारि।।''

रहीम ने पुरुषार्थ को जीवन का नियामक माना। वे स्वयं पुरुषार्थी पुरुष थे और जीवन भर संघर्षरत व कर्मशील रहे। कर्मवाद के प्रति रहीम की पूरी आस्था थी। रहीम ''जब लगि जीवन, जगत में, सुख दुख मिलन अगोट'' कहकर प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का उत्तरदायी ठहराते हैं। रहीम का मानना है कि मनुष्य के कर्म ही उसे अच्छे अथवा बुरे फल प्रदान करते हैं। वे सदैव पुरुषार्थी कार्य करके कर्मवादी बनने की प्रेरणा देते हैं।

रहीम का जीवनकाल सुख और दुख के अभूतपूर्व संगम में बीता था। उनके जीवन के अनुभव ही उनके काव्य के आधार बने। उनकी काव्य रचनाएं हैं—'बरवै नायिका भेद', 'नगर शोभा', 'दोहावली' या 'सतसई', 'रास पंचाध्यायी', 'मदनाष्टक', 'शृंगार सोरठा'।

अवधी एवं ब्रजभाषा में रचित इनके ग्रंथ बहुत ही प्रभावशाली हैं। आलोच्य ग्रंथों में जीवन के मधुर और कटु अनुभव बहुत ही रोचक एवं प्रभावपूर्ण भावों में अभिव्यंजित हुए हैं। वे सदैव सरल एवं सीधी-सादी भाषा में ही अपने भावों की अभिव्यंजना करते हैं। रहीम के एक-एक दोहे को मंत्र का पद देकर प्रतिष्ठापित किया गया है तथा वैदिकता प्रदान की गई है। रहीम के दोहे हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि हैं, जो राष्ट्रीय जीवन में मूल्यों की पुनर्स्थापना में सहायक सिद्ध होंगे। रहीम के दोहे पिंजरबद्ध पंछी नहीं हैं। वे आकाश के सभी शिखरों पर अपनी छाया अंकित करते हुए मन सम्राट विहग हैं।

रहीम मूलतः तद्भवता के कवि हैं। उनकी तद्भवता में नीलम की चमक है। उनके दोहों में ग्राम्यांचल के मनोरम चित्र हैं। रहीम आदमी की अस्मिता के कवि हैं। वे अपने दोहों के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अस्मिता सामने रखने के लिए हिम्मत देते हैं। उनके दोहे उपदेशात्मक एवं आदेशात्मक लगते हैं।

रहीम के दोहों की यह विशेषता है कि उनके दोहों में किसी भी भगवान का गुणगान होता हुआ नहीं दिखाई देता है न ही किसी शीशमहल का वर्णन होता हुआ दिखाई देता है वरन् वर्णन किए गए हैं तो जन-मंदिर के कलश और कलश पर बैठे आस्था के कपोत के।

रहीम ने अपने दोहों के माध्यम से सभी व्यक्तियों को यह उपदेश दिया है—उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय अपने विवेक के आधार पर होना चाहिए। रहीम सदैव यही चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति की समाज में मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा बनी रहे। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को छल-छद्म, लोभ-मोह, काम-क्रोध जैसी दुनिया से अलग रखने की प्रतिपल चेष्टा करता रहे। उनके अनुसार मान-सम्मान विहीन जीवन कोई जीवन नहीं है। प्रत्येक प्राणी को अपने परिवार रूपी बगीचे में उद्यमी, अध्यवसायी एवं परोपकारी मानव रूपी वृक्षों का रोपण करना चाहिए। इस दोहे के माध्यम से उन्होंने इस भाव को स्पष्ट करना चाहा है—

''एक साधे सब सधै,
सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो,
फूलै फलै अघाम।।''[3]

रहीम के अनुसार मानव जीवन क्षणभंगुर है। इसलिए प्रत्येक प्राणी को घमंड भाव त्याग कर नम्र भाव से पूर्ण जीवन शैली को अपनाना चाहिए, जिससे उसकी उन्नति हो। दर्प और गर्वी व्यक्तियों की सदैव अवनति ही होती है न कि उन्नति। हमें अहंकार भाव से कोसों दूर रहना चाहिए। विनम्रता ही मनुष्य को सही रास्ता दिखलाती है एवं उसे उसके लक्ष्य तक पहुंचाती है।

मनुष्य जब मुसीबत में होता है, तब वह इन मुसीबतों का सामना करने के लिए ईश्वर से शक्ति की मांग करता है। हे ईश्वर, मुझे इतनी शक्ति दो कि मैं अपने जीवन में आने वाली मुसीबतों का सामना कर सकूं। अर्थात् प्रत्येक प्राणी ईश्वर को अपना सहारा मानता है साथ ही भिन्न-भिन्न रूपों में उसकी उपासना भी करता है। इसलिए रहीम कहते हैं—प्रभु की चरण-शरण ही जिसकी छत्रछाया हो और भक्ति की सर्वभूमि पर जिसका प्रभुत्व हो, वही परम भागवत है एवं जन-जन के हृदय का सम्राट भी—

''होय न जाकी छांह ढिग,
फल रहीम अति दूर।
बाढ़्यो सो बिनु काज ही,
जैसे तार खजूर।।''[4]

उपर्युक्त दोहों के माध्यम से उन्होंने सदैव यही कहना चाहा है कि वैभवशाली व्यक्तियों को उदारचित्त होना चाहिए। हर प्राणी में उदात्त भाव होने चाहिए। साथ ही निःस्वार्थ भाव से जीने की चाह भी मन में होनी चाहिए। निःस्वार्थ एवं उदारचित्त वाले व्यक्ति ही प्रतिष्ठित व्यक्ति होने के हकदार होते हैं एवं एक रामराज्य के निर्माण में ये सदैव सहायक सिद्ध होते हैं—

''छिमा बड़ेन को चाहिए,
छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो,
जो भृगु मारी लात।।''[5]

उपर्युक्त दोहे के द्वारा रहीम ने समाज में निवास करने वाले प्राणियों को यह सीख देना चाहा है कि क्षमादान श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के अंतर्गत ही आता है। क्षमादान करने वाला व्यक्ति महान होता है एवं क्षमा पाने वाले के हृदय में एक नई चेतना जागृत होती है। उसके अंतस्थल में एक नया कमल उगने लगता है, साथ ही एक नई सुंदरता अंकुरित हो जाती है।

न्याय, क्षमादान एवं उदारता में रहीम अद्वितीय थे। वे सभी के साथ न्याय करते थे। गरीबों के साथ न्याय करने में उनकी अद्वितीय न्यायशीलता का परिचय प्राप्त होता है। रहीम अद्‌भुत क्षमावान थे। प्रत्येक कार्य करने के मूल में मानवतावादी रहीम की लोक कल्याणकारी दृष्टि निहित थी।

रहीम के अनुसार—क्षमादान के साथ-साथ प्रत्येक प्राणी में कृतज्ञता के गुण भी होने चाहिए। ऐसे गुण ही सच्ची मानवता के गुण हैं। धैर्य एवं आस्था जीवन पथ के प्रधान सहयात्री हैं।

वास्तव में धैर्यवान व्यक्ति ही सदैव अपने जीवन में सफल होते हैं। धैर्य से ही हम कड़ी से कड़ी मुश्किलों को दूर कर सकते हैं। धैर्यवान व्यक्ति कायर नहीं होते हैं, वरन् धैर्य सहित समस्याओं का समाधान निकालने में डटे रहते हैं।

रहीम की उपमाओं, कथानकों, दृष्टांतों तथा प्राकृतिक दृश्यों आदि में हिंदुत्व भरा हुआ मिलता है। वास्तव में रहीम ने ''तुलसी और कबीर की भांति रामनाम की अमोघ शक्ति का मंडन किया। सूर की भांति उन्होंने लीलामय कृष्ण के प्रति अपने भावोद्‌गार व्यक्त किए और गोवध का निषेध किया। किंतु इन सबके होते हुए भी वे कभी इस्लाम धर्म से विमुख नहीं हुए।''[6]

''रहीम ईश्वर-दूत बनकर मानव धर्म के प्रचार-प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य काव्य सृजन से तो निभाते ही रहे, अपने व्यवहार तथा सद्‌भाव से भी वही मार्ग निरंतर प्रशस्त करते रहे।''[7]

रहीम अकबरी दरबार के नवरत्नों में से एक थे। रहीम के काव्य में लोक भूमि की गंध और प्रकृति की सुगंधित श्वास थी। हिंदी भाषा में सर्वाधिक मात्रा में काव्य-सृजन कर रहीम ने हिंदी के साहित्याकाश पर अपनी वह अप्रतिम छटा बिखेरी है, जो चिरंतन जगमगा रही है।

उनमें काव्य प्रतिभा जन्मजात थी। हिंदी साहित्य जगत में अब्दुर्रहीम खानखाना की रचनाएं 'रहीम' के नाम से प्रसिद्ध हैं। रहीम के दोहों का वैशिष्ट्य यह है कि उनमें अभिव्यंजित भाव किसी एक भाव पर आधारित न होकर अनगिनत भावों से संपृक्त हैं।

मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति करने वाले रहीम के दोहों में उनके चिंतन-अनुभव की विशालता झलकती है, जो अपने ज्ञान और प्रतिभा से संपृक्त होकर वैशिष्ट्य रूप धर लेते हैं।

हिंदी साहित्यकाश के सर्वाधिक दैदीप्यपान नक्षत्र, पांडित्य के अपार पारावार, कविकुल रहीम की प्रतिभा से संपूर्ण हिंदी साहित्य प्रकाशित एवं गौरवान्वित है। इनकी प्रतिभा सर्वश्रेष्ठ है। मानवतावादी रहीम आज भी जनता के लोकप्रिय बने हुए हैं। नीति और मूल्यों के कट्टर प्रहरी रहीम का व्यक्तित्व अद्वितीय और अतुलनीय है। उन्होंने अपने आचरण, व्यवहार और कर्म से मूल्यों का अन्वेषण किया है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. अकबरी दरबार, शम्सुल मौलाना मोहम्मद हुसैन आजाद (डॉ. रामचंद्र वर्मा), पृ. 227
2. महासिरे रहीमी, भाग-2
3. ये रहीम दर दर फिरहिं—डॉ. श्रीकांत उपाध्याय, पृ. 14
4. ये रहीम दर दर फिरहिं—डॉ. श्रीकांत उपाध्याय, पृ. 128
4. ये रहीम दर दर फिरहिं—डॉ. श्रीकांत उपाध्याय, पृ. 31
5. अब्दुर्रहीम खानखाना, डॉ. समर बहादुर सिंह, पृ. 302
6. काव्यास्वाय के विविध सोपान ('सांप्रदायिक सद्‌भाव और रहीम का काव्य' शीर्षक आलेख), डॉ. पूरनचंद टंडन, पृ. 25

फ्लैट नं.-303, शिवालिक अपार्टमेंट्स,
सेक्टर-10, गुड़गांव (हरियाणा)

रहीम के काव्य में अभिव्यक्त धार्मिक लोक-विश्वास

अनुराग शर्मा

''रहीम का संवेदनशील एवं संचेतनशील व्यक्तित्व था। कूटनीतिज्ञ और युद्धोन्माद के विषम परिवेश ने उनकी संवेदनशीलता को नष्ट नहीं किया था। इससे उनके अनुभव समृद्ध हुए हैं तथा मानव प्रकृति को समझने का अच्छा अवसर मिला है। वे स्वयं तो रचनाधर्मिता की ओर उन्मुख हुए ही, साथ ही अकबर के दरबार को कवियों एवं शायरों का केंद्र बना दिया। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदारवादी नीति ने उन दरारों को पाटने का कार्य किया जो दो संप्रदायों के बीच चौड़ी व गहरी होती जा रही थीं। रहीम जन्म से तुर्क होते हुए भी पूरी तरह भारतीय थे। भक्त कवियों जैसी उत्कट भक्ति-चेतना, भारतीयता और भारतीय परिवेश से गहरा लगाव उनके तुर्क होने के अहसास को झुठलाता सा प्रतीत होता है।''[1]

राजनीतिक पुरुष एवं अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न होने के बावजूद रहीम की लोक से संपृक्ति थी। लोक-संस्कृति के विश्वासों का उन्हें सम्यक् बोध था। ''रहीम मुसलमान अवश्य थे परंतु वे भारत की पुनीत भूमि पर उत्पन्न हुए थे। हिंदुओं के सदृश्य ही उन्होंने पतित-पावनी गंगा की निर्मल छटा का अवलोकन किया था। हिमगिरि के उत्तुंग शृंगों का दर्शन भी उन्होंने उसी दृष्टि से किया था जैसे यहां के हिंदू करते थे। गायों के प्रति उनकी यही आस्था और श्रद्धा थी जो यहां के आर्यों की थी। इस प्रकार भारतीय वातावरण में उत्पन्न होने, पलने और रहने के कारण उनके हृदय में उन्हीं विश्वासों का विकास और परिवर्धन हुआ जिनका यहां के अन्य निवासियों में होता आया है।''[2]

भारतीय वाङ्मय में 'लोक' शब्द का प्रयोग अत्यंत प्राचीनकाल से होता चला आ रहा है। वेदों, उपनिषदों, संस्कृत वैयाकरण, पाणिनि की अष्टाध्यायी, वररूचि के वार्तिकों, पंतजलि के महाभाष्य, आद्याचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, महर्षि व्यास की शतसाहस्त्री संहिता (महाभारत) आदि में 'लोक' शब्द स्थान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है किंतु इसमें साधारण जनता के अर्थ में लोक शब्द का व्यवहार कई स्थानों पर किया गया है और इस शब्द की अपनी प्राचीन परंपरा है। वैसे पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीवन तथा स्थान दोनों के अर्थों में किया गया है–

''नाभ्या आसीदन्तरिचां
शीर्ष्णों द्योः समवर्तता।
पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा
लोकां अकल्पयन् ।।''[3]

भारतीय जनमानस में अपने व्यापक अर्थ में 'धर्म' , मानव-जीवन के समस्त शुभाचरण को समाहित किए हुए है। यह मनुष्य में 'श्रद्धा', 'आस्था' और 'विश्वास' के बल पर ही टिकता है। आस्था की यह परंपरा धार्मिक विश्वासों का रूप ग्रहण कर लेती है। धार्मिक लोक-विश्वासों के अंतर्गत ईश्वरीय सत्ता एवं उससे संबंधित विविध धार्मिक पक्षों की परिगणना की जा सकती है। लोक-मानस से परिव्याप्त धार्मिक लोक-विश्वास, पुराणों और उपनिषदों से संबंधित पौराणिक मान्यताओं और धार्मिक-विश्वासों पर आधारित है। रहीम ने अपने काव्य में इन सभी धार्मिक-विश्वासों को निरूपित किया है। उन्होंने अपने काव्य में अवतारवाद, ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास, बहुदेवोपासना-गुरू पूजन, प्रतिमा, नदी पूजन, तीर्थाटन, दान की महिमा और षड्रिपु निवारण संबंधी धार्मिक-पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों का निरूपण किया है।

'अवतारवाद' की भावना भारतीय धार्मिक विश्वास की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। श्रीमद्भगवद्गीता में अवतारों की संख्या असंख्य बताते हुए लिखा गया है कि जिस प्रकार सरोवर से निकलने वाली नदियां अनेक हैं, वैसे ही ईश्वर के अवतार भी असंख्य हैं–

''अवतारा ह्यसंख्येयाः हरेः सत्वनिधेद्विजा।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्त्राशः।।''[4]

इस्लाम के अनुयायी होने के बावजूद रहीम की 'अवतारवाद' में आस्था थी। उन्होंने 'अवतारवाद' के संबंध में तत्कालीन समाज के विश्वासों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। रहीम ने अपने एक दोहे में वराहावतार का भी उल्लेख किया है। अपने गोत्र को चाहने के संदर्भ में वराह (सूअर) द्वारा भूमि खोदने का वर्णन करते हुए कवि कहता है भगवान विष्णु वराहवतार धारण कर हिरण्याक्ष को मारकर पाताल-लोक से पृथ्वी वापस लाए थे–

''रहिमन अपने गोत को,
सबै चहत उत्साह ।

मृग उछरत आकास को,
भूमि खनत वराह।।''[5]

भारतीय संस्कृति की देवी-देवता आदि के पूजन के प्रति अटूट आस्था रही है। भोले शंकर लोक के देवता हैं, आदि-देव है। वे सर्वजन-कल्याणकामी हैं, पार्वती उनकी पत्नी हैं। पार्वती जी के साथ शिव की वंदना करते हुए रहीम कहते हैं कि मैं चिंताओं को दूर करने वाले, चतुरों का भरण-पोषण करने वाले उस उमापति शिव का ध्यान करता हूं जो तीन नेत्रों वाले हैं और जिन्होंने अपने सिर पर गंगाजी को धारण किया हुआ है–

''ध्यावौं सोच-विमोचन, गिरिजा-ईस।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस।।''[6]

रहीम ने अपनी कृति 'बरवै नायिका भेद' का आरंभ करते समय देवी शारदा के चरणों में हाथ जोड़कर वंदन करते हुए आशा व्यक्त की है कि जिस बरवै छंद में उन्होंने यह काव्य-रचना शुरू की है वह सरस्वती कृपा से निष्कलंक एवं निर्दोष परिसमाप्त हो जाए–

''बंदो देवि सरदवा, पद, कर जोरि ।
बरनत काव्य बरैवा, लगई न खोरि ।।''[7]

रहीम ने धार्मिक लोक-विश्वास के अंतर्गत देवी-देवताओं की उपासना के अतिरिक्त, गुरु-महत्ता संबंधी लोक-दृष्टि को भी स्वीकार किया है और गुरु वंदना भी की है। भक्ति की साधना के लिए गुरु की महत्ता पर लोक ने सदैव बल दिया है। सभी धार्मिक संप्रदायों ने लोक की इस भावना का आदर किया है। रहीम गुरु चरण-कमलों की नित्य वंदना करना चाहते हैं क्योंकि गुरु एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति रखते है कि उनके आश्रयत्व में मन में परिव्याप्त अज्ञान-रूपी अंधकार नष्ट हो जाता है–

''पुन पुन बंदहुं गुरू के, पद-जलजात ।
जिहि प्रताप तें मनके, तिमिर बिलात।।''[8]

भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जिसमें आज भी लोक में प्रतिमा के पूजन करने की आस्था विद्यमान है। प्राचीनकाल से ही प्रतिमा पूजन की अनेक प्रविधियां प्रचलित रही हैं। प्रतिमा पूजन आर्य संस्कृति का प्रधान लक्षण है। रहीमयुगीन समाज में प्रतिमा पूजन संबंधी विश्वास, जन-सामान्य में चतुर्दिक परिव्याप्त था। हिंदू धार्मिक निष्ठा वाले रहीम ने अपनी रचनाओं में ईश्वर के निर्गुण रूप के साथ-साथ साकार रूप का हृदयग्राही रूप में गान किया है और कुछेक स्थलों पर प्रतिमा पूजन संबंधी विश्वास को सांकेतिक ढंग से काव्य में स्थान देते हुए लिखा–

''पुरूष पूजें देवरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहि रहीम दोउन बनै, पंड़ो बैल को साथ।।''[9]

नदी-पूजन भारतीय लोक-विश्वास का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भारत की नदियों में गंगा और यमुना नदी का स्थान विशेष है। प्राचीन काल से ही इनकी पुनीतता और माहात्म्य को स्वीकारा जाता रहा है और उनकी उपासना-स्तुति एवं पूजन किया जाता रहा है। हिंदू धर्मावलंबियों के अनेक तीर्थस्थल इन पवित्र पूजनीय नदियों के किनारे अवस्थित हैं। रहीम गंगाजी के माहात्मय का वर्णन अत्यंत भक्ति-भाव से और पूरी तन्मयता के साथ करते हैं। वे याचना करते हैं कि विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली तथा भगवान शंकर के मस्तक पर मालती की माला के समान सुशोभित होने वाली हे गंगे! मेरा उद्धार करते समय मुझे विष्णु न बनाकर शिव बनाना ताकि मैं आपको सिर पर धारण कर सकूं क्योंकि चरणों में स्थान देना नितांत अनुचित एवं असह्य है–

''अच्युतचरणतरंगिनी शशिखेशर-
मौलि-मालतीभाले ।
मम तनु-वितरण-समय हरता
देया न मे हरिता ।।''[10]

मां गंगाजी के प्रति अपनी इस असीम भक्ति को 'दोहावली' में भी व्यक्त किया है। अपनी इस भक्ति-भावना को काव्यानुवाद के रूप में उन्होंने निम्नलिखित दोहे में भी प्रस्तुत किया है–

''अच्युत-चरन-तरंगिनी,
शिव-सिर-मालति-भाल।
हरि न बनायो सुरसरी
कीजो इदव भाल।''[11]

भारतीय जन सामान्य ने यमुना के महत्त्व को भी स्वीकारा है। यमुना के प्रति इस विश्वास का कारण यह रहा है कि श्रीकृष्ण ने उसकी कछारों में पार्श्ववर्ती कुंजो में विविध लीलाएं रची थीं और क्रीड़ाएं की थीं। सूरदास ने भी अपने काव्य में इसका चित्रण किया है। कृष्ण-भक्ति के अंतर्गत यमुना का विशेष माहात्म्य माना जाता है इसलिए रहीम ने कृष्ण संबंधी भक्ति-काव्य में इसका उल्लेख कर उन्होंने भारतीय विश्वास का ही परिचय दिया है।

दान, लोक-संस्कृति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 'धनात् धर्मम्' कहकर दान को धन की वास्तविक उपयोगिता बताई जाती है। दान में मनुष्य की आस्था का कारण यह विश्वास है कि इससे मानव की आगत विपत्तियां टल जाती हैं। भारतीय धार्मिक आस्था के अंतर्गत दान की प्रथा अत्यंत प्राचीन है–महाराजा हरिश्चंद्र, कर्ण, दधीचि आदि अद्वितीय दानी माने गए हैं। लोक-विश्वास है कि दान देना श्रेष्ठ कृत्य है, किंतु मांगने को अपमानजनक भी समझा जाता है, क्योंकि इससे व्यक्ति के स्वाभिमान को ठेस पहुंचती है। इस तरह मांगने को मौत के बराबर माना जाता है किंतु याचक द्वारा मांगने पर कुछ भी न देने वाले की दशा को रहीम अधिक दयनीय मानते हैं–

''रहिमन वे नर-मर चुके,
जे कहुं मांगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए,
जिन सुख निकसत नांहि ।।''[12]

रहीम का काव्य इस लोक-विश्वास से अछूता नहीं कहा जा सकता। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, उसकी परम सत्ता के सम्मुख संसार का अत्यंत बलशाली जीव तक दुर्बल है–शक्तिहीन है। ईश्वर की इस महत्ता और मनुष्य की सीमा को रेखांकित करते हुए रहीम कहते हैं कि यदि ईश्वर की शक्ति मनुष्य के अपने हाथों में

होती तो इस जगत में कोई किसी को मान्यता नहीं देता–

''जो रहीम होती कहूं,
प्रभु गति अपने हाथ ।
ते कोधौं केहि मानतो,
आप बड़ाई साथ।।''[13]

लोक-जीवन में तीर्थाटन का अत्याधिक महत्त्व है। भारतीय विश्वास के अंतर्गत तीर्थाटन संबंधी धारणा उन्हीं लोगों में जागृत होती है जो ईश्वर के प्रति आस्था रखते हैं। भारतीय लोक-दृष्टि के अनुसार काशी के तीर्थाटन का महत्त्व तो है ही। साथ ही मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुकों द्वारा काशी में वास करने संबंधी विश्वास में भी निष्ठा है। भाग्यवादी दृष्टिकोण संबंधी निम्नलिखित दोहे में रहीम ने काशी-तीर्थ के महत्त्व को दर्शाया है–

''लिखी रहीम लिलार में,
भई आन को आन।
पद कर काटि बनारसी,
पहुंचे मगरु-स्थान।।''[14]

रहीम को तीर्थ-स्थलों में ईश्वरीय आभा के प्रकाश का बोध था। उन्होंने तीर्थ स्थानों की महत्ता को लोक-दृष्टि के अनुरूप स्वीकारा है और अपने काव्य में इसकी ओर संकेत किया। रहीम ने निम्नलिखित दोहे में 'चित्रकूट' की महत्ता वर्णित की है–

''चित्रकूट में रमि रहे,
रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है,
सो आवत यहि देस।।''[15]

षड्रिपु-निवारण के संबंध में भारतीय जन-मानस की प्रगाढ़ आस्था है। षड्रिपु के अंतर्गत काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर और लोभ के निवारण की चर्चा की जाती है। पुरुषार्थ-चतुष्टय (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की सिद्धि में षड्रिपुओं का निराकरण आवश्यक होने की वजह से भारतीय लोक-विश्वास एवं आचरण के अंतर्गत इनका विशेष महत्त्व है।

रहीम-साहित्य ने लोक-मानस के इस धार्मिक विश्वास को दृढ़ता प्रदान की है। रहीम इन षड्रिपुओ में क्रोध, अहंकार, गर्व आदि के परित्याग का उल्लेख करते है। बड़े से बड़ा कर्म करने वाले को भी उसी प्रकार अभिमान नहीं करना चाहिए, जिस प्रकार समस्त संसार का भारी-भरकम बोझ अपने फनों पर धारण करने के बावजूद नागराज 'शेष' अर्थात् शून्य या अत्यंत नगण्य कहे जाते हैं–

''रहिमन कबहुं बड़ेन को,
नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को,
तऊ कहावत सेस ।।''[16]

रहीम अपने साहित्य में क्रोध को छोड़ने और अहंकार का परित्याग करने की बात करते हैं। साथ ही, मीठा बोलने और सभी के साथ विनम्रता का व्यवहार करने का भी आह्वान करते हैं ताकि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना भी जागृत हो–

''रहिमन रिस को छांडि कै,
करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो,
सबै तुम्हारो देस ।।''[17]

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि रहीम ने उपर्युक्त विवेचित धार्मिक लोक-विश्वासों एवं पौराणिक मान्यताओं के आधार पर जो काव्य-सृजन किया, वे सभी धार्मिक आस्थाएं लोक-मानस का प्रतिनिधित्व करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. रहीम ग्रंथावली, संपादक-विद्यानिवास मिश्र गोविंद रजनीश, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2004, आवृत्ति-2010 (कवर पेज का पिछला हिस्सा)
2. अकबर दरबार के हिंदी कवि, डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल, पृ. 276
3. ऋग्वेद, मंडल 10, अ. 8, सूक्त 90 श्लोक 14, पृ.-224
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 1.3.26
5. रहीम ग्रंथावली, संपादक-विद्यानिवास मिश्र, गोविंद रजनीश, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2004, आवृत्ति-2010, पृ. 87 (दोहावली-176)
6. वही, पृ. 137 (बरवै-भक्तिपरक-4)
7. वही, पृ. 119 (बरवै नायिका भेद-मंगलाचरण-2)
8. वही, पृ. 137 (बरवै-भक्तिपरक-16)
9. वही, पृ. 82 (दोहावली-128)
10. वही, पृ. 166 (संस्कृत श्लोक-7)
11. वही, पृ. 69 (दोहावली-2)
12. वही, पृ. 95 (दोहावली-250)
13. वही, पृ. 78 (दोहावली-91)
14. वही, पृ. 96 (दोहावली-261)
15. वही, पृ. 74 (दोहावली-57)
16. वही, पृ. 88 (दोहावली-186)
17. वही, पृ. 94 (दोहावली-234)

शोध छात्र, हिंदी विभाग, कक्ष सं. - 144,
बिरला 'ब' छात्रावास, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005

नीति-काव्य परंपरा और रहीम

कुलदीप मीणा

'नी' धातु तथा 'कित्न' प्रत्यय के संयोग से बना नीति शब्द भारतीय वाङ्मय में अत्यंत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता चला आ रहा है।[1] प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में नीति शब्द का प्रयोग 'सु', 'ऋजु' नामादि विशेषणों के साथ हुआ है। वेद तथा उसके अनुवर्ती साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृत, पाली तथा प्राकृतादि प्राचीन भाषाओं से होता हुआ यह शब्द भारत की आधुनिक भाषाओं तक आ गया है और हिंदी, मराठी आदि वर्तमान भारतीय भाषाओं के साहित्य में अपने अविकृत रूप में प्रयुक्त हो रहा है। 'नीति' शब्द के अनेक अर्थ किए जाते है जिसका तात्पर्य उस मार्ग से है, जिस पर चलकर हम बिना किसी अन्य प्राणी का अहित किए अपना हित साधन कर सकते हैं।

आचार्यों ने 'नीति' के पक्षों का निर्धारण करते हुए इसके एक पक्ष को मार्ग निर्धारण या चिंतन का माना है तथा दूसरा आचरण अथवा अभ्यास का चिंतन पक्ष नीति को धर्म, दर्शन, मनोविज्ञानादि से संबद्ध करता है वहीं आचरण-पक्ष कला से। इस प्रकार नीति को विज्ञान भी कहा जा सकता तथा कला भी। विद्वानों का इस विषय में मतैक्य नहीं है। हम नीति को व्यवहार मानते हैं। अतः हमारे विचार से नीति सफल जीवन-यापन की चिंतन प्रधान कला है। जिन काव्यों में महाकाव्य के सभी गुण या लक्षण नहीं पाए जाते उन्हें खंडकाव्य या नीतिकाव्य कहते हैं।

''खंडकाव्यं भवेत्काव्येकदेशानुसारि च।''[2]

चिंतनशील प्राणी जब अपने अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है तब वे साहित्य का अंग बन जाते हैं। यदि अभिव्यक्तकर्त्ता की वाणी में कविजनोचित विद्ग्धता हुई तो वही कथन नीति-काव्य का पद ग्रहण कर लेता है। जिस प्रकार शैली की दृष्टि से गद्य को, कुशल कवि की कसौटी माना जाता है, उसी प्रकार विषय की दृष्टि से नीति को, काव्य-कौशल की कसौटी माना जाना चाहिए।

नीति काव्य का सृजन भारतीय कविता की अपनी विशेषता है। वह इस दृष्टि से विश्व साहित्य में अद्वितीय है। इस प्रकार की कविता का आरंभ वेदों, पुराणों, स्मृतियों, महाभारत आदि ग्रंथों में अपने सर्वोपरि रूप में दिखाई देता है। महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, नाटक आदि समस्त काव्य-विधाओं में ऐसा कोई भी ग्रंथ नहीं खोजा जा सकता, जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में नीति तत्त्व विद्यमान न हो।

नीति-निर्माण की दृष्टि से एक ऐसी पृथक तथा समृद्ध काव्य-धारा भारत में प्रवाहित रही है, जिसे नीति-काव्य अथवा उपदेशात्मक कविता की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार से संस्कृत काव्य विश्व-वाङ्मय में अद्वितीय है। इस साहित्य धारा में जितनी अधिक प्रसिद्धि तथा काव्यात्मकता भर्तृहरि के तीनों शतकों में है, उतनी अन्यत्र नहीं।

''येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति।।''[3]

भर्तृहरि ने ऐसे मनुष्यों की निंदा करते हुए कहा है कि जिन मनुष्यों के पास न विद्या है, न तप है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे इस मृत्युलोक में पृथ्वी के ऊपर भार समान हैं और मनुष्य के रूप में पशु समान घूम रहे हैं। अतः हम भर्तृहरि को प्राचीन भारतीय नीति-काव्य का सम्राट मानते हैं।

संस्कृतेतर साहित्य में भी नीति काव्य की परंपरा अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रही है। पालि के धम्मपद, प्राकृत के वज्जालग्ग तथा अपभ्रंश के चरित्र-काव्य इस शृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ियां हैं।

हिंदी नीति-काव्य में निर्गुण संत-साहित्य का महत्त्व उसी प्रकार है जिस प्रकार कि भारतीय अर्थ तथा राज्य व्यवस्था में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का। यद्यपि इसी प्रकार के नैतिक सिद्धांतों का आकलन सूफी काव्य में भी हुआ है, किंतु निर्गुण नीति काव्य के सम्मुख उसका महत्त्व नगण्य सा है। कृष्णभक्ति के सगुण कवियों में यद्यपि आध्यात्मिक नीति प्रचुर मात्रा में है किंतु फिर भी व्यावहारिक नीति की दृष्टि से कृष्णभक्ति काव्य का महत्त्व उल्लेखनीय नहीं है। रामभक्ति शाखा के कवियों, विशेषतः तुलसी ने शैली की विविधता को अपनाया था और अपने युग की ऐसी कोई भी प्रचलित काव्य शैली नहीं जिसे तुलसी ने राममयी न किया हो, किंतु नीति का क्षेत्र वहां भी रिक्त था।

कुछ कवि स्वतंत्र धारा के रूप में भी नीति की कविता कर रहे थे। इनमें अकबरी दरबार के कवियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है किंतु रहीम के अतिरिक्त और कोई भी कवि उसे सुगमतापूर्वक ग्रहण नहीं कर सका था। रहीम ने अपने काव्य में जीवन के तरह-तरह के खट्टे-मीठे-तीखे अनुभव एवं दिनों के फेर

का वर्णन दोहों या सोरठों में किया है, जिन्हें विद्वानों ने नीति के दोहा कहा है। उनके दोहों में आए सारे दृष्टांत या तो पुराणों से लिए गए हैं या फिर सामान्य जीवन से। दृष्टांतों के चयन में रहीम की मौलिकता और उनकी लोक-दृष्टि का पता चलता है।

विश्व मानव के चातुर्दिक विकास के कई सूत्र रहीम ने अपने दोहों में रख छोड़े है। ''स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन पृथिव्यां सर्वमानवाः''[4] के आदर्शों को हजारों वर्ष बाद भी जिन कवियों ने साधारण कविता का विषय बनाया है, रहीम उनके पुरोधा हैं।

''रहिमन कठिन चितान तें,
चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव को,
चिंता जीव समेत।।''[5]

रहीम अपने इस दोहे में अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब मन में चिंता आ जाती है तो वह चिताओं से भी अधिक कष्टकारिणी होती है। क्योंकि चिता मृतक को ही जलाती है किंतु चिंता तो जीवित को ही जला देती है।

लक्ष्मी की चंचलता और उसकी चंचलता का कारण रहीम अपने दोहे में व्यक्त करते है–

''कमला थिर न रहीम कहि,
यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की वधू,
क्यों न चंचला होय ।।''[6]

रहीम अपने एक दोहे में कहते हैं कि संसार में सभी पदार्थ हैं किंतु फिर भी कर्महीनों को कुछ भी नहीं मिलता। रहीम कहते हैं कि उस भाग्यहीन चोर को देखो जो चोरी करने के लिए संपत्ति से परिपूर्ण घर में घुस गया, पर ले कुछ भी नहीं सका। क्योंकि अत्यधिक लाभ की चिंता करते हुए ही वह जागता रहा और इसी प्रकार जागकर चिंता करते हुए ही प्रातः काल हो गया–

''करमहीन रहिमन लखो,
धंसो बड़े घर चोर ।
चिंतत ही बड़ लाभ के,
जागत हवै गो भोर।।''[7]

पुराने जमाने की घड़ी का एक चित्र है जिसमें एक संपुटी में (शीशे के दो समान जुटे हुए गोलों में) जल भरकर के बारीक छेद से निकाला जाता था और तब घड़ियाल बजाया जाता था। इसी को लक्ष्य करके रहीम ने एक दोहा लिखा है–

''रहिमन नीच प्रसंग ते,
नित प्रति लाभ विकार ।
नीर चौरावै संपुटी,
मारू सहै घरियार।।''[8]

पानी तो चुराती है संपुटी और मार सहता है घड़ियाल। एक दोहे में उन्होंने कहा है कि शत्रु-मित्र की पहचान तीन तरह से होती है–

''रहिमन तीन प्रकार ते,
हित अनहित पहिचानि ।
पर बस परे, परोस बस,
परे मामिला जानि।।''[9]

आप परवश हो जाएं, आप पड़ोस में बसें या आप किसी मामले में फंस जाएं, तब शत्रु-मित्र की सही पहचान अपने आप हो जाती है। यह जितना सच रहीम के समय में था उतना ही सच आज भी है।

रहीम बड़प्पन की पहचान इसमें मानते हैं कि वह कितना सह सकता है। उसको कोई छोटा भी कहे तो वह कभी घटता नहीं है, गिरिधर को कोई मुरलीधर भी कहे तो वे उससे नाराज नहीं होते–

''जो बड़ेन को लघु कहें,
नहिं रहीम घटि जाहि।
गिरिधर मुरलीधर कहे,
कछु-दुख मानत नाहिं।।''[10]

परंतु रहीम ने इनसे भी मार्मिक दोहा मान और मर्यादा को लेकर कहा है या फिर दिनों के हेर-फेर को लेकर कहा है। पानी पर रहीम का दोहा प्रसिद्ध ही है–

''रहिमन पानी राखिये,
बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरैं,
मोती, मानुष, चून।।''[11]

दिनों के फेर के ऊपर सबसे तीखी उक्ति है–

''रहिमन एक दिन वे रहे,
बीच न सोहत हार।
वायु जु ऐसी बह गयी,
बीचन परे पहार।।''[12]

कभी ऐसा था कि हार का व्यवधान असह्य था और कुछ ऐसी हवा चली कि वे हार छाती पर पहाड़ हो गए हैं और ऐसी स्थिति में चुपचाप सहना ही एकमात्र विकल्प रह गया है–

''रहिमन चुप हवै बैठिए,
देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहै,
बनत न लगिहैं बेर।।''[13]

रहीम ने प्रेम संबंधों में दरार उत्पन्न होने पर पड़ने वाली गांठ की ओर संकेत करते हुए कहा है कि–

''रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरो चटकाय ।
टूटे ते फिर न जुरे,
जुरे गांठ परी जाय।।''[14]

वे धागे में गांठ पड़ने तक ही नहीं कहते, मुक्ता का हार यदि टूट जाता है तो फिर-फिर उसे पोहना चाहिए, मानव मूल्यों से लगाव छूट जाता है तो फिर-फिर जोड़ना चाहिए। रहीम इसी जुड़ाव को अपने दोहों के द्वारा व्यक्त करते हैं–

''टूटे सुजन मनाइये,
जो टूटे सौ बार
रहिमन फिर-फिर पोहिये,
टूटे मुक्ताहार।।''[15]

नीति काव्य परंपरा में रहीम के दोहों के साथ वृंद का अध्ययन किया जाता है, किंतु यह कुछ-कुछ वैसा ही होगा जैसा कि सुरसरि की तुलना में यमुना का कारण स्पष्ट है।

यद्यपि वृंद सतसई के अनेक दोहों में भी उच्च काव्यत्व है, किंतु मूलतः वृंद सूक्तिकार हैं, जबकि रहिम कवि।

आचार्य शुक्ल ने परवर्ती काल के नीति-सृष्टाओं के साथ तुलना करते हुए लिखा है, ''रहीम के दोहे, वृंद और गिरधर के पद्यों के समान कोरी नीति के पद्य नहीं हैं। उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झांक रहा है।''[16] जिस प्रकार प्रेमचंद को हिंदी का उपन्यास सम्राट तथा प्रसाद को नाटक-सम्राट कहकर पुकारा जाता है, उसी प्रकार रहीम को यदि हिंदी-नीति-काव्य का सम्राट कहा जाए तो किसी प्रकार की अत्युक्ति न होगी। जो स्थान संस्कृत में महाराज भर्तृहरि का है वहीं हिंदी नीति-काव्य में अब्दुर्रहीम खानखाना को प्राप्त है। रहीम हिंदी के भर्तृहरि हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. रहीम का नीति-काव्य, अकिंचन बालकृष्ण, अलंकार प्रकाशन 666, झील, दिल्ली-51, पृ0 355 पर वर्णित।
2. संस्कृत साहित्य में रहीम, डॉ. आबिदी नाहीद—राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् मानित विश्वविद्यालय, नवदेहली, पृ.-161 पर उल्लिखित।
3. नीति शतक, दोहा नं. 13
4. खानखाना अब्दुर्रहीम और संस्कृत, प्रताप कुमार मिश्र—अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 268 पर उल्लिखित।
5. रहीम ग्रंथावली सं. मिश्र विद्यानिवास, रजनीश गोविंद, वाणी प्रकाशन सं. 2004, पृ0 88, (दोहावली, 185)।
6. वही, पृ. 71, दोहावली, 26
7. वही पृ. 71, दोहावली 29
8. वही पृ. 91, दोहावली 217
9. वही पृ. 90, दोहावली, 206
10. वही पृ. 77, दोहावली, 79
11. वही, पृ. 92, दोहावली, 219
12. वही पृ. 88, दोहावली, 183
13. वही, पृ. 19
14. वही, पृ. 91, दोहावली 212
15. वही, पृ. 78, दोहावली 93
16. रहीम का नीति-काव्य, अकिंचन बालकृष्ण, अलंकार प्रकाशन, 666, झील, दिल्ली-51 पृ. 362 पर वर्णित।

शोध छात्र, हिंदी विभाग, कक्ष सं. - 23,
सरदार पटेल छात्रावास,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यहां सोए हैं रहीम

वर्षा रानी

दिल्ली में मथुरा रोड के किनारे पूर्वी निजामुद्दीन के शांत रिहाईशी इलाके में मुख्य मार्ग से मुड़ते ही कोने पर लाल पत्थरों वाली एक पुरानी आकर्षक इमारत दिखाई देती है, जो खानखाना का मकबरा के नाम से मशहूर है। इसके चारों ओर नवीनीकरण की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। शहरी जीवन की आपाधापी के बीच यह पुरसुकून जगह सुबह की सैर और व्यायाम करने वालों और थके राहगीरों के लिए विश्राम स्थल का काम करती है। लेकिन उनमें से कम ही लोग जानते हैं कि यहां सोए हुए हैं कवि रहीम। हिंदी साहित्य जगत के विलक्षण व्यक्तित्व, नीति, भक्ति, प्रेम और श्रृंगार काव्यों के रचयिता। उनमें से और भी कम लोग यह जानते हैं कि अपनी रचनाओं में सारी दुनिया के मानवतावादी मूल्यों को संजोए हुए महान दार्शनिक प्रतीत होने वाले रहीम, तुलसी, कबीर, सूर की तरह कोई संत-महात्मा नहीं थे। वह तो भारत के महान मुगल बादशाह अकबर के प्रभावशाली सिपहसालार, प्रतिभाशाली दरबारी, सफल कूटनीतिज्ञ एवं प्रकांड विद्वान—उनके प्रसिद्ध नवरत्नों में से एक बेहद चमकदार और शानदार रत्न थे। मुगल दरबार में इनके जैसा कोई दूसरा नहीं था। अपनी सारगर्भित काव्य रचना के लिए प्रसिद्ध रहीम का अधिकांश जीवन जंग के मैदानों में तलवारों के साए में संघर्ष करते बीता था। लेखनी चलाने से ज्यादा इनका वक्त फौजों के नेतृत्व और मुगल साम्राज्य के दुश्मनों का दमन करके उसकी सीमाओं को सुरक्षित रखने में निकला था। क्या तीर-तलवार और क्या घुड़सवारी, युद्ध की हर कला में इस जांबाज योद्धा को महारत हासिल थी। तभी कवि मंडन इनकी धनुर्विद्या की तारीफ करते हुए नहीं अघाते—

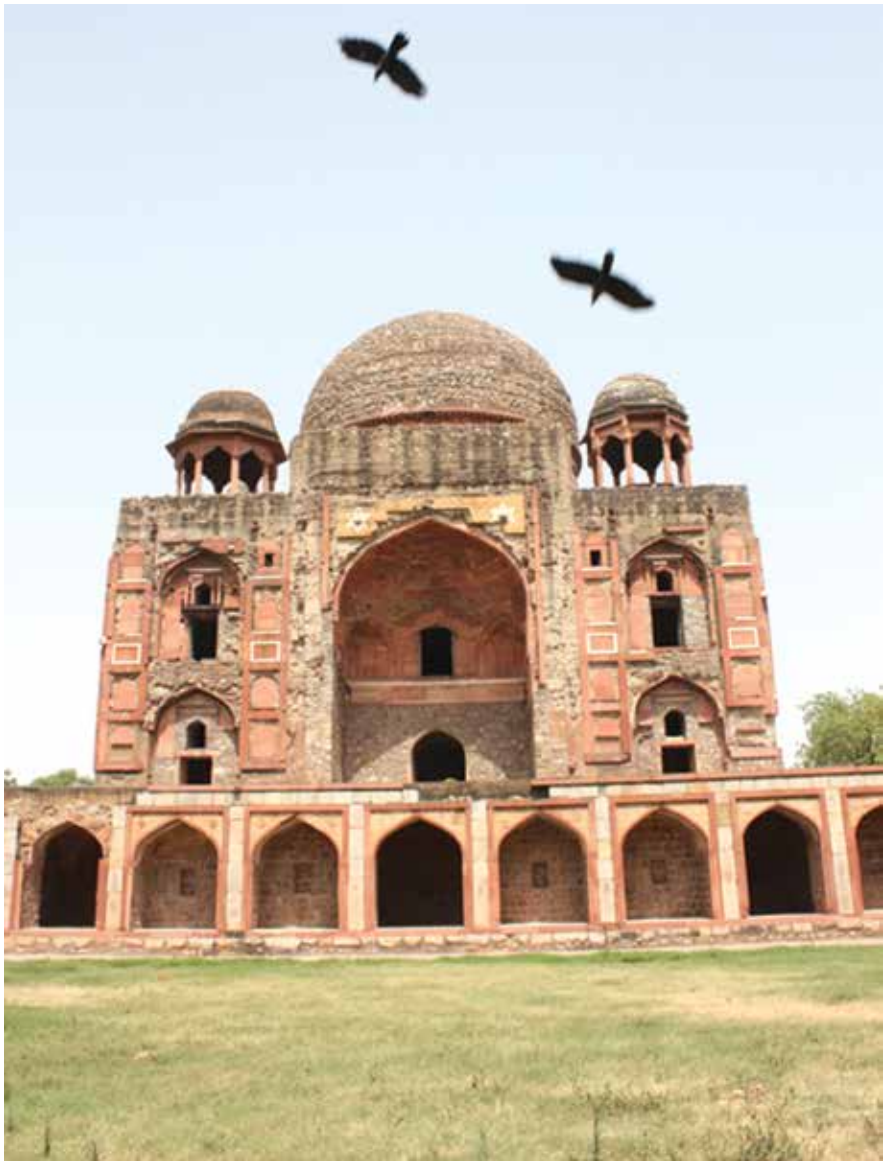

(दो रूहों का आशियाना)

"ओहती अटल खां साहब तुरक मान।
तेरी यह कमान तोसों तेहू सौ करत है।।"

इतिहासकार अबुल फजल की टिप्पणी भी बड़ी माकूल है। तलवार और कमानों को अगर बोलने की शक्ति होती तो वे तुम्हारे भुजबल का हजार बार बखान करते। इनकी बेमिसाल घुड़सवारी के कायल एक प्रसिद्ध कवि का कहना था—

"थरहाहि पलटाहि उच्लाहिं,
नच्चत, धावत तुरंग इमि।

खंजन, जिमी, नागरि नैन जिमी,
नट जिमी, मृग जिमी, पवन जिमी।।"

असाधारण सूझबूझ और युद्धनीति के माध्यम से जंग के मैदान में आई मुश्किल से मुश्किल परिस्थिति का भी रहीम डटकर मुकाबला करते थे। हिंदू-मुस्लिम में कभी भेदभाव न करना इनकी फितरत थी, जिसके कारण उनकी फौज का हर सिपाही चाहे वह किसी जाति और धर्म का हो, उनका मुरीद था। उत्तर हो या दक्षिण जिन कारणों से विजयश्री अकसर उनके कदम चूमती थी वह था—व्यूहों की सुदृढ़ रचना, सैनिक टुकड़ियों का अनुकूल समायोजन और समुचित देखभाल, शत्रुओं या विरोधियों को जीत के बाद वैवाहिक संबंध स्थापित कर मित्र बनाने की कला, फौजों का हौसला बुलंद रखने के लिए उन्हें हतोत्साहित करने वाली खबरें नहीं सुनाना, अपनी कूटनीति से शत्रुपक्ष को कमजोर बनाकर मनमानी शर्तों पर संधि करने पर मजबूर करना इत्यादि। सिंध के मिर्जा जानी और दक्षिण की चांद बीबी एवं मलिक अंबर को कुछ ऐसे ही हालातों का सामना करना पड़ा था। खान जहां लोदी, राजा मानसिंह और महाबत खां, कोई भी इनकी बराबरी नहीं कर सकता था। इसीलिए दक्षिण की सिपहसालारी या सूबेदारी का भार बार-बार इन्हें ही सौंपा जाता था क्योंकि सिर्फ रहीम ही सभी मतभेदों के बावजूद मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को कायम रखने में ज्यादातर सक्षम साबित होते थे।

महत्त्वाकांक्षा और सत्ता, युद्ध और शांति, छल और बल, क्रूरता और उदारता के नित नए शाही अभ्यास ने न केवल रहीम को एक नामचीन योद्धा बनाया बल्कि उन्हें क्षणभंगुर जीवन का मर्म समझाया और मानवतावादी बनाया। जीवन और व्यक्ति के बारे में उनके गहन चिंतन और मंथन का सार ही उनकी लेखनी ने अवकाश के क्षणों में उकेरा था। विशेषकर सतसई दोहों के रूप में, जनमानस की भाषा में इन्हीं नैतिक कृतियों ने उन्हें हिंदी साहित्य जगत में हमेशा हमेशा के लिए अमर बना दिया।

युद्ध कला और काव्य रचना के अलावा अपने धर्मपिता अकबर के पदचिह्नों पर चलने वाले रहीम के व्यक्तित्व का एक अनछुआ पहलू था उनकी वास्तुकला की अभिरुचि। उनके द्वारा बनवाए गए नए बाग और सुंदर भवन निर्माण के प्रमाण दिल्ली, लाहौर, अहमदाबाद और बुरहानपुर में आज भी मौजूद हैं। अहमदाबाद के पास सरखेज से कुछ दूर पर बने फलेह्बाग, बुरहानपुर के पास बसे नए शहर जहांगीरपुरा और लालबाग जहां से बुरहानपुर जुम्मा मस्जिद तक बनी चार मील लंबी नहर और वजू के लिए फव्वारा इस बात की पुष्टि करते हैं। दिल्ली स्थित खानखाना का मकबरा भी वास्तुकला का एक नगीना हैं, जिसे रहीम ने अपनी देखरेख में 1598 ईस्वी में अपनी प्रिय बेगम माहबानू की याद में बनवाया था।

सोलहवीं शताब्दी के इस स्मारक के अवशेष बताते हैं कि यह इमारत कभी अत्यंत शानदार और बुलंद रही होगी। मुगलकालीन कला और वास्तुकला का कोई सानी नहीं था, तभी यह मकबरा प्रारंभिक मुगल वास्तुकला का शानदार नमूना है। दिल्ली के आंचल पर ऐसे कितने ही चमकदार सितारे टंके हुए हैं, जिनकी रोशनी से इतिहास के पन्ने सदा जगमगाते रहे हैं। वक्त और मौसम की मार सहते हुए भी बीते दिनों के यह अनमोल प्रतीक, अपने अंदर यादों का समंदर समेटे हुए आज भी अडिग प्रहरी की भांति खड़े हैं। जीर्ण अवस्था में आज जो कुछ भी बचा है वह भी कम दर्शनीय नहीं है।

जिंदगी का सफर खत्म करके मौत की नींद सोने वालों को पनाह देता हुआ खानाखाना का मकबरा जिसका निर्माण इस्लाम में मृतकों को दफनाने की चलन की वजह से हुआ था, आज भारतीय कला और संस्कृति का प्रतीक है। भारतीय इस्लामी वास्तुकला की नई शैली के विशिष्ट लक्षणों से युक्त जैसे—एक विस्तृत बाग, खुली कोठरियों की शृंखलाएं, स्तंभयुक्त छतरियों, दुहरे गुंबदों, मेहराबी, खुले प्रवेश द्वारों, पार्श्व मेहराबी प्रकोष्ठों, हुजरा या गुंबदनुमा कक्ष के बीच बना जरीह या स्मारक, पश्चिमी दीवारों में मेहराबें, दक्षिणी मुख्य प्रवेश द्वार और असली कब्र वाला भूमिगत कक्ष या मकबरा, बाहरी दीवारों और गुंबदीय छतों और कक्षों के अंदरुनी हिस्सों में पेड़-पौधों, फूलों तथा ज्यामितिक अरबस्क नमूनों की मनमोहक सजावट, आलंकारिक लिखावट, चित्रमय प्लस्तर, पत्थरों पर कशीदाकारी जैसी बारीक और नाजुक कटाव, दक्ष कारीगरी का यह सुंदर प्रमाण, क्षतिग्रस्त होने के बावजूद रहीम की साहित्यिक कृतियों की तरह अपनी खूबसूरती और बनाने वाले की कलाप्रियता को दर्शाता है।

हरे-भरे उद्यान और अनगिनत हरियाले फूल, पौधों और फलों के बाग में मकबरा बनवाने के लिए इस शानदार जगह का चुनाव करने का कारण शायद जमुना किनारे का प्राकृतिक सौंदर्य तो रहा ही होगा, इसके अलावा हजरत निजामुद्दीन मुहल्ले के पश्चिमी ओर स्थित सूफी संत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह जिनकी मृत्यु 1325 ईस्वी में हुई थी, भी होगी। शायद हुमायूं की बड़ी रानी हाजी बेगम की तरह रहीम भी इस क्षेत्र को पाक मानते थे और इसी कारण अपनी पत्नी को यहां दफनाने का फैसला किया था। हुमायूं के मकबरे के तर्ज पर बनी हुई यह इमारत अनुपात में उससे छोटी होने के बावजूद अपने वास्तविक रूप में बेहद प्रभावशाली थी। ऊंचे चौकोर चबूतरे पर स्थापित यह विशालकाय दुमंजिला मकबरा विभिन्न कोणों से विभिन्न रूप लेता हुआ अपने वृहत्ताकार के बावजूद एक अनोखी नजाकत से भरा है। कोई भी आगंतुक इस शानदार इमारत को चारों तरफ से देखते और चित्रित करते हुए रहीम की कलाप्रियता की दाद दिए बिना नहीं रह सकता। रहीम द्वारा लाए गए कारीगर बेशक कलाकार थे, जिन्होंने रहीम की अभिरुचि को पत्थर में अपने संपूर्ण कौशल से आकार दिया।

वर्तमान में इस स्मारक का प्रवेश द्वार उत्तर दिशा की तरफ है। इस दोमंजिली इमारत के निचले हिस्से में चारों ओर खुली मेहराबी कोठरियां हैं, जिनकी बाहरी दीवारों पर कलात्मक गोलकों में आलंकारिक आलेख और विभिन्न प्रकार के फूलबूटे बने हुए हैं। आलंकारिक आलेख अन्य जगह बेल बूटों वाले डिजाइनों के साथ भी उकेरे गए थे, जिससे वह उसी का हिस्सा लगते थे। लंबे-चौड़े घास के मैदान को पार करने के बाद बाहरी खुले प्रकोष्ठों के किनारे बने रास्ते पर चलते हुए दक्षिण द्वार आता है, जो उस भूतल को जाता है, जहां रहीम और उनकी पत्नी चिरनिद्रा में लीन हैं। नष्ट होने के डर से सलाखों से घेर कर दोनों की असली कब्रों को तालाबंद करके रखा गया है। सीढ़ियां चढ़कर पहली मंजिल पर बने एक विशालाकार छत पर पहुंचा जाता है। यहां से विहंगम दृश्य अत्यंत मनोरम जान पड़ता है।

एक अभूतपूर्व शांति विद्यमान है चारों ओर, जिसे सिर्फ ट्रैफिक का शोर ही यदा-कदा भंग करता है। संभवतः रहीम ने इस जगह का चुनाव इसलिए भी किया था कि कोई उनकी प्रिय बेगम की नींद में खलल न डाले या उन्हें याद करते रहीम के विचारों में भी कोई बाधक न बने। पक्षियों की चहचहाहट, झींगुरों की आवाज, कर्णकटु ट्रैफिक के शोर को दबाकर नेपथ्य का संगीत बनकर उभरने लगती है और ठंडी हवा के झोंके यादों के बादल उड़ाएं लिए आते हैं। लगता है कवि की सोई रूह एक अप्रत्याशित प्रशंसक को सामने पाकर खुद ही अपने जिंदगी के वर्को को पलटने लगी है। जागी आंखों के सामने एक सपना तिरने लगता है और रहीम के जीवन नाटक से धीरे-धीरे पर्दा उठने लगता है।

रहीम पुत्र थे वीर और यायावर तातार जाति के। शौर्य प्रदर्शन के लिए उन्हें खानखाना यानी राजाओं के राजा की उपाधि से नवाजा गया था। 1555 ईस्वी में जब हुमायूं ने दूसरी बार दिल्ली की गद्दी संभाली तो धर्म परिवर्तित राजपूत जमाल खां मेवाती की दो कन्याओं में से बड़ी से खुद और छोटी से बैरम खां की शादी करवाई। रहीम के जन्म के समय बैरम खां की उम्र करीब 60 साल की थी। हुमायूं के आकस्मिक निधन के बाद बैरम खां 13 साल के अकबर के प्रतिशासक और मुगल साम्राज्य के प्रबंधक बने। रहीम का जन्म सन् 1556 में लाहौर में तब हुआ था, जब बैरम खां वहां के अफगान गवर्नर सिकंदर शाह सूरी के उत्पात का दमन करने के लिए पंजाब से चल पड़े थे। बादशाह अकबर पहले से ही अपनी फौजों के साथ लाहौर में डेरा डाले हुए थे। नवागंतुक शिशु को देखकर प्रसन्न अकबर ने उसका नाम अब्दुर्रहीम रख दिया। रहीम इसी नाम का लघु रूप है।

रहीम केवल चार वर्ष के ही थे कि सपरिवार हज के लिए जाते हुए बैरम खां का गुजरात की राजधानी पाटन में अफगान सरदार मुबारक लोहानी ने कत्ल कर दिया। इस दुर्घटना की खबर पाते ही अकबर ने रहीम और बैरम खां की पत्नी सुल्ताना बेगम को फौरन आगरा वापस बुला लिया। रहीम को अपने वालिद की कमी महसूस न हो और उसकी परवरिश में कमी न हो, इसके लिए कुछ अरसे बाद अकबर सुल्ताना बेगम से शादी करके रहीम के धर्म पिता बन गए। ठीक वैसे ही जैसे बैरम खां कभी अकबर के धर्म पिता बने थे। अकबर अपने सौतेले पुत्र को फरजंद कहकर पुकारते थे और बेहद चाहते थे। रहीम को उनकी पहली उपाधि 'मिर्जा खां' से अकबर ने ही नवाजा था।

पिता से कुशाग्रता, वीरता, उदारता, साहित्यिक अभिरुचि, कूटनीति और स्वामिभक्ति तथा मां से राजपूती शौर्य और धार्मिक सहिष्णुता रहीम को विरासत में मिली थी। लेकिन असल में उनका बौद्धिक, आत्मिक और राजनीतिक विकास अकबर की छत्रछाया में हुआ। अकबरी दरबार में जहां विद्वता, साहित्य और कला को बेमिसाल तरजीह मिलती थी, रहीम की पहली पाठशाला बनी। प्रबुद्ध अकबर की निगरानी में रहीम की इस्लामी तालीम और फौजी प्रशिक्षण दोनों शुरू हुए। अंदिजान के मशहूर विद्वान मुल्ला मोहम्मद अमीन की सहायता से रहीम ने अरबी, फारसी और तुर्की में महारत हासिल की। अकबर का शासनकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णिम युग था। हिंदी कवियों और पंडितों की संगत में रहीम ने संस्कृत और हिंदी पर मजबूत पकड़ बनाई और बहुभाषाविद बन गए। हिंदू भक्ति साहित्य के अंतर्गत तुलसी की रामभक्ति, सूरदास की कृष्णभक्ति और कबीर के धार्मिक समभाव का गहन ज्ञान रखने वाले रहीम सच्चे मुसलमान थे, जिनके रहीमी, करीमी और सलारी नामक तीन जहाज सूरत की बंदरगाह में हाजियों को मुफ्त में मक्का ले जाने के लिए तैयार खड़े रहते थे। इस प्रकार अकबर की उदार धर्मनिरपेक्ष नीति के साए में रहीम की कला परवान चढ़ी और कालजयी बनी। सुप्रसिद्ध कवि दिनकर का कहना यथार्थ है कि अकबर ने दीन-ए-इलाही में हिंदुत्व को जो स्थान दिया होगा रहीम ने कविताओं में उसे उससे भी बड़ा स्थान दिया। प्रत्युत यह समझना अधिक उपयुक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं, जो धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।

रहीम की शादी अकबर ने अपनी धाय माहम अनगा की बेटी माहबानू से करवाई थी। कालांतर में रहीम सात बच्चों के पिता बने। उनके पुत्र इरीज खां और दाराब खां रहीम की भांति ही वीर योद्धा थे। रहीम के साथ दक्षिण में युद्ध करते हुए उन्होंने कई बार शत्रुओं पर अद्भुत विजय प्राप्त की थी, जिसके लिए उन्हें शाही सम्मान, ओहदों, उपाधि और जागीरों से नवाजा गया था।

रणकौशल दिखाने का पहला मौका रहीम को 17 साल की आयु में गुजरात में मिला। तब से लेकर जीवन के अंत तक जब-जब विद्रोहियों का दमन करने उन्हें भेजा

गया अधिकांशतः उन्होंने सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित किए। मुहम्मद हुसैन मिर्जा और इख्तिआरुल मुल्क हब्शी के विद्रोह का प्रतिरोध करने गए अकबर ने सेना के मध्य भाग की कमान जिसे सिर्फ सुल्तान-ए-लश्कर ही संभालते थे, रहीम को सौंपा। अपने बेपनाह साहस और युद्धकला का परिचय देते हुए रहीम ने दुश्मनों को जबरदस्त मात दी। अकबर ने रहीम को पाटन की जागीर अता की। 1576 ईस्वी में उन्हें गुजरात का गवर्नर बना कर चार हजार का मंसब प्रदान किया। लेकिन रहीम गुजरात में ज्यादा दिन नहीं टिक पाए। 1578 ईस्वी में राणा प्रताप के खिलाफ शाहबाज खां के नेतृत्व में चलाई गई शाही मुहिम का हिस्सा बन कर मुगल फौजों की सफलता का कारण बने और राणा को एक बार फिर भागने पर मजबूर कर दिया।

1580 ईस्वी में रहीम को 'मीर-ए-अर्ज' का पहला प्रशासकीय पद प्रदान किया गया जो मुगल साम्राज्य के चार महत्त्वपूर्ण पदों में से एक था और जिसे एक विश्वस्त व्यक्ति ही संभाल सकता था। 1582 ईस्वी में उन्हें तेरह वर्षीया शाहजादा सलीम के अतालिक अर्थात् संरक्षक का भार भी सौंपा गया। 1584 ईस्वी में अहमदाबाद के पास सरखेज के मैदान में रहीम ने अपने अद्भुत रणकौशल और सूझबूझ से गुजरात के शासक मुजफ्फर हुसैन शाह तृतीय को उसकी बड़ी सेना के बावजूद, अपने विशाल हाथियों खासकर शेरमार के पीठ पर लदी हथनालों या बंदूकों, सेना के साथ अकबर के आने की झूठी अफवाह फैलाकर और सैनिक टुकड़ियों का समुचित उपयोग करके करारी मात दी। इस अद्भुत विजय द्वारा मुगल साम्राज्य का गुजरात पर आधिपत्य कायम रखने के लिए रहीम को खानखाना की उपाधि और पंचहजारी का मंसब प्रदान किया गया।

अगले तीन वर्ष तक शांति बनी रही। रहीम अपनी काव्य रचना में रम गए। इसी दौरान उन्होंने बाबर की आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया। इससे प्रसन्न होकर अकबर ने 1589 ईस्वी में रहीम की नियुक्ति राजा टोडरमल की मृत्यु के उपरांत रिक्त वकील के पद पर की जो बादशाह के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पद माना जाता था। रहीम को जौनपुर की जागीर भी अता की गई। 1591 ईस्वी में सिंध और 1597 ईस्वी में आष्टी विजय, खानखाना के सामरिक जीवन की कुछ शानदार उपलब्धियां थीं। लेकिन दक्षिण अभियान में शामिल शाहजादा मुराद के साथ मतभेद के कारण रहीम को वापस लाहौर बुला लिया गया। अपने बेटे से हुए मनमुटाव के कारण असंतुष्ट अकबर की अवहेलना के कारण दरबार में रहीम का दिल नहीं लगता था। उन्हें यह भी लगता था कि उनके अच्छे दिन खत्म हो गए हैं। 1598 ईस्वी में पहले पुत्र हैदरी की आग लग जाने से मृत्यु और उसके तीन दिन बाद माहबानू के इंतकाल ने इस तथ्य को उजागर कर दिया। 1599 ईस्वी में अकबर के नेतृत्व में अपने दामाद शाहजादा दानियाल के साथ शनार अहमदनगर फतह ने रहीम के घायल मन पर मरहम का काम किया। लेकिन 1604 ईस्वी में दानियाल तथा 1605 ईस्वी में धर्म पिता अकबर की मृत्यु ने एक बार फिर रहीम को तोड़ कर रख दिया।

अकबर और सलीम की अनबन में अकबर का साथ, शराब और नूरजहां के प्रेम में डूबे जहांगीर की बादशाहत का विरोध, बागी शाहजादा खुर्रम को पहले सहयोग और बाद में विरोध, दक्षिण के अभियानों की विषमताएं, मुगल दरबार के षड्यंत्र और कुछ गलत सामरिक फैसलों के कारण 1610 ईस्वी में निजामशाही अमीर मलिक अंबर के साथ की गई अपमानजनक संधि ने, सम्मान के शिखर पर बैठे रहीम को सहसा राजद्रोही बना दिया। जीवन के बाकी दिन सत्ता और समृद्धि खोकर रहीम को उपेक्षा के साए में बिताने पड़े। इस काल में रहीम ने काव्य रचना में मन की शांति पाई। मतभेदों के बावजूद जहांगीर के शासनकाल में दक्षिण में 1616 ईस्वी में रौशनगांव की अभूतपूर्व जीत और 1617 ईस्वी में रहीम के सहयोग से शाहजादा खुर्रम का कूटनीतिक समझौतों के द्वारा शांति स्थापित करना, एक बार फिर रहीम के लिए शाही सम्मान का कारण बना। खुर्रम ने रहीम को खानदेश, बरार और अहमदनगर का वाइसराय बना दिया। 1618 ईस्वी में जहांगीर ने रहीम को बहुमूल्य तोहफों के अलावा सात हजारी मंसब भी प्रदान किया।

1619 ईस्वी से रहीम का अधःपतन फिर से शुरू हो गया। उनके बड़े पुत्र इरीज खां जिसे शाहनवाज खां की उपाधि मिली थी, की मृत्यु 33 वर्ष की आयु में अत्याधिक शराब पीने के कारण हो गई। उनका तीसरा पुत्र रहमानदाद भी दक्षिण से भाई दाराब खां की मदद करके लौटते हुए ठंड लग जाने के कारण मर गया। 1622-26 ईस्वी में बागी खुर्रम के खिलाफ चलाए गए शाही अभियान में सहयोग करने की कीमत रहीम को अपने पौत्रों और पुत्र दाराब खां की जान से चुकानी पड़ी। 1625 ईस्वी में शाहजादा परवेज की पहल पर जहांगीर ने अपने पुराने शिक्षक को उनका ओहदा, उपाधि, कन्नौज के पास नई जागीर और एक लाख रुपए नकद देकर माफ कर दिया। 1626 ईस्वी में खुर्रम ने नूरजहां से समझौता कर लिया लेकिन मुगल साम्राज्य के सबसे पराक्रमी और प्रभावशाली राजनीतिज्ञ महाबत खां जो शाहजादा परवेज को बादशाह बनाना चाह रहे थे, उन्हें रोकना नूरजहां के लिए जरूरी हो गया था क्योंकि वह शाहजादा शहरियार को बादशाह बनाना चाहती थी।

शोकग्रस्त रहीम को ढलती उम्र में एक बार फिर मुगल साम्राज्य के सबसे प्रभावशाली कूटनीतिज्ञ महाबत खां से लोहा लेने के लिए तलब किया गया। शाही खजाने से बारह लाख रुपए रहीम को देकर उन्हें इस अभियान के लिए तैयार किया गया। मुगल शासन के प्रति अपनी वफादारी साबित करने के लिए नूरजहां के आदेश पर लाहौर से कूच करने

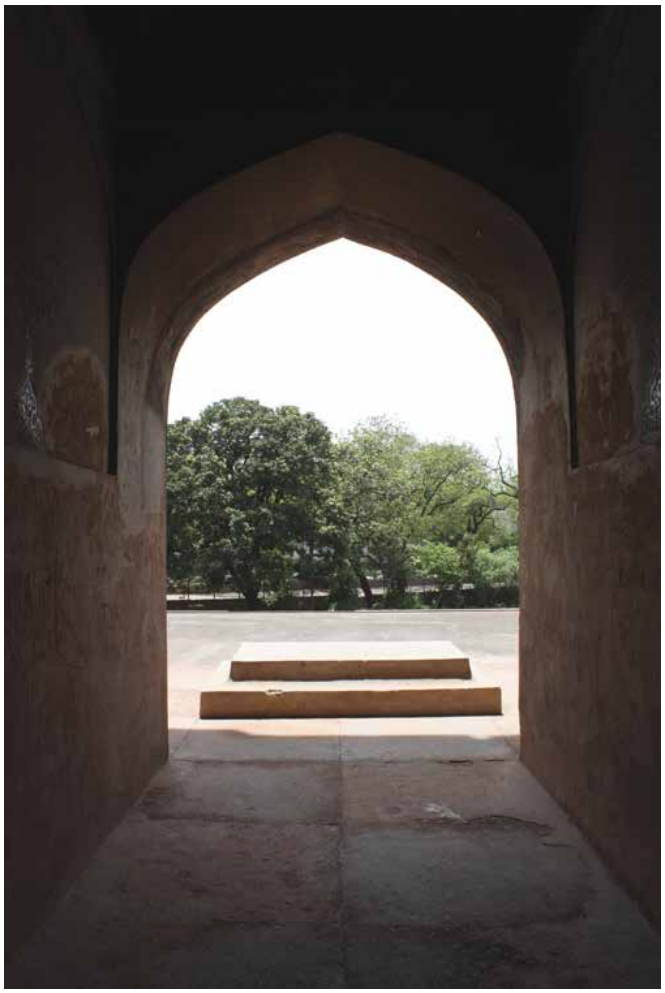

(पहली मंजिल पर पश्चिमी दिशा में बने माहबानू की असली कब्र का अक्स)

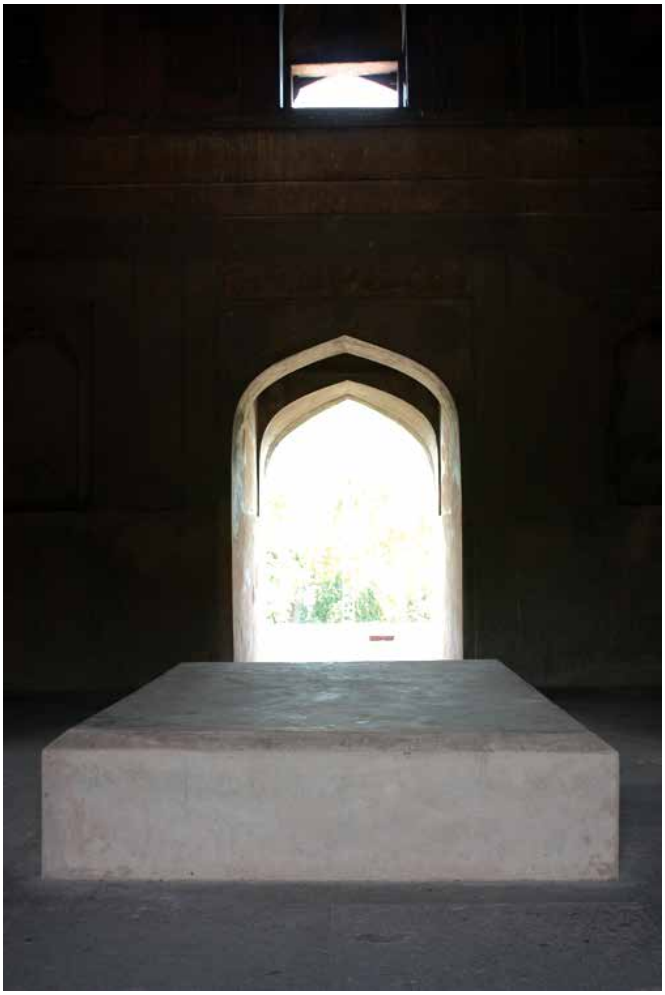

(केंद्रीय कक्ष में बना रहीम के कब्र का सादा अक्स)

से पहले ही रहीम बीमार पड़ गए। इलाज के लिए रहीम को दिल्ली लाया गया लेकिन इससे कोई फायदा नहीं हुआ। 1627 ईस्वी में रहीम की कठिन जीवन यात्रा 72 साल की आयु में समाप्त हो गई। अपनी मौत से दो साल पहले 1625 ईस्वी में माहबानू के मकबरे से कुछ ही दूरी पर रहीम ने अपने विश्वस्त परिचारक फहीम खां के लिए नीला गुंबद नाम का एक शानदार मकबरा बनवाया था जिसे आज भी देखा जा सकता है। जीर्ण अवस्था में भी पत्थर की इस इमारत पर चढ़ाए गए प्लस्तर पर चीनी मिट्टी की रंगबिरंगी विशेषकर नीली टाईलों की सजावट अनुपम है। बाहर से अष्टभुजाकार और अन्दर से चौकोर इस इमारत की अंदरुनी छत पर रंगीन चित्रमय प्लस्तर की सज्जा भी अत्यंत मनोहारी है। वक्त और किस्मत ने साथ दिया होता तो कलाप्रेमी रहीम अपनी वास्तुकला के शौक को और परवान चढ़ाते, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अपने सेवकों के लिए भी भव्य स्मारक का निर्माण करवाने वाले रहीम के पास अपने लिए अलग से एक स्मारक बनवाने का सामर्थ्य शायद नहीं था। माहबानू की याद में रहीम ने जो शानदार मकबरा बनवाया था, उसी मकबरे में उन्हें भी दफना दिया गया। जीवन के हमसफर यों मौत में भी हमसफर बने। प्रेम और श्रद्धा से बनाए गए इस स्मारक ने न केवल रहीम के पार्थिव शरीर को पनाह दी, बल्कि आज भी उनकी याद को अक्षुण्ण रखे हुए हैं।

मकबरे के विशाल केंद्रीय कक्ष में दाखिल होते हुए कहीं न कहीं लगता है, जैसे भावजगत में खोए किसी मनीषी के चिंतन प्रक्रिया में बाधा बनकर उपस्थित हुई हूं। लेकिन उस सुकवि का सान्निध्य प्राप्त करने का कोई और चारा भी तो नहीं। कागज के पन्नों से निकलकर ईंट और गारे में समाई कुछ अनुभूतियों का एहसास जैसे अपने आप ही होने लगता है। कभी अभूतपूर्व चित्रमय पलस्तर और नक्काशी से सजा था यह कक्ष। आज मुख्य गुंबदीय छत के अंदरूनी हिस्से में आठ छोटे नक्काशीदार फूलदार बूटों से घिरा एक बड़ा नक्काशीदार गोलक ही नजर आता है। ऐसी ही शानदार सजावट के अवशेष निचली दीवारों पर भी कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। सादा दिखने वाले फलकनुमा मेहराबों पर भी कभी यही मनमोहक अलंकरण किया गया था, जिसका कुछ प्रमाण कोने के खुले मेहराबी प्रकोष्ठों में विद्यमान है। लगता है पत्थर में नहीं मोम में नक्काशी की गई है। ऊंची

छत वाले इस कक्ष का निर्माण इस तरह किया गया था कि यह हमेशा ठंडा बना रहे। इसी छत के नीचे एक विशालकाय सादा कब्र है, जो तहखाने में ठीक इसी के नीचे बनी रहीम की असली कब्र का अक्स मात्र है। इमारत के पश्चिमी भाग में माहबानू की कब्र का अक्स इसी प्रकार दिखाई देता है, जबकि उनकी असली कब्र भी भूमिगत है। छत की चारों दिशाओं में चार दुमंजिले ऊंचे, खुले और गहरे मध्यवर्ती मेहराबी द्वार हैं और इनके पार्श्व में अनेक उथले मेहराब हैं जो ऊपरी विशाल दुहरे गोल गुंबद का भार संभाले हुए हैं।

उत्तर मुगल काल 1753-54 ईस्वी में सूबेदार और मुगल शासकों के वजीरे आजम मिर्जा अबुल मंसूर खां सफदरजंग जो सारी प्रशासकीय और सामरिक सत्ता के केंद्र थे, के मकबरे के निर्माण के लिए रहीम के इस मकबरे की दीवारों से कई तरह के पत्थर, विशेषकर लाल बलुआ पत्थर और बहुमूल्य सफेद संगमरमर की पट्टियां जिनके लाल पत्थर के आकार को हुमायूं के मकबरे की तरह कलात्मक ढंग से और भी उभारा गया था, उखाड़ लिए गए। महादानी रहीम जो बिना मांगे दान देते थे, दुर्दिन में ऋण लेकर भी जो याचक की खाली झोली भरते थे, उन्हें यह जबरदस्ती का लेना भी नहीं अखरा होगा, क्योंकि दूसरों के काम आना ही उनकी आंतरिक प्रेरणा और सिद्धांत थे।

''तबहीं लौ जीबो भले,
देबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गत,
उचित न होय रहीम।।''

इन पत्थरों का आवरण हटने से यह बुलंद स्मारक धीरे-धीरे खंडहर होने लगी और अब ईंट और गारा साफ दिखाई देते हैं। खूबसूरत नक्काशी और आलंकारिक आलेख भी प्रायः नष्ट हो चुके हैं। छत के ऊपर बना सफेद संगमरमर का दुहरा गोल गुंबद जो कभी इस इमारत की शान था अब सिर्फ ईंटों का ढांचा मात्र रह गया है, जिसके इर्द-गिर्द कुछ अनावृत अष्टभुजाकार स्तंभयुक्त छत्रियां खड़ी हैं। कहीं-कहीं टूटी मेहराबी खिड़कियां और तिकोने और चौकोर वातायन भी दिखाई देते हैं। पश्चिमी और उत्तरी मुख्य द्वार पर बचे हुए अलंकरण में सितारों और गोलकों में उकेरे फूल और ज्यामितिक डिजाइन उत्कृष्ट कलाकारी के नमूने हैं। बाहर छत के चारों तरफ छोटे-बड़े चौकोर, अष्टकोण और गोलाकार हौज देखे जा सकते हैं। इनमें संभवतः कभी फव्वारा रहा होगा या फिर इनमें कमल और कुमुदिनी उगाई जाती होंगी। अब सूरज की तपन से सूखे इन हौजों में पेड़-पौधे धूप-छांव का खेल खेलते हुए अपनी परछाई बिखेरते हैं। सूर्यास्त के बाद जब रात अपनी सितारों भरी चादर फैलाती है, तो ठंडी चांदनी दिन भर की जलन को सोख लेती है। वर्षा की रिमझिम फुहारें और शरद ऋतु का रेशमी कोहरा कवि दंपत्ति की रूहों को अलग-अलग तरह से सुकून पहुंचाते हैं।

निजामुद्दीन जैसी प्रतिष्ठित कालोनी में और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संरक्षण में होने के कारण यह महत्त्वपूर्ण इमारत काफी हद तक सुरक्षित है। विरासत यात्राओं पर लोगों को खास कर बच्चों को लाकर इंटऐक और उसके जैसी दूसरी संस्थाएं अपने ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण के लिए जो जागरूकता फैला रही हैं, वह सराहनीय हैं। वापस लौटते हुए सिर्फ रहीम की ही वाणी कानों में गूंजती रहती है। हिंदी और हिंदुस्तान के कायल, इनसानियत ही जिनका मजहब था, भावपूर्ण कविता, सुंदर चित्रकारी और मधुर संगीत के रसिया, नीतिकाव्यों के जनक, करुण राग-रागिनी सुनकर आंखें नम करने वाले रहीम कितने अनमोल और महान थे, यह उन्हीं की जुबानी सुनिए–

''बड़े बड़ाई ना करे,
बड़े ना बोले बोल।
रहिमन हीरा कब कहे,
लाख टका मेरा मोल।।''

रहीम खुद एक हीरा थे जो आज भी भारतीय साहित्य जगत को चमका रहे हैं। तलवार और कलम दोनों के धनी, सिपहसालार रहीम, युद्ध से ज्यादा अपने मानवतावादी संदेशों के लिए जाने जाते हैं। इसीलिए कुशल राजनीतिज्ञ और बहादुर योद्धा रहीम को लोग भूल सकते हैं पर जनमानस का मन मोहने वाले, संवेदनशील, उदार, प्रतिभावान, साहित्यिक, सहिष्णु, अद्‌भुत कवि रहीम को कभी नहीं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. रहीम : डॉ. समर बहादुर सिंह, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
2. दिल्ली और उसका अंचल : वाई.डी. शर्मा, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली।
3. अकबरनामा : भाग-2, अबुल फजल।
4. रहीम रत्नावली : मायाशंकर याज्ञिक।
5. खानखानानामा : मु. देवीप्रसाद।
6. रहीम सतसई में बिंब योजना : आलो रंजन पांडेय, हस्ताक्षर प्रकाशन, दिल्ली।
7. मोनुमेंट्स ऑफ डेल्ही : हिस्टोरिकल स्टडी : आर. नाथ, अंबिका प्रकाशन।

सी-897-डी, सुशांत लोक-1,
गुड़गांव-122002 (हरियाणा)

साहित्य सृजन में रहीम की भूमिका

अशोक कुमार जाजोरिया

अब्दुर्रहीम खानखाना मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति के प्रतिनिधि कवि थे। मुगल सम्राट जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर के दरबार के हिंदी कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। रहीम स्वयं भी कवियों के आश्रयदाता थे। इनका व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न था तथा वे एक साथ कई विधाओं से परिपूर्ण थे, जिनमें वे सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, कलाप्रेमी, बहुभाषी, कवि और विद्वान् थे। रहीम भारतीय सामासिक संस्कृति के अद्वितीय आराधक, कलम और तलवार के धनी तथा मानव प्रेम के सूत्रधार थे। इनका जन्म माघ कृष्ण पक्ष गुरुवार, सन् 1556 में हुआ था। जब ये कुल पांच वर्ष के ही थे, तब ही गुजरात के पाटन नगर में इनके पिता की हत्या कर दी गई। उसके पश्चात् इनका पालन-पोषण स्वयं मुगल सम्राट जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर की देख-रेख में हुआ। रहीम का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। बचपन में ही इन्हें पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा। 42 वर्ष की अवस्था में इनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। इनकी पुत्री विधवा हो गई थी। इनके तीन पुत्र असमय ही चले गए। आश्रयदाता और सम्राट शहंशाह अकबर की मृत्यु भी इनके सामने ही हुई, जो रहीम के लिए बहुत दुःखद समय था। इन्होंने यह सब कुछ शांत भाव से सहन किया, जिसका वर्णन इनके नीति के दोहों में कहीं-कहीं जीवन की दुःखद अनुभूतियों के रूप में देखने को मिलता है। सन् 1627 में इनकी मृत्यु हो गई।

मुगल सम्राट अकबर ने ही रहीम की शिक्षा-दीक्षा शहजादे की तरह करवाई। बारह वर्ष की आयु में ही उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली रूप में उभरने लगा था। अकबर ने भी उनसे प्रभावित होकर शहजादों को प्रदान की जाने वाली उपाधि 'मिर्जा-खां' से रहीम को संबोधित करना शुरू कर दिया। रहीम ने तुर्की और अरबी भाषा सीखी तथा छंद, रचना, कविता, गणित, तर्कशास्त्र और फारसी व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया। अकबर ने ही रहीम को अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा का ज्ञान भी प्राप्त करने को कहा। इसी तरह संस्कृत का ज्ञान भी उन्हें अकबर की शिक्षा व्यवस्था से मिला। काव्य रचना, दानशीलता, राग संचालन, वीरता और दूरदर्शिता आदि गुण उन्हें अपने माता-पिता से संस्कार में मिले थे।

रहीम के सृजनात्मक व्यक्तित्व ने हिंदी साहित्य जगत में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मुगल सम्राट अकबर स्वयं हिंदुस्तान की मिली-जुली संस्कृति के निर्माताओं में से एक थे, जिसकी रहीम पर भी गहरी छाप थी। मुस्लिम धर्म के होते हुए भी उन्होंने अपनी काव्य रचना द्वारा हिंदी साहित्य की सेवा करके एक नई उपलब्धि हासिल की। रहीम ने अनेक प्रसिद्ध रचनाओं का सृजन किया है, जिन्हें उन्होंने दोहों के रूप में लिखा। इनमें नीतिपरक दोहों का विशेष संदर्भ उपलब्ध होता है। इनकी रचनाओं में—'रहीम दोहावली' या 'सतसई', 'बरवै नायिका भेद', 'शृंगार', 'सोरठा', 'मदनाष्टक', 'रास-पंचाध्यायी', 'नगर शोभा', 'फुटकर बरवै', 'फुटकर छंद तथा पद', 'फुटकर कवित्व', 'सवैये', 'संस्कृत काव्य' सभी प्रसिद्ध हैं। इनका काव्य इनके सहज उद्गारों की अभिव्यक्ति है, जिनका इनमें एक लंबा अनुभव निहित है। उनके दोहों में भक्ति, नीति, प्रेम, लोक व्यवहार आदि का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। इनके तीन ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं—'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिका' और 'नगर शोभा' है, जिनकी कुछ पंक्तियां निम्नवत् हैं—

1. ''जे गरीब पर हित करैं,
हे रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो,
कृष्ण मिताई जोग।।''

2. ''बड़े कान ओछो करै,
तो न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को,
गिरिधर कहे न कोय।।''

भक्तिकाल हिंदी साहित्य में रहीम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत, हिंदी आदि का गहन अध्ययन किया। वे राजदरबार में अनेक पदों पर कार्य करते हुए भी साहित्य सेवा में लगे रहे। रहीम का व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली था। वे स्मरण शक्ति, काव्य और संगीत के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपनी कविताओं में अपने लिए रहीम के बजाए रहीमन का प्रयोग किया तथा इतिहास और काव्य जगत में अब्दुर्रहीम खानखाना के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके काव्य में नीति, भक्ति, प्रेम तथा शृंगार आदि दोहों का समावेश है। रहीम ने अपने अनुभवों को सरल और सहज शैली में मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उन्होंने ब्रज भाषा, पूर्वी अवधी और खड़ी बोली को अपनी काव्य भाषा बनाया, किंतु ब्रज भाषा उनकी मुख्य शैली थी। गहरी से गहरी बात भी वह बड़ी सरलता से सीधी-साधी भाषा में

कहते थे। भाषा को सरल और मधुर बनाने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग उनकी रचना में अधिक मिलता है। रहीम अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिंदी के अच्छे जानकार थे तथा हिंदू संस्कृति से वे भली-भांति परिचित थे। इनकी नीतिपरक उक्तियों पर संस्कृत कवियों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। वस्तुतः इनकी कई रचनाएं साहित्य जगत में प्रसिद्ध हैं। दोहों में ही रचित इनकी एक स्वतंत्र कृति 'नगर शोभा' है। इसमें 142 दोहे हैं, जिनमें विभिन्न जातियों की स्त्रियों का शृंगारिक वर्णन है। रहीम अपने बरवै छंद के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा में नायिका-भेद का सर्वोत्तम ग्रंथ है। इसमें भिन्न-भिन्न नायिकाओं के केवल उदाहरण दिए गए हैं। रहीम ने 'वाकेआत बाबरी' नाम से बाबर लिखित आत्मचरित का तुर्की से फारसी में भी अनुवाद किया था। रहीम के काव्य का मुख्य विषय शृंगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गंगा संबंधी भक्ति-भावमयी रचनाएं वैष्णव भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर लिखी गई हैं।

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने फारसी में अनेक कविताएं लिखीं। 'खेट कौतुक जातक' नामक ज्योतिष ग्रंथ है, जिसमें फारसी और संस्कृत शब्दों का अनूठा मेल है। रहीम के जीवन में आने वाली कटु-मधुर परिस्थितियों ने इनके हृदय-पटल पर जो बहुविध अनुभूति रेखाएं अंकित कर दी थीं, उन्हीं के अकृत्रिम अंकन में इनके काव्य की रमणीयता का रहस्य निहित है। रहीम-काव्य के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें 'रहीम-रत्नावली', 'रहीम-विलास' प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'रहिमन विनोद', 'रहीम कवितावली', 'रहीम', 'रहिमन चंद्रिका', 'रहिमन शतक' आदि संग्रह भी उपयोगी हैं। 'खानखाना' रहीम ने जिंदगी के ऊंच-नीच को काफी नजदीक से देखा-परखा था। यही वजह है कि प्रत्येक दोहे में उनकी आपबीती परिलक्षित होती है—

''रहिमन मोम तुरंग चढ़ि,
चलिबो पावक मांहि।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन,
सब कोउ निबहत नांहि।।
××× ××× ×××
रहिमन याचकता गहे,
बड़े छोटे हैं जात।
नारायण हूं को भयो,
बावनआंगुर गात।।
××× ××× ×××
रहिमन वित्त अधर्म को,
जरत न लागै बार।
चोरि करि होरी रची,
भई तनिक में छार।।
××× ××× ×××
समय लाभ सम लाभ नहिं,
समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी,
समय चूक की हूक।।''

रहीम की हिंदी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास से मित्रता थी। जब तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की तो रहीम ने ''हिंदुआन को वेद सम, तुरुकहिं प्रगट कुरान'' कहकर उसकी प्रशंसा की और यह स्वीकार किया कि यह हिंदुओं के लिए वेद है और मुसलमानों के लिए कुरान है। रहीम की रचना 'बरवै नायिका भेद' संबंधी ग्रंथों में सबसे प्राचीन है। अवधी भाषा में रचित रहीम के बरवों से ही तुलसीदास को 'बरवै रामायण' रचने की प्रेरणा मिली।

रहीम के आस-पास हिंदी कवियों का जमावड़ा लगा रहता था और वे उनको पुरस्कृत भी करते रहते थे। इनमें हिंदी कवि गंग को एक छंद पर सर्वाधिक राशि भी प्राप्त हुई। इसलिए इनकी दानशीलता और उदारता लोकाख्यान बन गई थी। हिंदी-फारसी के कवियों ने रहीम की प्रशंसा की, जिनमें केशवदास, गंग, मंडन, हरिनाथ, अलाकलि बेग, उरफी नज़ीरी, हयाते जिलानी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रहीम दान देते समय आंख उठाकर ऊपर नहीं देखते थे। याचक के रूप में आए लोगों को बिना देखे वे दान देते थे। गंग कवि और रहीम के बीच इस संबंध में हुआ संवाद प्रसिद्ध है। गंग कवि ने रहीम से पूछा—

''सीखे कहाँ नवाबजू,
ऐसी दैनी देन।
ज्यों कर ऊँचा कियौ,
ज्यों त्यों नीचे नैन।।''

रहीम ने गंग कवि की बात का उत्तर बड़ी विनम्रतापूर्वक दिया

''देनदार कोऊ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर करें,
याते नीचे नैन।।''

रहीम की कविताओं में हिंदू देवता शिव, विष्णु और हिंदुओं में पूज्य मानी जाने वाली गंगा का श्रद्धापूर्वक किया गया वर्णन भी मिलता है—

''अच्युततरंगिणी-चरण,
शिवमाला-मालति-सिर-
हरि न बनायो सुरसरी,
कीजो इंदवभाल।।''

रहीम ने अपनी कविताओं में श्रीकृष्ण की भक्ति को विषय बनाया है। उन्होंने श्रीकृष्ण को पूरा काव्य अर्पित किया। उन्होंने बड़ी सहजता के साथ श्रीकृष्ण के विरह के चित्र खींचे हैं। इससे उनकी श्रीकृष्ण के प्रति गहरी आस्था की झलक मिलती है। रहीम कहते हैं कि उसका मन चकोर की तरह है, जिसका ध्यान हमेशा अपने प्रेमी इष्ट चांद की ओर लगा रहता है। उसी प्रकार उनका मन भी हमेशा अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण की ओर ही लगा रहता है—

''तैं रहीम मन आपुनो,
कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै,
कृष्णचंद्र की ओर।।''

रहीम को श्रीकृष्ण की जीवन लीलाओं और उनके प्रेम की गहरी जानकारी थी। इसका अनुमान उनके बारे में प्रसिद्ध इस कहानी से

लगाया जा सकता है कि एक बार तानसेन ने अकबर के दरबार में एक पद गाया–

''जसुदा बार बार यों भाखै।
है कोउ ब्रज में हितू,
हमारो चलत गोपालहिं राखै।।''

उपर्युक्त पद से रहीम की साहित्यिक प्रतिभा का तो पता चलता ही है कि वे हिंदुस्तानी रंग में कितने अधिक रंगे हुए थे। उनका श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम किसी कृष्ण भक्ति के कवि से कम नहीं हैं। रहीम की कृष्ण के प्रति गहरी अनुरक्ति से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रहीम हिंदू और मुस्लिम को जोड़ने वाली कड़ी थी। इसी कारण इनका जीवन सांप्रदायिक सद्भाव और एकता की भी एक मिसाल है।

रहीम ने संस्कृत के श्लोक श्रीकृष्ण, राम और गंगा को संबोधित किए हैं। ये तीनों हिंदुओं के परम आदरणीय हैं। रहीम ने इनका वर्णन करके हिंदू-मुस्लिम एकता की नींव को मजबूत किया। कृष्ण को संबोधित श्लोक में तो रहीम अपने हृदय के गहन अंधकार में माखनचोर श्रीकृष्ण को छिप जाने का निमंत्रण देते हैं।

''नवनीतसारमपहृत्य शंकया
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम घनांधतामसे
नंदनंदन कथे न लीयसे।।''

''रहिमन धोखे भाव से,
मुख से निकसे राम।
पावन पूरन परम गति,
कामादिक को धाम।।''

रहीम ने अपनी रचनाओं में हिंदू देवी-देवताओं और उन चीजों का बहुत अधिक प्रयोग किया जिनको हिंदू धर्म में आदर से देखा जाता है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय हिंदू-मुसलमान आपस में कितने गहरे जुड़े हुए थे तथा एक-दूसरे के विश्वासों को जानना-समझना चाहते थे।

''भज मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीन बंधु दुख टारन, कौसलाधीस।।''

रहीम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि रहीम ने अपने उदार और ऊंचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर अपने काव्य में संवेदना प्रकट की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदीभाषी भू-भाग में सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं। इसका कारण है जीवन की परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। रहीम के दोहे वृंद और गिरधर के पद्यों के समान नीति पद्य नहीं हैं। उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर एक सच्चा हृदय झांक रहा है। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी, वही जनता का प्यारा होगा। लोक अनुभव उनके काव्य की पूंजी है। जिसको उनके दोहे अपने में समेटे हुए हैं–

''अब रहीम मुश्किल पड़ी,
गाढ़ दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं,
झूठे मिले न राम।।''

''काज परै कछु और है,
काज सरै कछु और।
रहिमन भंवरी के भए,
नदी सिरावत मौर।।''

परिणामस्वरूप रहीम का काव्य इनके सहज उद्गारों की अभिव्यक्ति है तथा इन उद्गारों में उनका दीर्घकालीन अनुभव निहित है। उन्होंने अपने जीवन में बहादुरी से युद्ध किए और उल्लेखनीय विजय प्राप्त की। वे युद्धों की योजना तथा रणनीतिक व्यूहरचना में पारंगत थे। लेकिन गौर करने की बात है कि उनकी कविता में न तो युद्धों को महिमामंडित किया गया है और न ही युद्धों का वर्णन है। जीवन में तो युद्धों ने कभी पीछा नहीं छोड़ा, लेकिन उनकी कविता से लगभग गायब है। प्रेम, सद्भाव व जन-व्यवहार ही उनकी कविता की केंद्रीय विषयवस्तु है। रहीम की कविताओं का प्रेम न तो रीतिकाल के कवियों की तरह वासना से परिपूर्ण है और न ही भक्तिकाल के कवियों की तरह उसमें पराभौतिक बिंब है।

अतः रहीम का व्यक्तित्व विभिन्न विधाओं से परिपूर्ण, जिनमें साहित्य सृजन प्रमुख है, अपने आप में अलग मुकाम रखता है। एक ही व्यक्तित्व अपने अंदर कवि, वीर सैनिक, कुशल सेनापति, सफल प्रशासक, आश्रयदाता, गरीबों का मसीहा, विश्वास पात्र, नीति कुशल नेता, महान् साहित्यकार, विविध भाषाविद्, उदार कला पारखी जैसे अनेकानेक गुणों को अपने में समेटे हुए हैं, वह केवल अनुपम और महत्त्वपूर्ण ही नहीं बल्कि अद्वितीय है।

रहीम और दादू की ईश्वरोन्मुख प्रेम भावना

वीरेंद्र कुमार सिंह

भारत एक प्राचीन और संत-मुनियों का देश है। यहां की संस्कृति के विकास और उत्कर्ष में भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। हमारे साहित्य, संगीत एवं विविध कलाओं पर भक्ति रस की अमिट छाप है। इतिहास के महत्त्वपूर्ण युगों में जिनमें मनुष्य ने अपनी आत्मा की उच्चतम शक्तियों को प्रकट किया है, आध्यात्मिक एवं नैतिक व्यवस्था में तथा मानव आत्मा की अमरता एवं मानवीय गुणों की अविनाशशीलता में जो उस परमशक्ति पर शाश्वत तथा सर्वशक्तिमयी है, आधारित है। भारत की भूमि ने मानव समाज को समय-समय पर सर्वस्व समर्पण करने वाले अनेक महापुरुषों को पैदा कर आध्यात्मिक संदेश दिया है। अकबर के विख्यात सहकारी उत्साही और अनुरागी विद्वान अब्दुर्रहीम खानखाना के साथ मुगलशासन काल के बहादुर योद्धा, कुशल राजनीतिक नेता तथा भारतीय सांस्कृतिक समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करने वाले एक संवेदनशील कवि थे। युद्ध कौशल, राजनीति में प्रवीणता तथा काव्य कला की त्रिवेणी में डूबकर उन्होंने अपनी जीवनानुभूतियों को जिस रूप में व्यक्त किया, वही उनका वास्तविक रचना संसार है। जन्म से तुर्क, मजहब से मुसलमान और नागरिकता से भारतीय होने पर भी रहीम इन संबंधों की संकीर्ण सीमाओं में बंधे न होकर एक सच्चे मानव का प्रतिरूप थे। वह अरबी, फारसी, संस्कृत आदि कई भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने पूर्वी अवधी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली को अपनी काव्यभाषा बनाया। भाषा को सरस, सरल और मधुर बनाने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हुए गहरी से गहरी बात को भी उन्होंने सीधी-सादी भाषा में कहा। रहीम की रचनाओं में नीति, भक्ति और श्रृंगार की तीन धाराएं बहती हैं। रहीम रत्नावली और रहिमन विलास में उद्धृत विवेचनानुसार रहीम सतसई, श्रृंगार, सोरठा, रास पंचाध्यायी, बरवै नायिका भेद, बरवै, फुटकर छंद तथा पद एवं संस्कृत काव्य के साथ कृष्णभक्ति से सरोवार 'मदनाष्टक' और 'खेट कौतुक जातकम्' नामक ज्योतिष ग्रंथ उनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। उन्होंने जाति, धर्म और देश की सीमाओं का अपनी काव्यात्मक रचनाओं द्वारा जिस उदात्त शैली से अतिक्रमण किया, वह संस्कृति पुरुष का आदर्श कहा जा सकता है।

रहीम सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति बैरम खां के पुत्र और सैफ अली के पौत्र थे। इनकी माता मैव कन्या सुल्ताना बेगम थीं। रहीम का जन्म लाहौर में हुआ था। रहीम का विवाह अकबर की अपनी धाय माहम अनगा की बेटी और अजीजा कोका की बहन माहबानू से हुआ जिससे दूरीज, दारान और करन तीन पुत्र और दो पुत्री हुईं। उन्होंने 72 वर्ष के जीवन काल में 45 वर्ष युद्ध और संघर्ष में काटे फलस्वरूप काव्य रचना के लिए उन्हें बहुत कम समय मिला। रहीम का शारीरिक सौंदर्य काफी आकर्षक था। उनमें अनेक कलाओं और विधाओं का भंडार था। वे नमाज भी पढ़ते थे और भगवान कृष्ण की स्तुति भी करते थे। रहीम तुलसीदास के निकटतम मित्र थे और उनके साथ चित्रकूट में भी रहे थे। तुलसीदास ने बरवै रामायण की रचना रहीम के बरवै नायिका भेद से उत्साहित होकर की थी। रहीम अकबर के नवरत्नों में एक थे।

राजस्थान के साधक महात्माओं में सुप्रसिद्ध दादू दयाल जैसे सरीखे संत रहीम के समीचीन भक्तिकालीन कवि थे। रहीम दादू से 12 वर्ष छोटे थे। सन् 1586 ई. में एक बार रहीम दादू का मिलन अकबर के दरबार में हुआ था। परंतु अधिक व्यस्त रहने के कारण बात न कर सके। कुछ समय के उपरांत ही दादू के आश्रम में जाकर रहीम ने दादू का दर्शन किया और उनसे ब्रह्म के संबंध में बातचीत की। दादू ने निर्गुण निराकार भगवान को वैयक्तिक भावनाओं का विषय बनाते हुए कहा कि जो ज्ञान बुद्धि के अगम्य है, उनकी बात वाक्य में कैसे कही जा सकती है। यदि कोई प्रेम और आनंद से उनकी उपलब्धि कर सके तो उसे प्रकट करने के लिए उसके पास भाषा कहां है? ''मौन गहें ते बावरे बोलैं खरे अयान'' यानी जो मौन रहता है वह पागल है और जो बोलता है वह बिल्कुल अज्ञान है। इसी प्रकार के भाव प्रकट करते हुए रहीम ने कहा—

''रहिमन बात अगम्य की,
कनन सुनन की जाहिं।
जे जावत ते कहत नहिं,
कहत ते जानत नाहिं।।''

अर्थात् उस अगम्य की बात नहीं कही जाती न सुनी जाती है। जो जानते हैं वे कहते नहीं और जो कहते हैं वे जानते नहीं। रहीम ने अपने लिए रहीम के बजाय रहिमन शब्द का प्रयोग किया है। प्रसंग के क्रम में दादू ने कहा कि उनको विषय मानकर देखने से काम नहीं चलेगा। उनको अपना बनाकर देखना होगा। यदि वे और मैं एकात्म न हों, एक-दूसरे से भिन्न रहें तो इस विश्व ब्रह्मांड में ऐसा कोई स्थान नहीं जो हम ही दोनों को अपने पास रख सके–

''जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नाहीं ठाम।।''

जहां भगवान हैं वहां हमारा स्थान नहीं, जहां हम हैं वहां उनकी जगह नहीं। वह मंदिर संकीर्ण है, दो जन होने से वहां और भी स्थान नहीं रहता। इससे मिले-जुले भाव में रहीम ने अपनी वाणी में कहा–

''रहिमन गली है सांकरी,
दूजो न ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहिं,
हरि तो आपु नाहिं।।''

अर्थात् वह मार्ग संकीर्ण है, दो जनों का खड़ा होना वहां असंभव है, आपा रहने से हरि नहीं रहता और हरि रहने से आपा नहीं। भजन करने पर भी और किसी दूसरे का भजन नहीं किया जाता। भजा जाए तो किसे?

प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए दादू ने कहा– ''भाई रे तव का कथिसि गियाना, जब दोसर नाहीं आना।।''अरे भाई, जब दूसरा है ही नहीं तो फिर ज्ञान की क्या बात कर रहा है। रहीम ने भी इसी तरह के भाव का यह दोहा व्यक्त करते हुए कहा–

''भजौं तो काको भजौं,
तजौं तो काको आन।।
भजन तजन से विलग है,
ते रहीम तू जान।।''

अगर भजना ही चाहते हो तो किसे भजोगे और तजना ही चाहते हो तो किसे तजोगे। भजन और तजन के जो अतीत हैं तुम उनको ही जानो। दादू ने संसार के साथ साधना का और विश्व के साथ व्यक्ति का कोई विरोध नहीं पर, अपना मंतव्य देते हुए कहा कि–

''देह रहे संसार में,
जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापे नहीं,
काल झाल दुख त्रास।।''

देह यदि संसार में रहे और अंतःकरण भगवान के पास तो ऐसे भक्त को काल की ज्वाला, दुःख और त्रास कुछ भी व्यापता नहीं। रहीम ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए अपना भाव व्यक्त किया–

''तन रहीम है कर्म बस,
मन राखो ओहि ओर।
जल में उल्टी नाव ज्यौं,
खेंचत गुन के जोर।।''

यानी मन जब इस प्रकार भगवान में लीन रहता है तब संसार के मायावी कार्य उस पर कोई प्रभाव नहीं डालते। सांसारिकता को हटाने के लिए किसी बनावटी आयोजन की जरूरत नहीं पड़ती। भगवान के प्रति प्रेम और व्याकुलता का भाव प्रदर्शित करते हुए दादू ने कहा–भगवद् भाव से भरे हुए चित्त में से सांसारिक वासना स्वयं दूर हो जाती है–

''मेरे हृदय हरि बसै, दूजा नाहीं और।
कहौं कहां यों राखिए, नहिं आन को ठौर।।''

मेरे हृदय में एकमात्र हरि बसते हैं, दूसरा नहीं। यहां मैं भला किसे रखूं, दूसरे के लिए जगह कहां है। ''दूजा देखत जाएगा, एक रहा भरपूर'' एक ही इस प्रकार परिपूर्ण होकर विराजमान है, दूसरा उसे देखते ही हट जाएगा।

रहीम को भक्त हृदय मिला था। उन्होंने अपने भक्तिपरक दोहे में दादू की तरह अपना भाव प्रकट करते हुए कहा–

''प्रीतम की छवि नयन वसी,
पर छवि कहां वसाय।
भरी सराय रहीम लखि,
पथिक आप फिर जाय।।''

प्रियतम की छवि, प्रियतम की शोभा आंखों में बसी है, दूसरे की छवि के प्रवेश करने की जगह कहां है। दादू ने कहा–''तो ऐसी अवस्था में कृत्रिम वेश और साज-सज्जा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। विरहन को शृंगार न भावे...। विसरे अंजन चीरा, वितर व्यथा बहु व्यावै पीरा।।'' रहीम ने भी इसी से मिलता जुलता दोहा प्रस्तुत किया–

''अंजन दियौ तो किरकिरी,
सुरमा दियों न जाय।
जिन आंखन से हरि लख्यौ,
रहिमन वलि वलि जाय।।''

अर्थात् जिन आंखों में अंजन दिया है, उसमें किरकिरा सुरमा तो नहीं दिया जा सकता। जिन आंखों से भगवान का रूप देखा है बलिहारी है उन आंखों की। तत्पश्चात् दादू ने कहा–''पूरण ब्रह्म परम परकास। तहं निज देखें दादू दास।।'' यानी ऐसी आंख सारे संसार में भगवान की नित्य लीला को देखती है। तब अवतार का तत्त्व समझाते हुए रहीम कहते हैं–

''रहिमन सुधि सब तें भली,
लागे जो इकतार।
बिछरै प्रीतम चित मिलै,
यही जान अवतार।।''

यदि प्रेम का स्मरण निरंतर एकांत भाव से होता रहे तो वही सर्वश्रेष्ठ है। खोए हुए

प्रियतम के चित्त में फिर से पा लेना ही तो अवतार है। इसलिए–

''जिहिं रहीम तन मन लियौ,
कियौ हिये विच मौन।
ता सो सुख-दुख कहन को,
रही बात अव कौन।।''

और वहां वाक्य की अपेक्षा ही कहां है, वहां मौन रहने में हानि ही क्या है। जिसने हृदय में ही घर बना लिया है, उससे कहने को बच ही क्या गया है। इस प्रकार रहीम की दादू के साथ बातचीत एक ही बार हुई। मिलना तो शायद कई बार हुआ होगा। अंत में धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय रहीम ने दोहावली में बड़ी मार्मिक अपील में कहा–

''रहिमन राम न उर धरै,
रहत विषय लपटाय।
पशु खड़ खात सवाद सौं,
गुड़ गुलियाये खाय।।''

अर्थात् विषय वासना में लिपटा हुआ मनुष्य राम को हृदय में धारण नहीं कर सकता। पशु तिनका तो बड़े प्रेम से खाता है लेकिन गुड़ उसे गुलिया कर खिलाया जाता है। स्पष्टतः सब साधकों के मत का प्रभाव इन दोनों कवियो की कविताओं पर पड़ा है।

सम्राट अकबर जब तक जीवित थे, रहीम सुखपूर्वक रहे। दान पुण्य से उनकी ख्याति देश भर में व्याप्त थी। बाद में रहीम का दुःख और दुर्दिन आया तो दादू परलोक सिधार चुके थे। उस अवस्था में रहीम ने दादू के पुत्र गरीबदास के पास जाकर कहा–

''समय दशा कुल देखि के,
सवै करत समान।
रहिमन दीन अनाथ को,
तुम विन को भगवान।।''

रहीम ने अनुभव किया कि दुःख, दुर्दशा होने से यदि प्रियतम का मिलना सुलभ होता है तो वही अच्छा है। प्रिय से मिलाने वाली रात अकेले-अकेले कटने वाले दिन की अपेक्षा कहीं अच्छी है। यही सार दोनों संत कवियों की वाणी में रहा।

सन् 1593 में रहीम की पत्नी माहबानू की मृत्यु हो गई और रहीम ने भी सन् 1627 ई. में अपना शरीर त्याग दिया। हिंदी के प्रसिद्ध कवि केशवदास ने अपनी रचना 'जहांगीर चंद्रिका' में रहीम की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कवि गंग ने पराक्रमी रहीम पर छप्पय लिखा–

''खलल भलित सेस कवि गंग मन,
अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानान खान बैरम सुवन,
जवहि क्रोध करि तंग कस्यो।।''

वस्तुतः रहीम के व्यक्तित्व में हम एक सच्चे भारतीय का उज्ज्वल रूप पाते हैं, जो जाति, धर्म, वंश और वर्ग के भेदभाव को भूलकर मानव को बंधुत्व के स्तर पर स्वीकार कर मानवता का पुजारी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ''तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदीभाषी भू-भाग में सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं।'' रहीम का स्मरण विगत चार सौ वर्षों से ऐतिहासिक पुरुष के साथ-साथ भारत माता के वंदनीय सपूत के रूप में होता आ रहा है।

मकान नं. - 228/8, गली नं. - 9,
चंदन विहार, ए-2 ब्लॉक,
वेस्ट संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली-110084

बहुप्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व

सकीना अख्तर

हिंदी साहित्य के इतिहास में रहीम ऊर्फ अब्दुर्रहीम खान-ए-खाना का नाम सुनहरे शब्दों में लिखित है। यद्यपि अपने बहत्तर वर्ष के जीवनकाल में उन्हें काव्य रचना के लिए बहुत कम समय मिला फिर भी उन्होंने जो कुछ भी लिखा सर्वश्रेष्ठ लिखा। उनका संपूर्ण काव्य स्वानुभूतिपूर्ण है। उनकी अभिव्यंजना शैली में प्रसादयुगीन भंगिमा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की गहरी छाप दिखाई देती है। उनकी काव्य कृतियां बहुआयामी हैं, जिनमें भाव वैविध्य के साथ-साथ छंद वैविध्य, विषय वैविध्य, रूप वैविध्य तथा शैली वैविध्य का सुंदर समन्वय दृष्टिगत होता है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—''रहीम ने अपने उदार और ऊंचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवेदना प्राप्त की है, उसकी व्यंजना अपने काव्य में की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदीभाषी भू-भाग में सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं। इसका कारण है जीवन की परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। रहीम के दोहे वृंद और गिरिधर के पद्यों के समान नहीं हैं। उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर एक सच्चा हृदय झांक रहा है।... रहीम का हृदय द्रवीभूत होने के लिए, कल्पना की ऊंची उड़ान की अपेक्षा नहीं रखता। वे संसार के सच्चे और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही अपने द्रवीभूत होने के लिए पर्याप्त स्वरूप पा जाता है।''

रहीम उदात्त व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे जन्म से तुर्क, धर्म से मुसलमान तथा नागरिकता से भारतीय थे किंतु उन्होंने मानवता तथा विश्व बंधुत्व की भावना को धर्म, जाति, वंश तथा वर्गभेद से ऊंचा माना। अपने इन्हीं विचारों के कारण उन्होंने अपने जीवन में आई बड़ी से बड़ी विपदाओं, कष्टों, कटुक्ति दंशों तथा अवहेलनाओं का सामना सहिष्णुता के साथ किया।

रहीम एक सुप्रसिद्ध कवि ही नहीं बल्कि एक वीर योद्धा तथा एक कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। काव्यकला उनकी नैसर्गिक प्रतिभा का प्रमाण है, जिसमें भारतीय सांस्कृतिक समन्वय की भावना आद्योपांत बसी हुई है। वीरता का गुण उन्हें अपने पिता बैरम खां से प्राप्त हुआ, सम्राट अकबर की छत्रछाया में उन्होंने राजनीति की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की।

रहीम का जीवनवृत्त अकबर तथा जहांगीर के शासनकाल में लिखे गए उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथों में उपलब्ध हैं। जैसे—'अकबरनामा', 'आईने अकबरी', अकबर द ग्रेट', 'तबकाते अकबरी', 'तुजुके जहांगीरी', 'महासिरे रहीमी', 'खानखाना नामा' आदि। इनके अतिरक्त भी रहीम के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर आधारित दर्जनों ग्रंथ हैं जैसे—'रहिमन शतक', 'रहिमन विलास', 'रहीम रत्नावली', 'रहिमन नीति दोहावली', 'रहिमन विनोद', 'रहिमन चंद्रिका' आदि प्रकाशित किए गए।

उपर्युक्त ग्रंथों के अनुसार रहीम के पिता बैरम खां, हुमायूं के खास मुहासिब तथा विश्वासपात्र थे। हुमायूं उनकी स्वामिभक्ति से बहुत प्रसन्न थे। सन् 1544 में वे उन्हें अपने सेनापति के रूप में हिंदुस्तान लेकर आए थे। अकबर के जन्म के पश्चात् हुमायूं ने बैरम खां को अकबर की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व सौंपते हुए उन्हें पंजाब प्रदेश का हाकिम बना दिया। रहीम का जन्म लाहौर में हुआ। इसी दौरान बैरम खां को 'खानखाना' का अलंकरण प्राप्त हुआ। भविष्य में यही अलंकरण रहीम के नाम के साथ भी जुड़ गया। मुंशी देवीप्रसाद ने 'खानखाना नामा' में रहीम की जन्मकुंडली दी है। रहीम जब चार बरस के थे, तब उनके पिता बैरम खां को हज यात्रा पर जाते समय गुजरात के निकट एक पठान ने अपनी किसी पुरानी दुश्मनी चलते कत्ल कर दिया। यह दुखद समाचार मिलने के पश्चात् अकबर ने रहीम तथा उनकी माता को सन् 1561 में आगरा बुलवा लिया और उनकी शिक्षा-दीक्षा का उच्चस्तरीय प्रबंध किया। युवावस्था में पहुंचने पर उन्होंने रहीम का विवाह अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री माहबानू से कर दिया तथा अपने दरबार में विशिष्ट स्थान प्रदान किया। इस प्रकार अकबर तथा रहीम का संबंध घनिष्ठ होता चला गया।

रहीम की काव्य-दृष्टि में जिस व्यापकता का परिचय मिलता है उसके प्रेरणास्रोत कहीं न कहीं अकबर रहे हैं। इस संबंध में दिनकर ने ''संस्कृति के चार अध्याय'' नामक पुस्तक में लिखा है—''अकबर ने दीने-इलाही में हिंदुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविताओं में उसे, उससे भी बड़ा स्थान दिया।'' रहीम ने अपने जीवन काल में कई उतार-चढ़ाव देखे। अकबर की फौज में उन्होंने एक सफल योद्धा के रूप में अनेक युद्धों में भाग लिया और विजय प्राप्त करते हुए अपने पौरुष तथा पराक्रम का परिचय दिया। इस प्रकार समय के साथ-साथ उनकी लोकप्रियता तथा सम्मान में भी निरंतर वृद्धि होती चली गई किंतु अकबर

की मृत्यु के साथ ही रहीम का जीवन दुख तथा अपमान से भर गया। 24 अक्तूबर, 1605 को जहांगीर के सिंहासन पर बैठते ही रहीम से ईर्ष्या रखने वाले कुछ सामंतगणों ने रहीम के विरुद्ध उनके मन में कड़वाहट पैदा कर दी, जिसके कारण वह रहीम की अवहेलना करने लगा। रहीम बहुत ही स्वाभिमानी तथा स्पष्टवादी थे। उन्होंने जहांगीर को प्रसन्न करने के लिए कभी भी चाटुकारिता एवं चापलूसी का सहारा नहीं लिया। अंततः उनकी सद्भावना, प्रेम तथा स्वामिभक्ति को जहांगीर ने भी सराहा जिसका उल्लेख उसने 'जहांगीरनामा' में किया है।

रहीम के शारीरिक तथा मानसिक सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए कवि गंग एक दोहे में कहते हैं—

''गंग गौछ, औछे जमुन,
अधरन सरसुति राग।
प्रमर खानखानान के,
कामद वदनु प्रयाग।।''

रहीम काव्यकला के साथ-साथ अन्य ललित कलाओं यथा—स्थापत्य, मूर्ति, नाटक आदि में भी विशेषज्ञ थे। अलवर का त्रिपोलिया, गुजरात में स्थित बागफतह, शाहबाड़ी, आगरा की हवेली आदि उनकी स्थापत्य कला प्रेम का जीता जागता प्रमाण है। उनके कला प्रेम की प्रशंसा जहांगीर ने 'तुजुके जहांगीरी' में भी की है।

रहीम के व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता उनकी दानवीरता रही है, जिसकी प्रशंसा उनके अनेक समकालीन कवियों ने बड़े सुंदर शब्दों में की है। इस संदर्भ में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि दान देते समय वे याचक की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते थे। इस विषय में एक बार गंग कवि ने पूछा—

''सीखे कहां नवाबजू,
ऐसी देनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊंचा कियौ,
त्यों-त्यों नीचे नैन।।''

गंग कवि के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए रहीम कहते हैं—

''देनहार कोऊ और है,
भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर करें,
यातें नीचे नैन।।''

उनकी दानवीरता की पराकाष्ठा तो यह है कि जब वे जहांगीर द्वारा अवहेलना झेल रहे थे तो उस समय उन्हें कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। जिनमें से एक धनाभव भी था। परंतु ऐसे समय में भी वे याचकों को खाली हाथ नहीं लौटाते थे, उनकी आवश्यकतापूर्ति के लिए वह धनी मित्रों एवं अन्य नवाबों से ऋण लेकर उन्हें धन देते थे।

रहीम स्वयं तो प्रतिभावान थे ही किंतु वे दूसरों की प्रतिभा की भी खुले मन से कद्र करते थे और उन्हें नवाजते थे। कहा जाता है कि एक बार कवि गंग द्वारा छप्पय सुनकर वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें ईनाम में छत्तीस लाख रुपए प्रदान किए। उन्हें गोस्वामी तुलसीदास का समकालीन माना जाता है। 'रहीम रत्नावली' नामक पुस्तक में रहीम तथा तुलसीदास पर आधारित कई दोहे मिलते हैं।

वे जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े भाषा विशेषज्ञ भी थे। उन्हें तुर्की, अरबी, फारसी भाषा में जितनी दक्षता प्राप्त थी, उतनी ही संस्कृत भाषा में भी। डॉ. विमल चौधरी ने अपनी पुस्तक 'कंट्रीब्यूशन ऑफ मुस्लिम्स टू संस्कृत लर्निंग' में इसका उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त आर.पी. भसानी ने अपनी पुस्तक 'कोर्ट पोइट्स ऑफ ईरान एंड इंडिया' में रहीम की भाषा विषयक विद्वता का वर्णन किया है। 'खानखाना नामा' नामक ग्रंथ में मुंशी देवीप्रसाद ने उन्हें सप्तभाषाविद् कहा है। वैसे तो रहीम के नाम से रचित कई ग्रंथ प्राप्त हुए हैं किंतु विशेषज्ञों द्वारा किए गए गहन विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् केवल आठ ग्रंथों को प्रमाणित माना गया है—'दोहावली', 'बरवै', 'बरवै नायिका भेद', 'नगर शोभा', 'श्रृंगार सोरठा', 'संस्कृत काव्य फुटकर', 'सोरठा' तथा 'मदनाष्टक'।

रहीम के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उनका यथार्थ जीवनानुभूतियों पर आधारित होना। उन्होंने जो भी लिखा सोद्देश्यपूर्ण लिखा। उनके काव्य में आद्योपांत लोकमंगल की भावना दृष्टिगत होती है। उनके दोहे नीति, भक्ति तथा सदाचार की भावना से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने श्रृंगार पर आधारित दोहे भी लिखे किंतु उनमें मर्यादा का उचित निर्वाह किया। इन्हीं गुणों के कारण उनके दोहे इतने लोक प्रसिद्ध हुए कि आज भी जनमानस इन्हें मुक्त कंठ से दोहराते हैं—

''जो रहिमन उत्तम प्रकृति,
का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं,
लिपटे रहे भुजंग।।''

उन्हें संगीत का भी अच्छा-खासा ज्ञान था। संगीत सम्राट तानसेन की प्रशंसा में उन्होंने यह दोहा कहा था—

''विधना यह जिय जानिकै,
सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलते,
तानसेन की तान।।''

निष्कर्षतः रहीम का संपूर्ण व्यक्तित्व तथा कृतित्व भारतीय सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है। उनके कृतित्व में मानवता, सौहार्द्र तथा प्रेम की भावना उदात्त रूप में अभिव्यंजित है। अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने रणभूमि में व्यतीत किया और एक सशक्त योद्धा के साथ-साथ एक श्रेष्ठ कवि के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए। कठोरता और कोमलता का यह अद्भुत समन्वय रहीम के काव्य को विशिष्ट बनाता है।

हिंदी अधिकारी,
कश्मीर केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर-190 004

रहीम के काव्य में प्रकृति चित्रण

डॉ. श्रुतिरंजना मिश्र

मानव और प्रकृति का शाश्वत संबंध है। प्रकृति उसकी माता के समान है। उसकी गोद में ही मनुष्य की चेतना का विकास हुआ है। उसके साहचर्य में ही उसने सृजन का गुण सीखा है। मनुष्य के जीवन का प्रत्येक कार्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति पर ही निर्भर है। प्रकृति के माध्यम से ही मनुष्य के हृदय में सभी रसों का संचार हुआ है। जहां एक ओर प्रकृति के विनाशकारी दृश्यों से मनुष्य के हृदय में विस्मय-कुतूहल और भय आदि भावनाओं को जागृत किया है वहीं दूसरी ओर हृदय को आह्लादित कर देने वाले संवेदनशीलता के गुण को विकसित कर देने वाले कारण भी प्रकृति के माध्यम से ही उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य की सौंदर्यात्मक चेतना और भावात्मक स्पंदनशीलता के साथ दार्शनिक चिंतन एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से प्रकृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए प्रकृति चिरकाल से ही मनुष्य की सहचरी रही है। काव्य में प्रकृति को आलंबन, उद्दीपन, पृष्ठभूमि, मानवीकरण, प्रतीक, आलंकारिक, रहस्यात्मक, उपदेश आदि विविध रूपों में व्यक्त किया जाता है। ऐसे कवि कम ही हैं जो प्रकृति-वर्णन में इन सभी रूपों का सहज वर्णन एक समान रूप से कर सकने की प्रतिभा रखते हैं।

अकबरी दरबार में हिंदी कवि 'रहीम' हिंदी-साहित्य के भक्तिकाल के युग में आते हैं। रहीम युग में यद्यपि भक्ति-आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था किंतु साथ ही यह युग रीतिकाल की संधि का युग भी था। उनके विराट जीवनानुभव ने उन्हें भक्ति की ओर उन्मुख किया और साथ ही रहीम ने रीति-संबंधी रचना करके लौकिक शृंगारमयी भावना को हृदयस्पर्शी बनाकर उपस्थित किया। रहीम के राजनीतिक जीवन से परिचित होने पर उनके जीवन में आए उतार-चढ़ावों का पता चलता है। यह उनके विराट जीवनानुभव की आधारभूमि है। आस्तिकता एवं धार्मिक आस्थावादी दृष्टिकोण ने रहीम को भक्ति-अध्यात्म की ओर मोड़ा तथा दरबार के विलासितापूर्ण जीवन के दुःखद परिणामों का सीधे साक्षात्कार करके जीवन की मर्मानुभूतियों से मान-सम्मान, संगति, दान, परोपकार, समय का महत्त्व, शील-संतोष, याचकता, निर्धनता, अभिमान, चिंता, कपट, आत्मप्रशंसा आदि लौकिक अनुभूतियों के अनेक संदर्भ उनके काव्य में जुड़कर लोकभूमि की गंध ला देते हैं। राज परिवारों के बीच रहते हुए और स्वयं राज परिवार से संबंधित होते हुए भी रहीम, अपनी सजग लोक दृष्टि से साधारण जीवन की झांकी को काव्य में प्रस्तुत करते रहें। इस तरह उन्होंने दरबार और लोक-जीवन के बीच खाई को पाटा और समाज में सांस्कृतिक विनाश रोकने में अहम भूमिका निभाई। अपनी सरस-तरल अनुभूति और लौकिक अनुभूति से सार्वजनिक तथ्य उजागर करके रहीम अपने काव्य को जो नवीन दिशा देते हैं वह प्रत्येक वर्ग के हृदय को छू लेती है।

रहीम सर्व-साधारण के कवि हैं। कबीर तथा तुलसी की भांति उनके दोहे भी हिंदीभाषी जनता के सहचर हैं। उनकी रचनाओं में भी प्रकृति 'पंत' की रचनाओं की भांति कुशल सहचरी के रूप में व्यक्त हुई हैं। उनकी रचनाओं में मानवीय अनुभूति की छटा अनेक स्थलों पर बिखरी मिलती है। रहीम ने अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अधिकांशतः भावोद्दीपक एवं उपदेशात्मक रूप में किया है, आलंबन-परिगणनात्मक और संख्यात्मक प्रकृति वर्णन में कम। प्रकृति चित्रण को केवल प्रकृति चित्रण के लिए प्रस्तुत करना आलंबन रूप है। रहीम के काव्य में आलंबन रूपात्मक प्रकृति चित्रण नाम मात्र का ही है। जहां ये भाव प्रस्तुत हुए हैं, वे केवल आलंबन न होकर अन्य भाव को भी अभिव्यंजित करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहे में आकाश में उमड़ते-घुमड़ते हुए बादलों को देखकर जल प्राप्ति की आशा से मेंढक, मोर एवं किसान के मन के प्रफुल्लित होने तथा स्वाति-बूंद के लिए चातक का मन लालायित होने की बात है और सरोवर से इनका कोई प्रयोजन नहीं।

''दादुर मोर किसान मन,
लग्यो रहे घन माहिं।
रहिमन चातक रटनि हू,
सरवर को कोउ नाहिं।।''

रहीम ने भावोद्दीपन के रूप में प्रकृति के चित्र प्रस्तुत किए हैं। जहां कवि का मूल उद्देश्य प्रकृति चित्रण न होकर प्रकृति को देखकर मानव हृदय के प्रेम, वात्सल्य, घृणा, करुणा आदि भाव अथवा अनुभूति की उद्दीप्त है किंतु संयोग-वियोग के शृंगारिक क्षेत्र में इस प्रकार के प्रकृति वर्णन का विशेष महत्त्व है। रहीम का काव्य संयोग-वियोगजन्य मनोदशा का वर्णन न होकर प्रकृति के द्वारा अपने वक्तव्य की पुष्टि है। रहीम द्वारा वर्णित प्रकृति का उद्दीपन रूप, कहीं-कहीं परंपरा से कुछ हटा भी प्रतीत होता है। जैसे—लोक-दृष्टि से रात की तुलना में दिन को अच्छा माना जाता है, किंतु संयोगावस्था का चित्रण करते समय रहीम 'रात' को श्रेष्ठ कहते हैं क्योंकि उसमें प्रियतम-प्रिया का दिन के समान बिछुड़ना न होकर संयोग का अवसर होता है—

''रहिमन रजनी ही भली,
पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम मौ,
रहिबौ आपुहि आप।।''

रहीम के अनुसार संयोगावस्था में प्रकृति का उपेक्षित दृश्य भी हृदय को सुखकर प्रतीत होता है। उदाहरण देते हुए रहीम कहते हैं—प्रिय के बिना बैकुंठ (स्वर्ग) और कल्पवृक्ष भी अरुचिकर प्रतीत होते हैं जबकि प्रिय के सामीप्य में ढाक का वृक्ष भी सुहावना लगता है—

''कहा करौ बैकुंठ ले,
कल्पवृक्ष की छांह।
रहिमन ढाक सुहावनो,
जो गल प्रीतम बांह।।''

रहीम ने वियोगावस्था में भी प्रकृति के उद्दीपक रूप का वर्णन किया है। इसमें कवि ने 'बरवै' और 'दोहों' के माध्यम से विप्रलंभ वर्णन किया है। विरह की कल्पना-मात्र से ही प्रेमी के प्राणों पर बन आती है। सावन के महीने में प्रिय का जाना अत्यंत कष्टदायक होता है–

''झूमि-झूमि चहुं ओरन बरसत मेह।
त्यों त्यों प्रिय बिन सजनी तरपत देह।।''

रहीम ने अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए प्रकृति के उपकरणों को अलंकार रूप में प्रयुक्त करते हुए शब्द-सौंदर्य दर्शाया है। रहीम ने प्रकृति को अलंकरण रूप में सफलतापूर्वक स्थान दिया है। रहीम सत्संगति के परिप्रेक्ष्य में चंदन वृक्ष को अलंकार रूप में प्रयुक्त करते हुए कहते हैं–

''जो रहीम उत्तम प्रकृति,
का कर सकै कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं,
लिपटे रहत भुजंग।।''

रहीम ने प्रकृति के घटना-व्यापारों के माध्यम से उपदेश दिया है और नीति की बातें कही हैं। प्रकृति-सापेक्ष इन उपदेशों को उपदेशात्मक प्रकृति वर्णन की संज्ञा दी जा सकती है। रहीम को प्रकृति की चेतन सत्ता में जीवन के अनेक रूप परिलक्षित होते हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत संघर्षों का हल भी वे प्रकृति के माध्यम से करने का संदेश देते हैं। रहीम उदाहरण देते हुए कहते हैं कि थोड़े जल में मछली के जीवित रहने की कठिनता के द्वारा घटे उद्यम और बढ़े खर्च का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं–

''खरच बढ़्यौ उद्यम घट्यौ,
नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए,
थोरे जल की मीन।।''

प्रकृति पर चेतना का आरोप करते हुए उसे प्राणवत् चित्रित करना प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। यद्यपि रहीम का युग प्रकृति के मानवीकरण का युग नहीं था। उनके काव्य में एक-दो चित्रों को छोड़कर इसका अभाव है। रहीम ने अपने काव्य में प्रकृति का अन्योक्तिपरक प्रयोग करते हुए सार्थक एवं सटीक भावाभिव्यक्ति की है। प्रकृति के प्रस्तुत अर्थ द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का बोध कराने वाली उक्ति प्रकृति का अन्योक्तिपरक वर्णन है। दिए गए उदाहरण में राजदरबार में अयोग्य व्यक्तियों का सम्मान बढ़ने और स्वयं का मान घटाने की व्यथा को अन्योक्तिपरक रीति से रहीम ने वर्णित किया है–

''पावस देखि रहीम मन,
कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए,
हमको पूछत कौन।।''

रहीम ने प्राकृतिक उपकरणों के प्रतीकों द्वारा सहज और बोधगम्य काव्य सृजन भी किया है। रहीम प्रतीकों का प्रयोग कर 'गागर में सागर' भरने की कहावत को चरितार्थ कर देते हैं। मान-सम्मान के प्रतीक के रूप में उनका 'पानी' से संबंधित दोहा अत्यंत प्रसिद्ध है–

''रहिमन पानी राखिए,
बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै,
मोती मानुष चून।।''

रहीम ने अपने दोहों में दार्शनिक भाव का भी वर्णन किया है। उनके काव्य में कहीं-कहीं रहस्यात्मक रूप का विशद अंकन है। दिव्य और अलौकिक शक्ति से एकाकार करवाते हुए जीवात्मा की अंतर्निहित शक्ति का प्रकाशन आध्यात्मिक विषय है। इन रहस्यानुभूतियों से प्रेरित होकर कवि प्रकृति के माध्यम से सरस अभिव्यंजना करता है। बूंद और सागर द्वारा आत्मा-परमात्मा से संबंधित रहस्य की ओर इंगित करते हुए रहीम कहते हैं–

''बिंदु भी सिंधु समान,
को अचरज कासों कहैं।
हेरनहार हैरान, रहिमन अपुने आप तें।।'

इसी प्रकार, कहीं-कहीं रुधिर, ब्याल और चिता आदि भयंकर वस्तुओं का काव्य में प्रयोग करके रहीम प्रकृति के भयंकर और विकराल रूप को भी प्रस्तुत करते हैं–

''चीता-चोर-कमान के,
नए ते अवगुन होय।
××× ××× ×××
दादुर मोर-चकोर-मन,
लग्यो रहे घन माहिं।।''

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि यद्यपि स्पष्ट रूप से रहीम ने अपने काव्य में प्रकृति-चित्रण नहीं किया है, तथापि इसके विविध रूपों को अपने काव्य में रूपांकित किया है। इस रूपांकन के लिए उन्होंने विष-चंदन, चंद्र-चकोर, सागर-नदी, पशु-पक्षी, मेंहदी-रंग, विष-अमृत, फल-फूल, जल-मीन, दही-मही, नभ-तारे आदि प्राकृतिक उपकरणों का वर्णन अपने काव्य में किया है। प्रकृति वर्णन करते समय कवि ने पारंपरिक और मौलिक दोनों दृष्टि अपनाई है। नीति कथनों को उदाहरणों द्वारा पुष्ट करने और नैतिक सिद्धांतों की उद्भावना के लिए रहीम ने प्राकृतिक तत्त्वों का प्रयोग किया है। लौकिक नीतिपरक दृष्टिकोण के बावजूद प्रकृति-पदार्थों का काव्य में प्रयोग, सूक्ष्मता एवं लौकिक अनुभूतिपरक विशिष्टता, रहीम की एक विशिष्ट एवं अद्वितीय पहचान बनाती है।

वस्तुतः रहीम का काव्य हिंदी संसार की अनुपम निधि है। उनके दोहों में मानो जीवन का सार छिपा हुआ है। साक्षर-निरक्षर सभी उनसे परिचित हैं। वास्तव में अपने नीति के दोहों के कारण ही रहीम सर्वसाधारण में इतने लोकप्रिय हैं। उन्हें मुगल राज्य के सामंत, प्रशासक, सेनानायक तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में इतिहास के विद्यार्थी ही जानते हैं किंतु दोहाकार रहीम या 'रहिमन' को सामान्य हिंदीभाषी भी जानता है। जीवन का जो दीर्घ एवं विधि अनुभव रहीम को था, उन सभी का सुंदर एवं मर्मस्पर्शी वर्णन उनके दोहों में मिलता है। इसके अतिरिक्त रहीम ने प्रकृति के प्रति लोक की आस्था को प्रदर्शित करते हुए प्रकृति का प्रचुर मात्रा में प्रभावशाली शैली में वर्णन भी किया है। उनके काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का सहज ही दर्शन हो जाता है। अतः कहा जा सकता है कि नीतिगत दोहों के कवि रहीम के काव्य में प्रकृति की सुगंधित श्वास भी है जो आज भी महसूस की जा सकती है।

21, सविता विहार, नई दिल्ली-110092

मानवता के संरक्षक यशस्वी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना

डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

मध्ययुगीन कवियों में श्रेष्ठ एवं नैतिक मानदंडों के स्थापक कविवर अब्दुर्रहीम खानखाना हिंदी साहित्य जगत् में यशस्विता प्राप्त हैं।[1] इनकी प्रतिभा से प्रभावित बादशाह अकबर ने इन्हें संरक्षण एवं योग्यतानुसार सूबेदारी तथा खानखाना उपाधि दी। सन् 1627 ई. में इनका देहांत हुआ था।[2]

रहीम का स्वभाव शांत एवं धैर्य संपृक्त था। कृतज्ञता, वीरता, विनम्रता एवं काव्य प्रतिभा इनके अपने प्रारब्ध की देन थे।

सुकवि रहीम हिंदी, संस्कृत, अरबी, तुर्की और फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। हिंदू संस्कृति का इनसे सन्निकट का सरोकार था। संस्कृत का गहन अध्ययन आपने किया था। संस्कृत के नीतिपरक भावों का इनके हिंदी दोहों पर भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

रहीम के तीन सौ दोहे हिंदी में 'दोहावली' नाम से संगृहीत हैं। दोहों में ही प्रणीत इनकी एक स्वतंत्र कृति 'नगर शोभा' में एक सौ बयालीस दोहे हैं। इनमें नारियों के शृंगार का वर्णन है। आपने बरवै छंद के माध्यम से अवधी भाषा में 'नायिका भेद' की रचना की है, जो अत्यंत रससिक्त है। इनका गोपी विरह वर्णन भी बरवै छंद में प्राप्त है। इनके शृंगार रस समन्वित सोरठे भी उपलब्ध हैं। आपकी 'मदनाष्टक' नाम से एक कृति संस्कृत और हिंदी खड़ी बोली में प्राप्त हुई है।

रहीम के भक्तिपरक संस्कृत श्लोक भी उपलब्ध हैं। आप दैवज्ञ भी थे। आपका 'खेट कौतुक जातक' नामक एक ज्योतिष ग्रंथ भी मिलता है। आप एक अच्छे अनुवादक के रूप में भी चर्चित रहे। आपने 'वाकेआत-बाबरी' का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया। आपके ग्यारह ग्रंथ उपलब्ध हैं।

कविवर रहीम बहुज्ञ थे। विविध भाषाओं एवं विविध विषयों का आपको सम्यक् परिज्ञान था। आपकी कृतियों का मुख्य विषय नीति, मानवता, सहृदयता, भक्ति, शृंगार, राष्ट्रीयएकता एवं सौहार्द्र रहा है। रहीम का साहित्य जहां संस्कृत एवं अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित रहा, वहीं सूर, तुलसी आदि अपने समकालीन कवियों से आपका आत्मीय भाव भी विश्रुत है। जाति-पांति, धर्म-भेद एवं संप्रदाय से बहुत दूर रहे रहीम एक सरल मानव एवं सरस सुकवि थे। गोस्वामी तुलसीदास ने इनसे एक निर्धन ब्राह्मण की कन्या के विवाह के लिए सहायता हेतु प्रस्तुत पंक्ति प्रेषित की थी। जो इस प्रकार है—

''सुरतिय, नरतिय, नागतिय,
सब चाहत अस कोय।''

रहीम ने उक्त कन्या के विवाह में पूरी मदद देकर गोस्वामीजी को उक्त दोहा-पूर्ति में जो लिखा था, वह अविस्मरणीय है। यथा—

''गोद लिए हुलसी फिरे,
तुलसी सो सुत होय।।''

अकबरी दरबार में कवियों में रहीम का उल्लेखनीय स्थान था। तथापि कविवर रहीम स्वयं कवियों को आश्रय प्रदान करते थे। इस विषय में महाकवि केशव, आसकरन, मंडन, नरहरि, गंग आदि ने सुकवि रहीम की प्रशंसा की है। बिहारी, मतिराम, व्यास, वृंद, रसनिधिआदि कवियों का साहित्य रहीम की रचनाओं से प्रभावित रहा है।

कविवर रहीम सच्चे मानवतावादी साहित्यकार थे। उनकी कथनी एवं उनके व्यवहार में साम्य था। मन, वाणी और कर्म का ऐक्य उनका वैशिष्ट्य था। उनकी रचनाएं मानव के सफल, शांत एवं समुन्नत जीवन के लिए जीवंत संविधान के रूप में उत्प्रेरणा प्रदान करने का कार्य करती हैं। सत्संग जीवन को समुन्नत करता है और कुसंग सर्वनाश। रहीम की यह सोच इनकी इन पंक्तियों से सहज ही अभिव्यक्त होती है। यथा—

''कह रहीम कैसे निभै,
केर बेर कौ संग।
वे रस डोलत आपने,
उनके फाटक अंग।।''

रहीम की चेतावनी बहुत ही सार्थक और आचरणीय है। यथा—

''रहिमन चुप हो बैठिए,
देख दिनन कौ फेर।
जब नीके दिन लागत हैं,
बनत न लागत देर।।''

रहीम समुचित दंड विधान के पक्षधर हैं। अपराधानुसार दंड व्यवस्था उनकी संरचनात्मक शैली को व्यक्त करती है। कुबोल या कटु वचन उनकी दृष्टि में बहुत बड़ा अपराध है, अतएव ऐसे कड़वे बोलने वालों के लिए उन्होंने जो दंड निर्धारित किया है, वह मानव मात्र के उद्धार के लिए है। यथोल्लेख है कि—

''खीरा सिर सो काटिय,
मलिए नोन लगाय।
रहिमन कड़ुवे मुखन को,
चहिए यही सजाय।।''

मानव जीवन के व्यावहारिक पक्ष को रहीम ने स्पष्ट कर उसका अवबोध करवाया है तथा निःस्पृहता से जीवन जीने की सीख भी उनकी सुचिंतता से प्राप्त होती है। यथा–

''तबही लों जीबौ भलो,
देबौ होय न धीम।
जग में रहबो कुचित गति,
उचित न होय रहीम।।''

और भी दृष्टव्य है–

''दुरदिन परे रहीम कह,
भूतल स पहिचानि।
सोच नहीं बित हानि कौ,
जोन होय हित हानि।।''

''रहिमन वे नर मर चुके,
जे कहुं मांगन जाहिं।
उनते पहले वे मरे,
जिन मुख निकसत नाहिं।।''

''रहिमन रहिला की भली,
जो परसै चित लाय।
परसत मन मैलो करे,
सो मैदा जरि जाय।।''

कविवर रहीम की शृंगार समन्वित भक्ति पर रचनाएं भी बड़ी सरस, मधुर एवं मनोहारी हैं। यहां अवलोकनीय उनका एक सवैया छंद। यथा–

''जाति हुती सखि गोहन में,
मनमोहन को लखि ही ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की
उनहूं नंदलाल को रीझिबो जानो।।
जाति भई फिरि कै चितई,
तब भाव रहीम यहै उर आनो।
ज्यों कमलेश दयानक में फिरि
तीस सों मारि लै जात निसानो।।''

श्रेष्ठ काव्य प्रतिभा के धनी सुकवि अब्दुर्रहीम मानवता एवं मानवीय गुणों के संपोषक, सहज, सरल, सच्चे संवेदनशील इनसान थे। उनके स्वाभाविक सद्गुण उनके काव्यों को सुचारुता एवं रमणीयता से अलंकृत किए हुए हैं। सरल भाषा एवं ललित काव्य शैली में मनुष्य का सद्पथ प्रशस्त करने में रहीम को महारथ प्राप्त है। इसी से उनके काव्य सहज गेय होने के साथ ही सरलता से स्मृति पटल पर अंकित भी हो जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. हिंदी साहित्य कोश-भाग-2, पृ. 483
2. वही।

सब जन के सुख मूल

कवि रहीम ने दिया है, ऐसा आत्मज्ञान।
अलख लखे सबको , सभी बनें सही इनसान।।

बोली वाणी हो मधुर, सब जन बनें सुजान।
कवि रहीम के काव्य का, यह प्रेरक संज्ञान।।

मानवता के हित जियो, यही सुकवि की सीख।
श्रम का दिया निदेश पुनि, कही अवरतम भीख।।

जीवन जिएं सभी मनुज, सुखमय शोभन रूप।
चिंतन सुकवि रहीम का, सबके हित अनुरूप।।

दोहे सुकवि रहीम के, सब जन के सुख मूल।
सुपथ सुयश देवें सदा, मिटा हिए के शूल।।

कवि रहीम जी का महत्, शोभन सद् साहित्य।
यह निश्चय, अज्ञानतम-विनशन-हित 'आदित्य'।।

मानवता के क्षेमहित, है कविवर का काव्य।
पर्यावरण का पवित्र-हित, बा सुगंधित हव्य।।

मानव जीवन धन्य-हित, रच साहित्य-वितान।
पथ प्रशस्त कर सुकवि ने, किया लोक कल्याण।।

काव्य सर्जना कर मधुर, चिंतन दिया अनूप।
श्रद्धासह है समर्पित, 'शब्दांजलि' कविभूप।।''

लक्ष्मी गुप्ता भवन,
उद्योग विभाग के पास, सिविल लाइंस,
दतिया-475661 (म.प्र.)

नैतिकता के निर्माण में रहीम के पद

डॉ. एनी राय

वीरता और उदारता के प्रतीक अब्दुर्रहीम खानखाना हिंदी के ऐसे लोकप्रिय कवि हैं, जिनके पद आज भी लोगों की जुबान पर बसे हुए हैं। युद्ध कला का वरदान उन्हें अपने पिता बैरम खां से विरासत के रूप में मिला था। लेकिन काव्य-कला उनकी नैसर्गिक काव्य-प्रतिभा थी जो केवल स्वांतः सुखाय तक सीमित न रहकर जन-जीवन की सामूहिक चेतना को प्रबुद्ध करने में पूर्ण सफल हुई थी।

रहीम की काव्य-साधना के स्पष्टतः दो आदर्श हैं। एक का आधार सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध करने वाला लौकिक जीवन व्यवहार का पक्ष, जिसमें नीति, धर्म और लोक-व्यवहार की छाप है। नीति, समाज के सफल जीवन-निर्वाह की वह रीति अथवा कला है जो मनुष्य के आचरण का निर्धारण करती है। इस रीति को अपना कर मनुष्य किसी प्राणी का अहित किए बिना आगे बढ़ने को प्रवृत्त रहता है और अपना हित सिद्ध करता चलता है। परोपकार, दया, क्षमा, सहनशीलता, स्वाभिमान, निष्कपटता आदि से संबंधित आस्थाओं का उल्लेख नीतिपरकता के अंतर्गत किया जा सकता है।

दूसरी कोटि की काव्य-रचना जीवन के रागात्मक एवं मार्मिक पक्ष को स्पर्श करती है। भारतीय प्रेम-जीवन की सच्ची झलक प्रस्तुत करने वाला रहीम का काव्य उनके कोमल एवं द्रवीभूत होने वाले रसिक हृदय की झांकी कहा जा सकता है।

अकबरी दरबार के कवि रहीम, हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के युग में आते हैं। रहीम के समय में यद्यपि भक्ति आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था किंतु साथ ही यह युग रीतिकाल की संधि का युग भी था। जीवनानुभव ने उन्हें भक्ति की ओर उन्मुख किया, साथ ही रीति संबंधी रचना करके लौकिक, श्रृंगारमयी भावना को हृदयस्पर्शी बनाकर स्थापित किया। राजनीतिक क्षेत्र से जुड़े होने के कारण उनके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए। यह उनके विराट जीवनानुभव की आधारभूमि है। आस्तिकता और धार्मिक आस्थावादी दृष्टिकोण ने रहीम को भक्ति और अध्यात्म की ओर मोड़ा तथा दरबार के विलासितापूर्ण वातावरण के दुःखद परिणामों को भोग कर जीवन की सच्चाईयों से साक्षात्कार किया। जीवन की विविधताओं के समान रहीम ने मान-अपमान, प्रेम-संतोष, परोपकार, त्याग, मर्यादा, राज-कर्त्तव्य, अभिमान, चिंता, कुसंगति, कपट-स्वार्थ, आत्मप्रशंसा आदि लौकिक चिंतन की अनेक भाव-भंगिमाओं को अपने नीति-काव्य में उल्लेख किया है।

नैतिकता के निर्माण में सत्संग की महिमा के बारे में रहीम का मानना है कि अगर मानव उत्तम प्रकृति का है तो कुसंग उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। उत्तम प्रकृति के चरित्र की व्याख्या करते हुए कई बार वे यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि अच्छा व्यक्ति जब दुर्जन की संगति में आ जाता है, तब भी उसकी उससे निभती नहीं क्योंकि जीवन को देखने की दृष्टि दोनों की अलग-अलग है। इसके उन्होंने अनेक उदाहरण दिए हैं, जिसे हम उनके नीतिपरक दोहों में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। रहीम ने कुएं से पानी निकालने के लिए घड़े में बंधने वाली रस्सी का बहुत सुंदर उदाहरण दिया है। वे मनुष्य को घड़े की तरह होने की सीख देते हुए कहते हैं कि स्वयं को विपत्ति में डालकर दूसरों की सहायता करनी चाहिए–

''रहिमन रीति सराहिए,
जो घट गुन-सम होय।
भीति आप पै डारि कै
सबै पियावे तोय।।''

समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए व्यक्ति को हमेशा मर्यादा में रहना चाहिए। मर्यादा उत्तम चरित्र का आभूषण है और यह अति से बचाती हुई संयम सिखाती है–

''जो मरजाद चली सदा,
सोई तै ठहराय।
जो जल उमगै पर तें,
सो रहीम बहि जाय।।''

मर्यादा जीवन को अंधकार से बाहर निकाल कर उजाले की ओर ले जाने वाली ज्योति है। मर्यादा से संयमित जीवन मनुष्य को ऊंचाइयां प्रदान करता है।

रहीम की नीतियां आज भी हमारे लिए बहुमूल्य इसीलिए हैं कि अब भी उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है। सामाजिक संतुलन पर भी उनकी पैनी दृष्टि है। वे इस बात की भी सीख देते हैं कि हमें मर्यादित होकर सभी कर्म करने चाहिए क्योंकि मर्यादा ही मनुष्य का आभूषण है।

मनुष्य में क्षमा का अपना महत्त्व है। रहीम इसमें बड़प्पन समझते थे कि छोटों के

अनुचित कार्य को देख कर भी बड़ों द्वारा क्षमा कर दिया जाना चाहिए। अपने इस मत की पुष्टि वे भृगु और भगवान विष्णु के पौराणिक संदर्भ को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि भृगु द्वारा लात मारने के बावजूद विष्णु भगवान के बड़प्पन में कोई कमी नहीं आती–

''छिमा बड़न को चाहिए,
छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो,
जो भृगु मारी लात।''

नैतिकता से संबंधित रहीम ने जितने पदों की रचना की है उसमें उन्होंने लोकतत्त्व के घमंडी स्वभाव के बारे में चर्चा करते हुए उससे निवृत्त रहने की सीख भी दी है–

''संपत्ति भरम गंवाइ के,
हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है,
दिवस अकासहिं माहिं।।''

जो व्यक्ति अज्ञानवश धन-दौलत के नशे में चूर होकर दुर्व्यसनों में पड़ जाता है, वह अपना सर्वनाश कर लेता है। उसके हाथ में कुछ भी नहीं रह जाता। सब कुछ निकल जाता है।

समाज में फिर वह उसी प्रकार उपेक्षित होकर जीता है जिस प्रकार दिवस के आकाश में किसी कोने में पड़ा चंद्रमा। बुझा-बुझा, फीका-फीका, अनचाहा, अनदेखा।

रहीम के पदों का अवलोकन करने के बाद उनके संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कथन ठीक ही लगते हैं, ''संसार का इन्हें गहरा अनुभव था। ऐसे अनुभवों के मार्मिक पक्ष को ग्रहण करने की भावुकता इनमें अद्वितीय थी। अपने उदार और ऊंचे हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवेदना इन्होंने प्राप्त की है, उसी की रचना अपने दोहों में की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिंदीभाषी भू-भाग में सर्वसाधारण के मुंह पर रहते हैं। इसका कारण है कि जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। रहीम के दोहे 'वृंद' और 'गिरिधर' के समान कोरी नीति के पद्य नहीं हैं, उनमें मार्मिकता है और उनके भीतर से सच्चा हृदय झांक रहा है। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी, वही जनता का प्यारा कवि होगा।'' (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 150)

लोकमंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनों को हृदयंगम कर रहीम ने काव्य रचना की है। अतः जीवन की समग्रता उनके काव्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

रहीम एक ऐसे कवि हैं जो हमारे जीवन में कल भी थे और अब भी हैं क्योंकि नैतिकता से संबंधित बातों पर न जाने वे कब से चर्चा कर रहे हैं, जिसकी प्रासंगिकता आज भी है।

**797-सी, कोटितीर्थ लेन, ओल्ड टाउन,
भुवनेश्वर-751002 (ओडिशा)**

रचनाकारों से अनुरोध

- ❑ **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें।**
- ❑ **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 2000 शब्दों तक है।**
- ❑ **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कलाकृतियां अवश्य भेजें।**
- ❑ **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति मिला लें।
- ❑ **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- ❑ **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- ❑ **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- ❑ **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- ❑ **रचना के अंत में अपना पूरा पता और फोन नंबर अवश्य लिखें।**

रहीम का व्यक्तित्व और कृतित्त्व

सुरेंद्र कुमार

रहीम की रचनाओं के अनेक संग्रह समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण हैं—बाबू ब्रजरत्न दास का 'रहिमन विलास' तथा पं. मायाशंकर याज्ञिक की 'रहीम रत्नावली'। अतः शोध संकलन की दृष्टि से 'रहीम रत्नावली' का महत्त्व रहीम के नाम पर रास पंचाध्यायी तथा रहीम सतसई इत्यादि पहले से होता चला आया है। रहीम संकलन रहीम रत्नावली में निम्न प्रकार से हुआ है—(1) दोहावली, (2) नगर शोभा, (3) बरवै नायिका भेद, (4) बरवै, (5) मदनाष्टक, (6) संस्कृत काव्य, (7) फुटकर छंद तथा पद, (8) श्रृंगार सोरठा, (9) खेट कौतुकम।

दोहावली—रहीम ने एक सतसई लिखी थी वह अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं है। दोहा और सार-संग्रह और गुणगंज नामक दो संग्रह भी चर्चित हैं। रहीम रत्नावली को भी रहीम की कृपा की कृति कहा जाता है। 'रहिमन सतत' नामक इनकी एक और कृति का उल्लेख मिलता है।

नगर शोभा—इस ग्रंथ की सूचना माधुरी पत्रिका के एक लेख में दी गई है। इसमें 142 दोहे हैं। आरंभ में मंगलाचरण दिया गया है। यह एक स्वतंत्र ग्रंथ है। महाकवि देवकी ने भी नगर शोभा में अनेक जातियों की स्त्रियों का वर्णन बड़ी सुंदरता से किया है। यह ग्रंथ रहीम के सैलानी स्वभाव का परिचायक है। नगर शोभा वर्णन में अनेक बरवै मिलते हैं।

बरवै नायिका भेद—यह ग्रंथ अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध है। बरवै छंद में रहीम ने नायिका भेद पर आधारित यह प्रख्यात ग्रंथ लिखा है। रहीम ने तुलसीदास से कहकर बरवै रामायण की रचना करवाई थी—

''कवि रहीम बरवै रचे?
पढ़ये मुनिवर पास।
लखि तेई सुंदर छंद में,
रचना कियेऊ प्रकास।।''

बरवै लेखन की शैली में रहीम हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। हिंदी का यह आदि-नायिका भेद के बरवै साथ मिलाकर लिखे हुए हैं। रहीम समकालीन थे।

बरवै—बरवै की प्राचीन हस्तलिखित प्रति सुलिखित है और प्रत्येक पृष्ठ के हाशिये पर फारसी चित्रकला के बेलबूटे बने हुए हैं। प्रारंभ में छह छंद मंगलाचरण के हैं। शेष 101 बरवै संग्रहित हैं। इनकी भाषा नायिका भेद वाले ग्रंथ से अधिक प्रौढ़ है।

मदनाष्टक—रहीम ने मालनी छंद में इस ग्रंथ की रचना की है। इसकी भाषा रेकता और संस्कृत मिश्रित है।

फुटकर पद—रहीम ने रासपंचाध्यायी नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की थी, किंतु वह उपलब्ध नहीं है। उसके दो पद नाभादास के भक्तमाल में दिए हुए हैं।

श्रृंगार सोरठा—यह काव्य भी खंडित रूप में मिला है। इसके सोरठे अत्यंत भावप्रवण हैं।

रहीम काव्य—यह संस्कृत और हिंदी मिश्रित श्लोकों का संग्रह है। इसमें हिंदू और मुसलमान जाति के समन्वय का प्रयास किया है।

खेट कौतुकम—रहीम कृत यह ज्योतिष ग्रंथ अपने पूर्ण रूप में प्राप्त है। इस ग्रंथ में संस्कृत और हिंदी भाषा का सुंदर मिश्रण द्रष्टव्य है। यह ग्रंथ श्री वैंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई से प्रकाशित है। पं. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि—''भाषा पर तुलसी का सा ही अधिकार रहीम का भी पाते हैं। बरवै नायिका भेद बड़ी सुंदर अवधी भाषा में है।'' रहीम सर्वसाधारण में अपने दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं। पर इन्होंने बरवै, कवित्त, सवैय्या, सोरठा, पद सब में थोड़ी बहुत रचना की है। रहीम का बरवै नायिका भेद निश्चित ही रीतिकाव्य का एक मनोहारी ग्रंथ है। इसमें न केवल नायिका भेद वरन् सौंदर्य के मनमोहक चित्र हैं। रहीम के काव्य में उनके जीवन का व्यापक अनुभव की अभिव्यक्ति मिलती है। सहज होते हुए भी मार्मिक भावपूर्ण कवित्व एवं उक्ति वैचित्र्य का आहरण इनमें देखने को मिलता है। इनके दोहे और बरवै दोनों ही बड़े लोकप्रिय हैं। रहीम ने छोटे-बड़े कई ग्रंथ लिखे। रहीम दोहावली या रहीम सतसई, रहीम रत्नावली, बरवै नायिका भेद, श्रृंगार सोरठा, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, नगर शोभा, फुटकल बरवै, फुटकल कवित्त, सवैय्यै आदि। वे संस्कृत, फारसी और हिंदी के विद्वान थे। स्वभाव से अत्यंत विनोदप्रिय थे। इनकी विनोदप्रियता का मर्मस्पर्शी उद्‌गार और जीवन की विभिन्न अनुभूतियों के चित्रण इनके काव्य को स्मरणीय बनाते हैं और इनके सहज कवित्व प्रतिभा के द्योतक हैं। रीतिकाव्य के क्षेत्र में होने वाला इनका ग्रंथ बरवै नायिका भेद है। जिसमें लोक जीवन के प्रेम और पूर्ण आशा

आकांक्षाओं से भरे अत्यंत मधुर चित्र मिलते हैं।

यह ज्योतिष का ग्रंथ है काव्य नहीं है। खेट का अर्थ है ग्रह और कौतुक का अर्थ है चाल, क्रीड़ा या खेल। रहीम के काव्य विकास और इस ग्रंथ की चर्चा उनके नाम का अविभाज्य अंग बन गई है। यही कारण है कि वे इतिहास और काव्य जगत में अब्दुर्रहीम खानखाना नाम से प्रख्यात हैं। खानखाना की उपाधि प्राप्त होने से पूर्व उनके नाम के पहले 'मिर्जा' शब्द जोड़ा जाता था। यह भी उनके नाम का पूर्वांश था। अकबर ने उनका नाम मिर्जा खां रख दिया था। इतिहासकार इसी मिर्जा शब्द को बाद तक भी उनके नाम के साथ जोड़कर उन्हें मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना कहकर पुकारते रहे। अपने युग के सर्वाधिक धनी मानी सामंतों में से होने तथा दान आदि में अपेक्षाकृत अधिक उदारता बनाए रखने के कारण लोग इन्हें नवाब या नव्वाब कहकर भी पुकारा करते थे। कुछ स्थानों पर इतिहासकारों ने मिर्जा अब्दुर्रहीम बैरम अथवा मिर्जा रहीम इब्ने बैरम नाम का भी उल्लेख किया है।

रहीम के माता-पिता—बैरम खां खानखाना रहीम के पिता थे। जमानखां मेवाती की सुंदर व गुणवती कन्या सुल्तान बेगम रहीम की माता थीं। रहीम की मां की सगी बड़ी बहन का विवाह सम्राट हुमायूं से हुआ था। इस रिश्ते से हुमायूं तथा बैरम खां साढू थे।

रहीम का जन्म : एक शुभ शकुन—हिजरी सन् 964 में बैरम खां का प्रताप अपने पूर्ण यौवन पर था। उन्होंने हेमू को पानीपत के द्वितीय युद्ध में पराजित करके समाप्त कर दिया था। रहीम का जन्म सन् 1556 ई. को हुआ था। इस शिशु का नाम रखा गया अब्दुर्रहीम। वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्त कर बैरम खां को कितना आनंद हुआ होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अतः इस समाचार को बैरम की सेना ने एक महान शुभ शकुन के रूप में ग्रहण किया।

अनाथ रहीम और अकबरी दरबार—रहीम के जीवन में उतार-चढ़ाव विधाता ने आरंभ से ही लिख दिए थे। वे केवल 4 वर्ष के थे कि जीवन नभ पर विपत्ति की काली घटा घिर आई। राजनीतिक उखाड़-पछाड़ के पश्चात् पूर्ववत सम्मान प्राप्त करके बैरम खां हज करने के लिए मक्का जाते हुए गुजरात की राजधानी पाटन में ठहरे और एक दिन सरोवर में नौका विहार के पश्चात् तट पर उतरे। तभी अफगान सरदार मुबारक खां लुहानी ने वृद्ध बैरम खां का वध कर दिया। यह घटना 31 जनवरी, 1571 की संध्या की है। अकबर ने बड़ी उदारता से इनको शरण दी और रहीम का पालन-पोषण धर्म पुत्र की भांति किया गया। थोड़े समय के पश्चात् उसने रहीम की विधवा माता सुल्ताना बेगम से विवाह कर लिया था। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी अकबर की उदार धर्मनिरपेक्ष नीति के अनुकूल ही हुई थी। कदाचित इसलिए रहीम का काव्य हिंदू जनता के गले का कंठहार है। दिनकरजी ने उचित ही कहा है अकबर दीने-इलाही में हिंदुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने उसे कविताओं में उससे भी बड़ा स्थान दिया। रहीम को ऐसी शिक्षा दी कि वे अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिंदी आदि भाषाओं के जानकार ही नहीं, समर्थ कवि बन सकें।

विवाह—अकबर ने उनका विवाह अपनी धाय माहम अनगा की बेटी माहबानू से करवाया।

प्रथम गौरव—रहीम जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। अकबर उन्हें बड़े से बड़े कार्य सौंपता और रहीम अपनी आयु और अनुभव की अपेक्षा कई अधिक कुशलता से उन कार्यों को संपन्न कर लेते थे। अगस्त सन् 1573 ई. में गुजरातियों ने जब सिर उठाया तो अकबर ने इस अवसर पर सेना के मध्य भाग की कमान देकर रहीम को गौरवान्वित किया।

द्वितीय गौरव गुजरात की सूबेदारी—गुजरात विजय के पश्चात् रहीम ने तीन वर्ष सरस्वती एवं लक्ष्मी की आराधना में एक साथ व्यतीत किए। धन-जन की दृष्टि से यह प्रांत अकबर के लिए कामधेनु था। अकबर ने खूब सोच-विचार कर अपने प्रिय मिर्जा खां को ही गुजरात की सूबेदारी के लिए चुना

हल्दीघाटी का ऐतिहासिक युद्ध—रहीम बहुत दिनों सूबेदारी नहीं कर पाए। क्योंकि सम्राट ने इसी वर्ष वीर केसरी राणाप्रताप को पराजित करने की योजना बनाकर वह रहीम को कुशल शासक से अधिक कुशल सेनापति बनाना चाहता था। अतः राणा के साथ ऐतिहासिक युद्ध के लिए हल्दीघाटी के समान पीली मिट्टी की उस भयंकर घाटी में रहीम को भी बुला लिया गया।

मीर अर्ज का पद—अकबरी दरबार में कुछ ऐसे पद थे जो विशिष्ट अमीरों को ही दिए जाते थे। मीर अर्ज का पद भी उन्हीं में से था। मीर अर्ज के लिए आवश्यक था कि वे सम्राट तथा जनता दोनों का ही विश्वासपात्र हो। सम्राट ने विश्वासपात्र एवं सच्चे अमीर रहीम को मुस्तफिल मीर अर्ज नियुक्त कर दिया।

अजमेर की सूबेदारी—यह पद आराम का था किंतु रहीम के भाग्य में प्रत्येक कर्मठ व्यक्ति की भांति आराम था ही नहीं। तभी अजमेर के उपद्रव का समाचार आया। रहीम का नाम अकबर की जबान पर तथा काम उसके मन पर चढ़ा हुआ था। अकबर ने रहीम को ही अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया और रणथंभोर का किला जागीर में देकर उन्हें अजमेर भेज दिया।

शहजादा सलीम के अतालिक—शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से प्राप्त संतान का न केवल नाम सलीम रखा गया था अपितु उसे प्यार में शेखू बाका भी कहा जाता था।

अता वेग का पद—अतालिक (राज कुमार के शिक्षक) का कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण होते हुए भी आराम का था। सम्राट भी यह जानते थे। अतः अकबर ने एक अन्य उच्च पद का भार रहीम को सौंप दिया इसका अधिकारी उस समय अता वेग कहलाता था। लोग अतावेगी को बहुत बड़ा गौरव का पद मानते थे। इस पद पर नियुक्त व्यक्ति को शाही घोड़ों की

व्यवस्था तथा अस्तबल की देख-रेख करनी होती थी।

खानखाना की उपाधि—चौगुनी सेना रखते हुए भी मुजफ्फर बुरी तरह से हार कर खंभात की ओर भाग गया। मुजफ्फर हार तो गया किंतु उसने हिम्मत न छोड़ी और लूट के धन के बल पर फिर उतनी ही सेना एकत्रित कर ली। रहीम के भाग्य ने उसका साथ दिया। उसकी दूरदर्शिता तथा रिजर्व में हाथियों की पीठ पर लदी बन्दूकों ने मुजफ्फर को भागने पर विवश कर दिया। उसके लगभग 500 सैनिक पकड़े गए, अधिकांश ने क्षमा मांग कर रहीम की सेना में स्थान प्राप्त किया। अकबर ने फतेहपुर सीकरी में जब पहली के पश्चात् दूसरी विजय का समाचार सुना तो प्रसन्नता से, रहीम का मनसब पंचहजारी कर दिया। अब रहीम खानखाना हो गए। जो उपाधि उसके पिता को वृद्धावस्था में प्राप्त हुई वही रहीम से अट्ठाइस वर्ष की आयु में प्राप्त कर ली।

सम्राट के साथ काश्मीर-परिभ्रमण—अकबर के हृदय में काश्मीर भ्रमण की ललक बहुत पहले से थी। अनुकूल अवसर पाकर योजना बनाई गई। रहीम को साथ लेने का निश्चय हुआ। अकबर का परिवार भी साथ रहता था। लगभग एक मास तक प्रकृति की इस सुन्दर लीला भूमि का आनंद लेकर, अकबर काबुल की ओर बढ़ गया।

मुगल दरबार का उच्चतम पद—'वकील मुतलक' मुगल दरबार का उच्चतम पद था। साम्राज्य के सर्वप्रथम वकील होने का गौरव खानखाना के पिता बैरम खां को प्राप्त था। टोडरमल के स्वर्गवास होने के कारण वह पद रिक्त था। रहीम का भाग्य उस समय जोरों पर था। सम्राट ने उस पद पर भी रहीम को ही नियुक्त किया और जौनपुर की जागीर दी। रहीम को इस उच्चतम पद पर लगभग एक वर्ष तक बैठने का सुअवसर मिला। पौने तीन वर्ष का समय, खानखाना के लिए मान-सम्मान, शांति एवं सुख की दृष्टि से अद्वितीय था। हिंदी के अन्य ग्रंथों की रचना भी की। अकबर के राज्य का शांतिकाल, अनेक भाषाविदों का निकट संपर्क, कवियों, लेखकों तथा संगीतज्ञों की संगति, शांत एवं सुखी जीवन और सबसे बढ़कर उनकी काव्य प्रतिभा—ये सब ऐसी परिस्थितियां थीं कि जिनमें रहीम क्या, कोई भी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति अच्छी कृति समाज को दे सकता है। रहीम के साहित्यिक जीवन में भी यह समय अद्वितीय सिद्ध हुआ।

सिंध विजय—यहां सिंध विजय के, रहीम के निश्चय का वर्णन है, अकबर की आज्ञा का नहीं। वस्तुतः अकबर की आज्ञा कंधार पर विजय करने की थी और इसी के लिए रहीम के सेनापतित्व में लश्कर ने लाहौर से कंधार को कूच भी कर दिया था। किंतु खानखाना अकबर की इच्छा के विपरीत कंधार से पूर्व ठठा लेना चाहते थे। अतः वे शाही फरमानों में ही नहीं अपितु अपने व्यक्तिगत पत्रों में भी, खानखाना को कंधार विजय के लिए प्रेरित कर रहे थे। खानखाना की बात बड़ी पुष्ट थी। अतः सम्राट ने भी बाद को ठठा पर अधिकार करने की आज्ञा दे दी थी।

उत्तर के पश्चात् दक्षिण—तृष्णा का कभी अंत नहीं होता। यद्यपि बंगाल, उड़ीसा, पंजाब, सिंध तथा गुजरात आदि उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम के सभी भाग अकबर के अधिकार में आ गए थे, परंतु अभी दक्षिण शेष था। इस प्रदेश की स्वतंत्रता सम्राट की आंखों में पहले से ही खटकती थी। इसके अतिरिक्त बराट, बीदर, अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकोंडा इत्यादि रियासतों वाला दक्षिण प्रदेश आर्थिक दृष्टि से भी पर्याप्त लाभ का क्षेत्र था।

आष्टी का अविस्मरणीय युद्ध—आष्टी की महान पराजय ने बीजापुर तथा गोलकोंडा दोनों की कमर तोड़ दी थी। रहीम ने शाहजादे मुराद से योजना के लिए सहायता की प्रार्थना की परंतु खुशामदियों ने मुराद के कान भर रखे थे। अतः उसने इस लाभान्वित योजना को अस्वीकृत कर दिया। सम्राट ने रहीम को दक्षिण से वापस बुला लिया।

दक्षिण कमान मे पुनः नियुक्ति—दक्षिण की बागडोर शाहजादा दानियल को सौंपी गई। सम्राट स्वयं भी दक्षिण गया और दक्षिण कमान में रहीम पुनः नियुक्त हुए। उन्होंने मई मास में अहमदनगर के किले पर पुनः घेरा डाल दिया।

दानियाल तथा अकबर की मृत्यु—दक्षिण कार्य की प्रगति प्रारम्भ ही हुई थी कि दानियाल की जान भी शराब ने ले ली। दानियाल के बल पर ही, रहीम दक्षिण में अबुल फजल जैसों को नचाता रहा था। अतः उसकी मृत्यु से, रहीम पर न केवल दामाद की मृत्यु का वज्रपात हुआ अपितु प्रतिष्ठा को भी जबरदस्त धक्का लगा। वैसे इस बीच रहीम तथा उसके पुत्र मिर्जा इरीच बहादुर दक्षिण के दो दुर्दमनीय सरदारों मलिक अंबर तथा राजू दक्षिणी से उलझते रहे थे। तभी विश्व विख्यात सम्राट अकबर संसार से उठ गया।

जहांगीर का का राज्यकाल और रहीम—सलीम ने कई बार विद्रोह करके बूढ़े पिता के हृदय को भारी कष्ट दिया था। अकबर ने भी मृत्यु से पूर्व सलीम (जहांगीर) को स्पष्ट रूप से अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। एक सप्ताह तक पिता की मृत्यु का शोक मनाने के पश्चात् जहांगीर 36 वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ हुआ। खानखाना नीतिमान व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में अन्यों को प्रभावित करने की अद्भुत शक्ति थी। जहांगीर भी प्रभाव में आए बिना न रहा। खानखाना को 63 वर्ष की अवस्था में अपयश भी भोगना पड़ा और अहमदनगर का जीता जिताया दुर्ग उनके हाथ से निकल गया। यद्यपि इस हार का उत्तरदायित्व रहीम पर नहीं था।

दक्षिण में पुनः नियुक्ति—विरोधी लोग दरबार में बैठकर चाहे जो कह लेते हों, किंतु रहीम के अतिरिक्त दक्षिण का कार्य किसी अन्य के बस का न था। मलिक अंबर की रगें केवल रहीम को पहचानती थी। अतः उनके लौटते ही दक्षिण से नित्य प्रति बुरे-बुरे समाचार प्राप्त होने लगे थे। जहांगीर को बड़ी चिंता हुई। सभी

ने गंभीर रीति से विचार करके रहीम को पुनः दक्षिण भेजने का निश्चय किया। फलस्वरूप दरबार में बुला कर उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया गया।

शाहनवाज खां तथा रहमानदाद की मृत्यु—खानखाना अपने पुत्रों की सहायता से दक्षिण के प्रबंध को सुचारू रूप दे ही रहे थे कि वीरता के कारण छोटे खानखाना के नाम से पुकारे जाने वाले उसके वीर किंतु पियक्कड़ पुत्र शाहनवाज खां की तैंतीस वर्ष की अल्पायु में शराब ने जान ले ली। मुसीबत कभी अकेली नहीं आती। खानखाना की पलकें सूखने भी न पाई थीं कि तभी अर्ध-स्वस्थ अवस्था में भाई दाराव की सहायता से लौटकर चोगा उतारते हुए ठंड लगने के तीसरे दिन ही रहमानदाद की मृत्यु हो गई।

रहीम विद्रोही शाहजहां के साथ—शाहजहां की सफलताओं तथा उसके व्यक्तिगत गुणों के कारण साम्राज्ञी नूरजहां उससे सशंकित थी। विशेषतः उस समय जबकि जहांगीर का स्वास्थ्य नित्य प्रति चौपट होता चला जा रहा हो। उसने अपनी कपटपूर्ण चालों से जहांगीर को शाहजहां के विरुद्ध कर दिया।

रहीम पुनः सेनापति—महावत खां ने रहीम के प्रति आदर और उदारता दिखाई थी। किंतु वह उन्हें दिल्ली भेजने तथा वहां से पुनः लाहौर की ओर कूच करवाने में सफल हो गया था। अतः महावत के भागने के समय, रहीम सम्राट के आस-पास ही थे। अपने प्रति किए गए अत्याचारों तथा दाराब की हत्या को भी वे न भूले थे। वे उस दुष्ट से प्रतिशोध लेना चाहते थे। अतः रहीम ने सम्राट से नम्रतापूर्वक उस नमक हराम को दंड देने की आज्ञा मानी। बेगम ने खुश होकर अजमेर का सूबा भी प्रदान किया, साथ ही सेनाओं सहित अमीर भी साथ कर दिए गए।

रहीम का प्राणान्त—रहीम के वृद्ध शरीर में अब इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि इन महान शाही सेनाओं के भार के सहन कर पाते। सारा जीवन दौड़-धूप में बीता था। प्राण प्रिया पत्नी तथा अपने चारों वीर पुत्रों की मृत्यु की वेदना। वे अंतिम विजय-यात्रा का श्रीगणेश भी ठीक से न कर पाए थे कि लाहौर में ही बीमार पड़ गए। उन्हें दिल्ली बहुत प्रिय थी। वे दिल्ली में मरना चाहते थे। यहीं हुमायूं के मकबरे के समीप उन्होंने अपनी बीवी का मकबरा बनवाया था। दिल्ली आकर उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर दी। अतः उन्हें उसी मकबरे में दफनाया गया।

एक भ्रम और उसका निराकरण—रहीम की जीवनी का सिंहावलोकन करने पर हृदय में यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि उनका सारा जीवन राजनीति की गुत्थियां सुलझाने तथा युद्धों की मुसीबतों में व्यतीत हुआ, फिर उन्होंने काव्य रचना कब की? परंतु यह प्रश्न कोरा भ्रम है। प्रतिभा संपन्न व्यक्ति चाहे किसी भी परिस्थिति में रहें, कार्य कर ही डालते हैं। रहीम के समसामयिक बीरबल, टोडरमल इत्यादि भी बड़े व्यस्त थे, परंतु वे भी काव्य रचना करते थे। अतः रहीम जैसे जन्मजात प्रतिभा संपन्न व्यक्ति के साहित्य को देखकर भी किसी प्रकार के भ्रम की गुंजाइश नहीं है।

व्यस्त जीवन में अवकाश के क्षण—

चार वर्ष की अवस्था से आगे का विद्यार्जन तथा बाल्यकाल का समस्त समय जो अकबर की व्यक्तिगत देख-रेख में व्यतीत हुआ। सोलह वर्ष तक की अवस्था का यह समय एकदम शांति, सुख और कलापूर्ण दरबारी वातावरण में व्यतीत हुआ था।

सत्तरहवें वर्ष में, रहीम को सम्राट अकबर के साथ गुजरात विजय प्राप्त हुई। इसके पश्चात् वे लगभग तीन वर्ष दरबार में रहे। गुजरात के प्रान्तपति इस अवधि के पश्चात् नियुक्त हुए थे। इन वर्षों का उपयोग भी रहीम ने साहित्य सेवा में किया।

गुजरात की सूबेदारी के पश्चात् रहीम दो वर्ष महाराणा प्रताप के साथ उलझे रहे। वहां से लौटने के पश्चात् 24 वर्ष में उनकी नियुक्ति 'मीर अर्ज' के सम्मानपूर्ण पद पर हो गई थी। इस पद पर कार्य करने का अवसर तो उन्हें थोड़े ही दिन मिला किंतु जितने भी दिन दरबार में रहे, मौज से रहे। अतः इस समय के शांत एवं भारमुक्त मस्तिष्क को रहीम ने अवश्य ही साहित्य रचना में लगाया होगा। स्मरणीय है कि यह अवकाश अत्यंत अल्प था।

गुजरात से मुक्त होने के पश्चात् रहीम दरबार में उपस्थित हुए। तब से लेकर सिंध के लिए रवाना होने तक रहीम को पुनः स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। इस बार उन्होंने शाही परिवार के साथ काश्मीर की सुरम्य घाटियों का भ्रमण किया था। लगभग पौने तीन वर्ष का यह समय रहीम ने मस्ती के साथ व्यतीत किया। इसी बीच नवंबर के अंतिम सप्ताह में, उन्होंने तुर्की ग्रंथ 'वाकयाते बाबरी' का फारसी अनुवाद सम्राट अकबर को समर्पित किया। इसी अवकाश में उन्हें मुगल साम्राज्य के उच्चतम पद पर कार्य करने का अवसर मिला। खानखाना की उपाधि उन्हें पूर्व ही मिल चुकी थी। सुख-सम्मान, सुविधा तथा संपन्नता आदि सभी दृष्टियों से 32-34 वर्ष की भरपूर तरुणावस्था का यह कालांश रहीम के जीवन का अद्वितीय समय था। ऐसे जीवन के पौने तीन वर्ष काव्य रचना की जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक काम्य है।

उन्हें सिंध विजय के पश्चात् मार्च, सन् 1593 से सितंबर, 1593 तक छह महीने के लिए दरबार में रहने का एक और स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् रहीम दक्षिण की विजयों में व्यस्त रहे। कुल मिलाकर दक्षिण में उन्होंने लगभग 30 वर्ष व्यतीत किए। यद्यपि वे समय-समय पर दरबार में बुलाए जाते रहे। पदच्युत सेनापति के रूप में लगभग दो वर्ष कालपी में काटे थे। यह अवकाश पहले अवकाशों की भांति न तो शांतिपूर्ण था और न संपन्नतापूर्ण। उन दोहों की रचना इसी समय की प्रतीत होती है, जिनसे उनकी विपन्नता, खिन्नता तथा विरक्ति इत्यादि टपकी पड़ी रही है।

मर्मांतक पीड़ा के उस अवकाश के पश्चात् अलग और अंतिम समय तब मिला जब

जहांगीर ने उन्हें दोबारा खानखाना की पदवी देकर सम्मानित किया। संभव है भक्ति के कुछ दोहे उसी समय लिखे गए होंगे।

रहीम का व्यक्तित्व—जहां तक रहीम का संबंध है, वे वीर सैनिक, कुशल सेनापति, सफल प्रशासक, अद्वितीय आश्रयदाता, वास्तविक अर्थों में गरीब-नवाज, विश्वासपात्र मुसाहिब, नीति कुशल नेता, महान कवि, भाषाविद्, उदार कला पारखी इत्यादि सभी कुछ एक साथ थे। यही कारण है कि न केवल इतिहासकारों ने उनकी प्रशंसा की है, अपितु कवियों ने उनके संबंध में सुंदर-सुंदर रचनाएं प्रस्तुत की हैं। उनके व्यक्तित्व का एक पहलू और भी था जिसे हम बाह्य आकर्षण का शारीरिक सौंदर्य कह सकते हैं। रहीम के माता-पिता दोनों ही सुंदर स्वस्थ, प्रियदर्शी और पुष्ट थे अतः संतान का सुंदर होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं। चित्रकार उनके व्यक्तित्व से चित्र-निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करते थे और दरबारी अपनी बैठकों में बालक रहीम का चित्र सजाते थे। सम्राट अकबर तो किसी न किसी बहाने उन्हें अधिकांशतः अपने पास रखते ही थे, उनके पिता के शत्रु भी रहीम को स्नेह से देखते थे।

सेनापति रहीम—अकबर के दरबार में खानखाना आयु में छोटे थे तो क्या, सैनिक कार्यों में बचपन से ही बेजोड़ थे। उन्हें तीर और तलवार चलाने की अद्भुत क्षमता प्राप्त थी। कवियों ने रहीम के इन गुणों पर काव्य रचनाएं प्रस्तुत की हैं। रहीम के समकालीन लेखक ने तो उनकी शस्त्र-विद्या का और भी विस्तार से वर्णन किया है। युद्ध संबंधी मामलों में सेनापति रहीम बहुत ही सूझ-बूझ से काम लेते थे। युद्ध में मुजफ्फर के महमूद नगर तक आ जाने के समाचार को उन्होंने गुप्त रखा था। वे अपने आप तो इस प्रकार के कार्य कर लेते थे किंतु शत्रु पक्ष की चालाकियों और षड्यंत्रों से सदैव सावधान रहते थे। वैसे तो खानखाना का समस्त जीवन ही शौर्य का मूर्तिमान रूप है। रहीम के शौर्य और साहस के संबंध में गाए गए गीत कोरी कवि कल्पना नहीं ऐतिहासिक विवरणों से संपुष्ट हैं। अपने सेनानायकत्व और रण कौशल के बल पर ही रहीम ने अनेक बार अपने से कई गुनी शक्ति वाले शत्रु को भी पराजित किया था। थोड़ी सेना से शत्रु की भारी वाहिनी को खदेड़ देना ही रहीम के सेनापतित्व की एक विस्मयकारी विशेषता थी। वे केवल वीर, साहसी और दूरदर्शी ही नहीं, नीति कुशल भी थे। शत्रु-मित्र को खूब पहचानते थे और संधि विग्रह में दक्ष थे। दक्षिण के मलिक अंबर तथा सिंध के मिर्जा जानी से की गई संधियां इस तथ्य का प्रमाण हैं। सेनानायकत्व से संबंधित रहीम के गुणों का परिचय कराने में पूरा ग्रंथ तैयार हो सकता है। क्योंकि उन्होंने जिन विषम परिस्थितियों में सफलता प्राप्त की वे उनके जैसे सेनापति का ही कार्य था। रहीम की सफलता का रहस्य यही है कि वे असहयोगियों का भी विश्वास प्राप्त करते थे। अनुकूल व्यूह रचना, टुकड़ियों का दक्षिण, वाम एवं मध्य पक्षों में विभाजन तथा आवश्यकता के समय सैनिकों को दाएं-बाएं खिसकाते रहना रहीम के सेनापतित्व का विशिष्ट अंग था।

दानवीर रहीम—अकबर का काल संपन्नता और सुख का काल था। उसके सरदारों और मुसाहिबों के घर विपुल संपत्ति एकत्रित थी। कुछ इस संपत्ति का उपयोग विलास के लिए करते थे और कुछ दान-धर्म आदि के लिए। इनमें तीन बहुत प्रसिद्ध थे—मिर्जा गयास बेग, बीरबल और रहीम। बीरबल की दान गाथाएं भी इतिहास प्रसिद्ध हैं। किंतु इन सबके सिरमौर अब्दुर्रहीम खानखाना थे। उनकी युद्ध-वीरता तो इतिहास के कतिपय पन्नों तक ही सीमित है किंतु दानवीरता जन-जन की जिह्वा पर आज भी अंकित है। लोग रहीम को कल्पतरु समझते थे। रहीम जब दान करने बैठते थे तो द्रव्य की ढेरी लगा देते थे और आगंतुक को मुट्ठी भर दे दिया करते थे। जितना मुट्ठी में आया उसके भाग्य का। दान देते समय आंख उठाकर ऊपर देखना रहीम के सिद्धांत के विरुद्ध था। ऐसे निस्पृह दानी के लिए आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि रहीम वैसे भी अपने युग के पारस समझे जाते थे।

भोजन दान—रहीम के जीवन का दूसरा कार्यक्रम था—भोजन दान। उनका भोजन सामान्य सा न होकर एक भोजन यज्ञ होता था। कहते हैं कि उनका लंगर सदैव और सबके लिए खुला रहता था। जब खानखाना भोजन करते थे तब पद और मर्यादा के अनुसार एक साथ सैकड़ों को भोजन मिलता था। वे खाद्य पदार्थों की रकाबियों में ही कुछ रुपए और कहीं कुछ अशरफियां रख देते थे। इन दैनिक दान कार्यों के अतिरिक्त विशिष्ट याचकों, गुणियों, साधुओं और सैनिकों को भी बराबर दान-दक्षिणा मिलती रहती थी। अन्यान्य दानी तो मांगने पर देते हैं परंतु रहीम बिना मांगे दान दिया करते थे। रहीम जैसे असामान्य दानी थे, वैसे ही उनके असामान्य याचक भी थे। ऐसे याचकों के अनेक वर्णन लेखकों ने उद्धृत किए हैं। वे ऐसी धनराशियां अपने सेवकों को प्रायः देते रहते थे। उनके सेवक ऋण की चिंता भी नहीं करते थे।

कवियों के अद्वितीय आश्रयदाता रहीम—यों तो राज-दरबार कवियों को युगों-युगों से आश्रय करते चले आए हैं किंतु इस संबंध में रहीम की उदारता असीम थी। इतिहास साक्षी है, कि भारत ही नहीं अपितु समस्त एशिया एवं यूरोप में रहीम की टक्कर का आश्रयदाता कोई दूसरा न था। खानखाना के औदार्य एवं आश्रयदायित्व की धूम इतनी मच गई कि देश-विदेश के कवि उनके दरबार में इस प्रकार खिंचे चले आते थे जैसे भ्रमर कमल पर अथवा पतंगा दीपक पर। अपने आश्रित कवियों पर रहीम ने एक अवसर पर हजारों और लाखों अशर्फियां लुटाई थीं। इसलिए अब्बास के दरबार में जो घटना घटी उसी की पुनरावृत्ति का आभास अकबर और जहांगीर के दरबार में भी मिल जाता था। उदारता और योग्यता के लिए जितना गुण-गान, रहीम का हुआ है उतना संभवतः अकबर का भी नहीं। वे आते-जाते कवियों के प्रति भी उतने ही उदार थे। वस्तुतः उदारता उनकी आदत

थी और काव्यश्रय उनका व्यसन। रहीम के दरबार में फारसी से भी अधिक आश्रय हिंदी को प्राप्त था। रहीम के पुरस्कार यहीं तक सीमित नहीं थे। वे इतना दे डालते थे कि उनके द्वारा पुरस्कृत कवि को कभी-कभी जीवन भर और किसी के दरबार में जाने की आवश्यकता नहीं रहती थी। भारतेंदुजी ने लिखा है—''इन मुसलमान हरि जजन पै कोटिक हिंदुन वारिए।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि रहीम कवियों को न केवल विपुल द्रव्य देकर आश्रय प्रदान करते थे, अपितु उन्हें सम्मानित भी करते थे। सम्मान प्रदान करने तथा द्रव्य दान देने में वे अद्वितीय थे। संभवतः विगत चार शताब्दियों में, साहित्य को इतना अधिक आश्रय प्रदान करने वाला दूसरा व्यक्ति उत्पन्न ही नहीं हुआ और विशेषतः ऐसा व्यक्ति जो स्वयं भी कवि हो।

कविवर रहीम—रहीम अद्वितीय युद्धवीर एवं अतिशय उदार दानवीर थे। ये दोनों ही गुण उन्हें अमर बनाने के लिए पर्याप्त थे। किंतु इनकी भी सीमा होती है। उन्हें हिंदी, संस्कृत, फारसी, अरबी, तुर्की तथा कतिपय यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान था। इसलिए वे भारत में ही नहीं भारत से बाहर भी प्रसिद्ध हैं।

फारसी और रहीम—फारसी मुगल वंश की राज-भाषा थी। उस समय ईरान में फारसी के इतने ऊंचे कवि मौजूद न थे, जितने भारत में थे। रहीम फारसी कवियों के न केवल अद्वितीय आश्रयदाता थे अपितु स्वंय भी उत्कृष्ट कवि थे। सम्राट अकबर ने उन्हें यदि काव्य और कला की अर्चना में ही लगे रहने दिया होता तो साहित्य का इतिहास आज कुछ और ही होता है।

संस्कृत और रहीम—कभी समय था कि जब भारत के कण-कण से संस्कृत श्लोकों की ललित-कलित ध्वनि निःसृत होती थी। किंतु देश की पराधीनता के साथ संस्कृत का भी पराभव निश्चित था। कारण प्रत्येक विजेता, शासन के साथ ही अपनी भाषा भी लाता है उदार जातियां विजितों की सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन एवं संरक्षण का भी प्रयत्न करती हैं जबकि अनुदार जातियां ऐसा नहीं कर पाती।

हिंदी और रहीम—रहीम युग द्रष्टा कवि थे। उन्होंने तुर्की, फारसी और संस्कृत इत्यादि में प्रमुख अभाव को देखा उसे पूर्ण करने की कोशिश की। दुर्भाग्य यह रहा कि महामनीषी को काव्य-रचना का यथेष्ट अवसर प्राप्त न हो सका। यहां तो इतना ही निवेदन करना पर्याप्त है कि उन्होंने अपने युग की आवश्यकताओं को समझ लिया था। वे जानते थे कि भारत की कोटि-कोटि जनता का लाभ न अरबी, फारसी से हो सकता है और न तुर्की एवं संस्कृत से। काव्य संदेश को सामान्य जनमानस में उतारने वाली यदि कोई सर्वाधिक उपयोगी भाषा है तो वह हिंदी ही है। यही कारण है कि उन्होंने सर्वाधिक मात्रा में काव्य रचना हिंदी में की। दरबार में सम्मान प्राप्त कर आगे बढ़ने के लिए हिंदी काव्य-सृजन को एक नई प्रेरणा प्रदान की।

उर्दू और रहीम—रहीम का समस्त जीवन सैनिकों के साथ व्यतीत हुआ था। उस लक्ष्य की सेना में कुछ सिपाही तूरानी थे, कुछ ईरानी और कुछ हिंदुस्तानी। इन सबके सामूहिक निवास से सेना में एक कामचलाऊ भाषा गढ़ ली गई थी। जिसे लश्करी जुबान या उर्दू कहा जाता था। रहीम के काल तक उर्दू साहित्यिक भाषा न बन सकी थी। हमारे विचार से रहीम ने भी उर्दू या रेखता में प्रथकतः कविता नहीं की। फारसी शब्दावली के मिश्रित होने के कारण हिंदी ही कहीं-कहीं उर्दू जैसी लगने लगी है खिचड़ी भाषा का प्रयोग बंद कर दिया था। आयु के विकास के साथ उनकी काव्य चेतना विकसित होती गई थी और उसमें खिचड़ी भाषा के लिए कोई स्थान शेष न रहा था।

विदेशी भाषा और रहीम—हिंदी और संस्कृत तो भारतीय भाषाएं हैं ही, फारसी लगभग इसी श्रेणी में आ गई थी क्योंकि वह तत्कालीन प्रशासकों की राज्य भाषा थी। रहीम ने तुर्की भाषा में अच्छी गति प्राप्त कर ली थी। अरबी भी विदेशी भाषा थीं। फारसी, उस समय के हिंदू मुसलमान सभी सीखते थे। अरबी से मुसलमान ही परिचित रहते थे परंतु कुरान की कुछ आयतें याद करने का मतलब अरबी सीखना नहीं था। रहीम को अरबी का 'पूरा विद्वान' माना जाता है और यह स्वीकार किया जाता है कि उन्हें अरबी काव्य रचना की गति प्राप्त थी। यूरोपीय भाषाएं भी रहीम ने सीखी थीं और अकबर की ओर से उन भाषाओं में पत्र भी लिख देते थे। विभिन्न स्वदेशी और विदेशी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने में रहीम की प्रतिभा अद्वितीय थी। वे अपने युग के कदाचित सबसे अधिक भाषाएं जानने वाले और अधिकांश में काव्य-रचना की क्षमता रखने वाले विलक्षण विद्वान थे।

हिंदुत्व प्रेमी रहीम—विश्व के सभी तथाकथित धर्मों के पुरोहित अपने हाथ में कुछ विशिष्ट अधिकार रखते चले आए हैं। इस्लाम भी इसका अपवाद नहीं है। जिन ग्रंथों के आधार पर मुल्ला तथा इमाम आदि, विशिष्ट समस्याओं के निराकरण संबंधी अधिकार अपने पास रखते थे, अकबर ने उन्हीं ग्रंथों में से एक ऐसे उद्धरण एकत्रित करवा लिए थे जिनके अनुसार राजा की सत्ता को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है। जिसके अनुसार विशिष्ट अधिकार इमामादि के स्थान पर सम्राट का था। रहीम ऐसे ही वातावरण की उपज थे। वे जन्म से मुसलमान थे और अंत तक मुसलमान ही रहे। इस्लाम हित के कार्य भी निरंतर करते रहे। उन्होंने मक्का यात्रियों के लिए करमुक्त जहाज चलाने की योजना बनाई। परंतु उनके व्यक्तित्व एवं काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदू एवं हिंदुत्व के प्रति रहीम के मन में महान आस्था थी। रासलीला और नृत्य के समय पीतांबर का फहरना रहीम के हृदय में उतनी ही गहरी अनभूति उत्पनन करता था जितनी कि अन्य किसी भक्त के हृदय में। उतनी ही उनके श्लोकों को पढ़कर प्रतीत होता है। जैसे रहीम स्वयं भगवान राम तथा कृष्ण की मूर्ति के चरणों में याचना कर रहे हों। स्पष्ट है कि

रहीम की दृष्टि में सुख, उच्च पद, बड़ों की जान-पहचान से नहीं अपितु प्रभु की कृपा से मिलता है। रहीम का अंतिम जीवन पात-शाप से आपूरित रहा है। यही है रहीम का हिंदुत्व प्रेम। इतना ही नहीं जिस प्रकार भाग्य में बदा दुख हटाए नहीं हटता उसी प्रकार भाग्य में बदा सुख भी प्राप्त होकर ही रहता है। रहीम के काव्य को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि रहीम की हिंदू परंपराओं, रीति-रिवाजों और धर्मग्रंथों के प्रति गहरी आस्था थी। इस आस्था और ज्ञान का प्रयोग जिस विस्तार एवं शुद्धता के साथ रहीम ने किया है वैसा अन्य मुसलमान कवियों में सहज ही प्राप्त नहीं।

रहीम के काव्य का आद्योपांत अध्ययन कर लेने के पश्चात् एक भी स्थल ऐसा प्राप्त नहीं होता जिससे हिंदुत्व के प्रति किसी प्रकार की अनास्था या अशुद्धि प्रकट हो। शास्त्रीय अंतर्कथाओं, घटनाओं एवं तथ्यों को वे कुछ इस प्रकार प्रकट करते हैं कि जिससे उनका हिंदुत्व प्रेम तो प्रकट होता ही है, साथ में संस्कृत कवियों जैसी पुनीत मौलिकता भी प्रतिभासित होती है। रहीम के हृदय में वैष्णवी श्रद्धा की परम पुनीत एवं प्रबल मंदाकिनी प्रवाहित थी। उसी पुण्य जल के प्रताप से रहीम के मन की संपूर्ण धार्मिक कटुता धुल-धुल कर समाप्त हो गई थी। जितनी दिव्यता, निष्ठा एवं वैष्णवी सूझ-बूझ उनके काव्य में प्राप्त होती है उतनी अनेकानेक तथाकथित हिंदुओं के काव्य में भी नहीं है। अतः यह मुसलमान कवि उतने ही आदर के पात्र हैं जितने कि सूर, तुलसी और नंददास। नवरत्नों में स्थान ग्रहण करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे प्रायः सभी रहीम के व्यक्तित्व में समाहित थीं। वे जितने नीति कुशल और गंभीर थे उतने ही हंसमुख और विनोदप्रिय भी। स्पष्ट है कि खानखाना का व्यक्तित्व अनेकानेक मानवीय गुणों से अपूरित था। वे क्रियात्मक व्यक्ति थे। अतः गुणों के साथ-साथ कुछ न कुछ कमियां भी अवश्य रही होंगी। उनके शराब पीने के उल्लेख भी मिलते हैं और दासी प्रेम के भी, मांस भक्षण का तो कहना ही क्या किंतु यह सब तत्कालीन राजा-नवाबों के भूषण माने जाते थे, दूषण नहीं।

रहीम का व्यक्तित्व सर्वतोन्मुखी प्रतिभा संपन्न था। वे एक ही साथ सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद्, कलापारखी कवि एवं विद्वान थे। जन्मजात मुसलमान होते हुए भी हिंदुत्व के प्रति अपार निष्ठा उन्हें भारतीय श्रद्धा का पात्र बना देती है। वे कवियों के कल्पतरु, याचकों के कर्ण और गुणी जनों के भोज थे। विरोधी गुणों का बड़ा सुंदर संतुलित सामंजस्य उनके व्यक्तित्व में सन्निहित था। सेनापति की दृढ़ता और कवि की कोमलता, दोनों ही उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थीं। प्रशासकों की यथार्थवादी दृष्टि भी उन्हें प्राप्त थी और कलाकारों की कल्पना प्रवणता भी।

सरल व्यक्तित्व के साथ ही वह कूटनीतिक दांव-पेचों के सिद्धहस्त थे। मिर्जा जानी जैसे कांइयां, चांद बीबी जैसी वीरांगना, मुजफ्फर जैसे साहसी तथा हब्शी अंबर जैसे दुर्धश योद्धाओं को वश में करने की सामर्थ्य रहीम में ही थी। यही कारण है कि एक नहीं अनेक बार उन्हें दक्षिण से बुलाया गया। वे हलाकू चंगेज खान या उसके अन्य वंशजों की भांति रक्त-पिपासु मुसलमान न थे। उनकी योजनाएं इतनी विशाल तथा महत्त्वाकांक्षी होती थीं कि अकबर और जहांगीर तक हस्तक्षेप करने में अपने को असमर्थ पाते थे।

अधिकांश युद्धों में उन्हें सफलता ही मिली है। दक्षिण की जिन लड़ाइयों में वे असफल हुए उनका दायित्व रहीम पर न होकर मुगल सेना के उन अधिकारियों पर है जो पारस्परिक विद्वेष के कारण अपने कर्तव्य को समुचित रीति से पूरा नहीं करते थे। इस कमी को रहीम तो क्या मानसिंह, अबुल फजल, महावत खां, परवेज, जहांगीर, शाहजहां और यहां तक कि सम्राट अकबर भी न मिटा सके।

जीवन जगत के विविध क्षेत्रों का जितना क्रियात्मक अनुभव रहीम को प्राप्त था उतना अकबरी दरबार के अन्य नवरत्नों को भी नहीं। रहीम, भक्त, कवि, भाषाविद, ज्योतिषी, दानवीर, प्रशासक एवं सेनापति सभी एक साथ थे। कुल मिलाकर उनके जैसा बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति हिंदी में हमें दूसरा दिखाई नहीं देता।

सस्ता साहित्य मंडल,
एन-77, पहली मंजिल, कनाट सर्कस,
नई दिल्ली-110001

रहीम और गांधीवाद

अवतार कृष्ण राजदान

खानखाना रहीम, आज के युग में होते तो कैसे होते? देश की वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर, यह बात मेरे मन-मस्तिष्क में हर बार सवालिया निशान छोड़कर रहती है और अंत में इसका उत्तर मेरे पास यही होता कि रहीम आज के युग में होते तो वह विवादों के घेरे में रहते और हर कोई उन पर लांछन लगाता। इसी तरह, यदि महात्मा गांधी आज के युग में होते तो उनकी हालत उस वृद्ध की तरह होती, जिसके पौत्र-प्रपौत्र होते हुए भी पूछने वाला कोई न होता, जबकि उसको घर-बार बनाने व बसाने का श्रेय प्राप्त है और इसमें रहने वाले बंदों को चलने-फिरने, बोलने-समझने की आजादी प्राप्त है। इस समय इनका नाम, इनकी पुण्य तिथि पर लिया जाता है, साल में मात्र एक बार और यदि इनकी याद में किसी समारोह का आयोजन किया जाए। ऐसी बात अन्य हस्तियों के साथ भी होती है। नाम तो सब जानते हैं किंतु उस नाम की अंतर्कथा में कौन-सा सत्कार्य निहित है, जिस पर चलकर, ये देश क्या दुनिया को आगे ले गए पर उसके साथ इनको कोई सरोकार नहीं रहा। यह आज की आम बात बन गई है क्योंकि मानव मूल्य बिखर कर रह गए हैं और हर कोई अपनी सोचता है और अपनी सुनना चाहता है। जिसका मन जो चाहे करना चाहता है या करता है। रहीम और गांधी, दोनों लोगों के बीच जुड़े महापुरुष हैं, जबकि दोनों के बीच के जीवनकाल में लगभग कई सौ वर्ष का अंतर है। एक कवि थे तथा दूसरा समाज-सुधारक एवं राजनेता। इस तरह दोनों अपने समय लोगों की भावनाओं से जुड़े रहे।

रहीम ने अपने काव्य-कौशल से अपनी कविताओं या दोहों में जो कुछ कहा, वह आज के हालात को दृष्टिकोण में रखकर, सही व सार्थक लगती हैं किंतु देखना यह है कि इन पर कोई चलता भी है आज? रवि और कवि में फर्क है। जहां न पहुचे रवि, वहां पहुंचे कवि। यह बात रहीम पर एकदम चरितार्थ होती है। वह कवि के साथ-साथ एक कलाकार भी थे और एक ऐसा कलाकार जिसके शब्दों को स्वयं भगवान ने गढ़ा था और समय पर इनका अपने दोहों में इस्तेमाल करना, उनके एक कलाकार होने की सबसे बड़ी चमत्कारिता थी किंतु रहीम ने जो कुछ सोचा या कहा, उस पर क्या कोई अमल करता है? समस्याओं का निवारण भी तभी हो सकता है जब हम उसके कहे पर चलें किंतु इसके विपरीत हम समस्याओं को स्वयं उलझा रहे हैं और समस्या वैसी की वैसी है। महात्मा गांधी इसी श्रेणी के समाज सुधारक व राजनेता हुए हैं जिन्होंने अहिंसा का मूल मंत्र चला कर, देश को फिरंगियों से आजाद किया और अपनी मृत्यु तक अपने देश की रूपाकृति, रीति-नीति आदि पर गहरा प्रभाव अंकित किया जिसके परिणामस्वरूप उनके कुछ अनुयायी और प्रशंसक बने किंतु निंदक और विरोधियों की भी कोई कमी नहीं रही। ऐसा सिलसिला चलता रहता है। जो कल था, वह आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं होगा किंतु देखना यह है कि जिसने जो कल कहा या किया, वही आज की परिस्थितियों में भी सहीं निकले और तब कोई कहे या किए पर अमल न करे, यह कहां की बुद्धिमत्ता है?

रहीम और महात्मा के विचार जानकर सबको एक बार फिर सोचना चाहिए कि हम भटके तो नहीं हैं? विचार तो इनके साधारण हैं, पर इनको अच्छी तरह समझकर कार्यरूप प्रदान करना या अपने निजी जीवन का उसूल बनाकर अपनाना एक बड़ी बात है जो आजकल के हालात को देखकर हमें रह-रहकर गवाही देते हैं कि हम सही राह पर नहीं है बल्कि भटके हैं। उदाहरण कई हैं और यहां मैं रहीम के कुछ दोहों पर सविस्तार प्रकाश डालना चाहता हूं जिनके साथ गांधी जी के विचार शत-प्रतिशत मिलते हैं। कवि या राजनेता के बीच कोई अंतर नहीं। एक अपनी बात काव्य के माध्यम से लोगों के सामने रखता है और दूसरा लोगों के सामने भाषण देकर वही बात थोड़ा सा हेर-फेर करके समझाता है, किंतु बात का मूल मंत्र वही है जो आम जन के कल्याणार्थ हो।

रहीम एक आदर्श पुरुष थे। अपने एक दोहा में एक लाईन में लोगों को समझाते हुए कहते हैं—"रहिमन पानी राखयो...."

यहां रहीम के पानी को कई संकेतों में लिया जा सकता है। यहां पानी का अर्थ पहले शर्म व हया से लिया जा सकेगा। वर्तमान परिस्थितियों को देखकर लगता है कि अब सबों में शर्म व हया का पर्दा उठ गया है और गांधी जी के स्वराज का दुरुपयोग हर तरह से हो रहा है जिसकी अब कोई सीमा नहीं रह गई है। सब अपने कर्त्तव्यों से बचना चाहते हैं और अपनी दुनिया में हर हाल में जीना चाहते हैं। यही कारण है कि आजकल खूनी रिश्तों का कोई मतलब नहीं रह गया है। हां, किसी के जन्म लेने के बाद मां उसका पालन-पोषण करती है और जब वह अपनी टांगों पर खड़ा हो जाता है तो मां-बाप भी अलग और उसकी संतान भी अलग हो जाती है। ठीक उसी तरह

जिस तरह एक कौवी अपने बच्चों को पेड़ पर जन्म देती है। उन्हें चील के पंजों से बचाती है। कौवा इधर-उधर उड़कर अपनी चोंच में उनके खाने के लिए दाना लाता है ताकि ये स्वस्थ होकर आसानी से उड़ सकें। यह प्रक्रिया कुछ महीने के लिए चलती है। जब बच्चों के पर आ गए तो कौवा-कौवी भी अलग हो जाते हैं और बच्चे भी अपना लक्ष्य ढूंढने में लग जाते हैं। यही हाल आजकल इनसानों में भी देखने को मिलता है और आलम यह है कि बड़े शहरों में इस तरह के वाकयात आम देखने को मिलते हैं, जबकि इससे पहले मां-बाप, बेटा-बेटी को अपना अंश मानते थे और बच्चे उनको आदर-सत्कार देते थे किंतु अब आदर-सत्कार को छोड़िए, मां-बाप आज तरह-तरह की ठोकरें खाने पर मजबूर हैं और सुनने में यह भी आता है कि जब कोई बेटा-बेटी मां-बाप से सुनते हैं कि हमने तुमको जन्म दिया है या जन्मदाता हैं तो वे बेशर्मी से उत्तर देते हैं कि इसमें हमारा क्या दोष? हमने क्या कहा था कि हमें जन्म दो?

इन परिस्थितियों में रहीम के पानी का अर्थ क्या लिया जा सकेगा? जब लोगों में शर्म व हया या अपनों का अपनों से आदर-सत्कार करने की भावना उठ गई हो तो रहीम का पानी इन फटी-फटी आंखों को तर करने के बजाए शुष्क करता है। इनसान बहुत कुछ सोचने पर मजबूर होता है। आपसी मानव मूल्यों के बिखराव पर कोसता है और उसका मन हर समय किसी के सहारे के लिए बियाबानों की भटकन में खो जाता है। इस तरह यहां रहीम के पानी का लोगों पर कोई प्रभाव नहीं जबकि इस दोहे में लोगों के लिए एक अच्छा संदेश है, उपदेश है किंतु ये दोहे तभी सार्थक रहते, जब इन पर अमल होता, किंतु ये दोहे हर किसी की कथनी में पाए जाते हैं, करनी में कुछ दूसरा ही होता है।

महात्मा गांधी अपनी जीवनी में एक स्थान पर लिखते हैं कि यदि भारत को स्वराज्य मिलेगा तो मानना चाहिए कि यह आम आदमी के घर से शुरू हो गया किंतु उसका यह मतलब नहीं निकालना चाहिए कि घर में रहने वाले बंदे किसी मनमानी पर उतर आएं। मनमानी करना गुलामी को फिर से दावत देने के बराबर है किंतु वर्तमान परिस्थितियों में गांधी जी का यह कहना सत्य की धरातल पर सही उतरता है? नहीं। आजकल की भारतीय राजनीति मनमानी के सिवाय और कुछ नहीं। किस तरह अपना उल्लू सीधा करें और भ्रष्ट बनकर लोगों को अंधेरे में रखें—यही भारतीय राजनीति का मूल मंत्र बन गया है। जिसके परिणामस्वरूप गरीबी का ग्राफ बढ़ गया है। अमीरों के पास पहले से ज्यादा धन आ गया है और हर तरह की सुविधाएं प्राप्त हैं किंतु यह ऐसे ही नहीं हुआ है। ये तो इन्होंने आजादी का अनुचित लाभ उठाकर, गरीबों पर प्रहार किया है। आलम यह है कि अब किसी-किसी स्थान पर गरीबों ने बम, बंदूक उठाकर समानांतर शासन चलाना शुरू कर दिया है जिससे उन दिनों की याद आती है, जब यहां हर क्षेत्र का अपना शासक हाता था। अभी यह प्रक्रिया पूरी तरह शुरू नहीं हुई है किंतु यदि मनमानी का यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब भारत फिर से गुलामी को दावत देगा।

रहीम के दोहे में पानी का प्रयोग यहां तक ही सीमित नहीं है। लोगों में शर्म व हया का पर्दा कब हट गया है किंतु यदि हम आम बोल-चाल में पानी को लें तो हमारे आस-पास पानी होते हुए भी पानी नहीं है और हम इसकी बूंद-बूंद के लिए तरसते हैं। गर्मियों में जब पानी का हाहाकार मच जाता है और यही वह समय है जब लोग पानी के लिए मटकी फोड़कर, अपने भाग्य को कोसते हैं। संबंधित सरकार को गाली देते हैं और मीलों तक पैदल चलकर हमारी सुंदर ललनाएं, सिर पर पानी का मटका लेकर, किसी सरोवर से पानी लाकर, घर के सदस्यों की प्यास बुझाती हैं। जल जीवन है और यह जानकर भी कि हम इसको हर किसी के पास ले जाने के प्रयास में नहीं लगे हैं जिससे हर किसी के घर में नलकूप लगे। आजादी के पैंसठ वर्ष बीतने पर भी हम वैसे के वैसे हैं किंतु इसी पानी का दुरुपयोग हम तरह-तरह से करते हैं। पानी अमृत है, पानी आंखों की शर्म व हया है और इसी पानी से हम दूसरों की आंखों में धूल झोंक कर ठगने का सफल प्रयास हर दिन करते हैं। दूध वाले के दूध में पानी की मिलावट है। यही हाल घर की आवश्यकताओं की हर चीज में देखी जा सकती है किंतु हम इनको लेने के लिए विवश हैं।

हम दूसरों की बात क्यों करते हैं? पानी को दूषित करने के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। महात्मा गांधी के समय भी पानी का हाहाकार था किंतु उनका सत्य, निर्भयता, आस्था, अहिंसा, सत्याग्रह, श्रम, ग्रामीण और प्राकृतिक जीवन, रामराज, पंचायत राज, नैतिकता, कर्मशीलता आदि ऐसे विषय हैं जिन पर इन्होंने हजारों पृष्ठों से भी अधिक लिखा है और पानी पर वह अपनी जीवनी में इस तरह कहते हैं—पानी की समस्या है किंतु हमारी आंखों ने पानी को आदर भावना से नहीं देखा है, जिसके कारण हमारी आंखें सूज गई हैं। पानी को आदर देना अपनी मान-मर्यादा को बचाना है। रही बात पीने के पानी की, वह घर-घर की समस्या तब तक रहेगी, जब तक नदियों का मिलन न हो जाए। रूठी नदियों को एक-दूसरे से जोड़ने के लिए श्रम चाहिए। सत्य के साथ-साथ निर्भयता होनी चाहिए वरना एक असहाय मानव क्या कर सकेगा?

रहीम ने अपने काव्य में धार्मिक-सौहार्द्र पर बल देते हुए, भारत की गंगा-जमुनी संस्कृति से जुड़े लोगों पर एक-दूसरे पर विश्वास की भावना से रहने के लिए कहा है क्योंकि दोनों हाड़-मांस के पुतले हैं, दोनों के खून का रंग लाल है, भले ही उनका परमतत्त्व के प्रति विश्वास अलग-अलग है। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा या मोहम्मद इस पृथ्वी पर मानव कल्याण के लिए अवतरित होकर, लोगों के पालनार्थ सिद्धांतों को जन्म दिया है किंतु हर एक का मूल मंत्र एक है। परमेश्वर एक है और उसकी सत्ता से लड़ना कहां की बुद्धिमत्ता है? सहयोग और सद्भाव से रहना, हम सबका धर्म है क्योंकि हम सब एक हैं। इसी बात को समझाते हुए कहते हैं—

''दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिंदू और मुसलमान।।''

हिंदू हो या मुसलमान—दोनों आपस में भाई हैं भले ही दोनों की धार्मिक विचारधारा में फर्क

है। एक अपने परमतत्त्व को ईश्वर कहता है और दूसरा खुदा। सबके विचार एक जैसे नहीं हो सकते किंतु विचारों या उसूलों के अंतर से इनसान तो बंटते नहीं। कश्मीर की सुप्रसिद्ध योगिनी तथा कवयित्री ललदय्द भी अपने एक वाक्य में इस तरह से हिंदू और मुसलमान को आपस में जोड़कर कहती हैं जिसका भावार्थ इस प्रकार है–

''शिव की सत्ता के नाम पर, हिंदू और मुसलमान एक हैं। तुर्क यदि हैं तो अपने आपको पहचान लें, उसी से परमतत्त्व के साथ साक्षात्कार हो जाएगा।''

भारत की आजादी के पूर्व जब अंग्रेज पाकिस्तान का निर्माण करने में लगे तो गांधी जी नहीं माने यह कहकर कि इससे यहां के हिंदू व मुसलमान आपस में बंट जाएंगे किंतु उस समय अंग्रेजी की यही मंशा थी भारत को तोड़ने की। अंततः इस विराट देश के दो टुकड़े हो गए। दोनों तरफ से इधर से उधर लोगों का पलायन हुआ और इस प्रक्रिया में इनके बीच घोर घृणा उत्पन्न हुई क्योंकि अधिकांश को अपनी मातृभूमि से निष्कासन हो गया। दोनों के बीच मारामारी का तांडव शुरू हो गया। यह देखकर महात्मा गांधी को दुःख हुआ और नवाखली के नृशंस अत्याचार को देखकर उन्होने अपने एक भाषण में कहा–मैं जानता था कि पाकिस्तान बनाना फिरंगियों की राजनीति से प्रेरित है। इससे हिंदू व मुसलमान बंटने लगे जबकि दोनों दो जान एक प्राण हैं। यह मानवतावाद पर जबरदस्त प्रहार है। इनसान इनसान को मारे, यह कैसी शर्म की बात है? इसके बाद महात्मा कश्मीर आए और यहां के लोगों में धार्मिक-सौहार्द्र देखकर उनको अंत में कहना ही पड़ा कि यदि मुझे कहीं आशा की किरण दिखती है तो वह बस कश्मीर में ही दिखती है।

रहीम भक्तिकालीन कवि थे। अपने परमतत्त्व पर उनको अविचल विश्वास है। वह जीवन की हर गुत्थी को सुलझाने की शक्ति रखता है। समय की वह कद्र करता है क्योंकि समय पर ही सब कुछ होता है। इसलिए समय की नजाकत को देखकर ही सब कुछ करना पड़ता है नहीं तो पछतावा करने के सिवाय कुछ नहीं रहता। कहते हैं–

''समय पाय कुल होत है,
समय पाय झरी जाय।
सदा रहे नावे एक सी,
का रहिमन पछताय।।''

अथवा इनका कहना है कि समय के जाने पर ही कल आता है या बौर होता है या समय पर ही पेड़ों के पत्ते झर जाते हैं या समय सदा एक जैसा नहीं रहता और जो समय पर समय का मूल्य न जाने तो अंत में उसके पास पछतावा करने के सिवाय कुछ नहीं रहता। महात्मा गांधी का भी यही दृष्टिकोण था। अपने एक भाषण में उनका कहना है कि समय बड़ा बलवान है। क्या पता हमें परतंत्रता से कब मुक्ति मिलेगी। वह समय जरूर आएगा किंतु उसके बाद के समय का यदि हम सही उपयोग नहीं करेंगे तो हमारा बेड़ा गरक होगा, यही मेरी निजी राय है।

रहीम ने जीवन के धूप-छांव को अच्छी तरह देखा था। जीवन को उसने जिया था और हर एक की नस उसने पकड़ रखी थी। कहते हैं–

''पावस देखि रहीम मन,
वो हित मन समै मौन।
अब दादुर वक्त भए,
हमको पूछै कौन।।''

यहां रहीम उन लोगों पर कटाक्ष करते हैं जो बातूनी होकर बात-बात में अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं जबकि ये अंदर से खोखले होते हैं। इस तरह वह अपने आपसे प्रश्न कर पूछते हैं कि क्या पावस या वर्षा ऋतु को देखकर कोयल और रहीम ने मौन साध लिया है? अब तो बोलने वाले हमसे नहीं बोलते। आश्चर्य यह है कि अब गुणवान को चुप रहना पड़ता है, उनका कोई आदर नहीं जबकि गुणहीन व्यक्ति हर तरफ दिखाई देते हैं या सब जगह उन्हीं का बोलबाला है। यह बात आज के परिप्रेक्ष्य में सही उतरती है। गुणवान लोगों में ज्ञान का भंडार होता है और गुणहीन अंदर से खोखले होते हैं, वह कुछ भी कहें, उल्टा, सीधा, झूठा या सच, उन्हीं पर सब विश्वास करते हैं और उनको गुणवान होने की पदवी मिलती है। आजकल कौन किसकी सुनता है। सब अपनी दुनिया में मस्त हैं। इसी आशय से रहीम का कहना है–

''रहिमन निज मन की व्यथा,
मन ही राखो सोय।
सुनी इठ लेहे लोग सु,
वादी न ले हे कोय।।''

मन मरता नहीं, यह दुखों का घर है। इसलिए अपने मन के दुख को मन के भीतर ही रखना चाहिए। आजकल के मानव मूल्यों के बिखराव के कारण इस बात का महत्त्व है। इसके विपरीत रहीम का इस तरह भी कहना है–

''रहिमन असुवा नयन ढरी,
दिय दुख प्रगट करइ।
जारि निकारो गेय ते,
कस न भेद गेह।।''

अर्थात् नयनों से आंसू बहाने से दुख प्रकट करने का एक माध्यम है और साथ ही जिसको घर से निकाला जाए, वह घर का भेद दूसरों से भी कह देगा।

इसी आशय से गांधी जी का भी कहना था कि इस समय हमारा देश गुलाम है और गुलामी की मुसीबत दूसरों से कहने पर मजबूर है। यही हमारे देश का भेद है।

अंत में यही कहा जा सकेगा कि रहीम का काव्य हर तरह से आजकल की परिस्थितियों के अनुरूप उतरता है और इसमें मानव मूल्यों के बिखराव को हर तरह से तराशा गया है। उसने अपने समय में जो कुछ कहा है, वह सब आजकल के वाकयात या समस्याएं लगती है। महात्मा गांधी के विचार भी उनके विचारों के साथ किसी न किसी रूप में मिलते हैं और ऐसा लगता है कि गांधीवाद मूलतः कोई सिद्धांत नहीं बल्कि भक्ति काव्य का मिश्रण है।

**डी-255, गली नं.-14/15, लोअर शिवनगर,
ए.जी. आफिस के पीछे, जम्मू-180 001**

नीतिपरक दोहों के प्रणेता

डॉ. शिखा रस्तौगी

अब्दुर्रहीम खानखाना का साहित्य धर्म, राजशाही व उच्च वर्ग के समाज से ऊपर उठकर आम जन का केंद्र बिंदु है। मुगल शासन के दौर में उन्होंने कृष्ण को आराध्य माना और नीतिपरक दोहों की रचना कर हिंदु-मुस्लिम एकता की मिसाल कायम की—

"जो बड़ेन को लघु कहे,
नहि रहीम घटी जाहि।
गिरधर मुरलीधर कहे,
कछु दुख मानत नाहि।।"

वर्तमान दौर में जहां हम एक ओर धर्म की सर्वश्रेष्ठता को लेकर एक-दूसरे के सामने खड़े हैं, वहीं रहीम मुगलियाई दौर में सर्वधर्म समभाव के नियामक बनें।

अब्दुर्रहीम खानखाना मध्यकालीन सामंतवादी संस्कृति के कवि थे। रहीम का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा संपन्न तथा प्रभावशाली था। यह मुसलमान होकर भी कृष्ण भक्त थे। यह कुशल सेनापति, प्रशासक आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद्, कलाप्रेमी, कवि एवं विद्वान थे। रहीम सांप्रदायिक सद्भाव तथा सभी संप्रदायों के प्रति समादर भाव के सत्यनिष्ठ साधक थे। वे भारतीय सामाजिक संस्कृति के अनन्य आराधक थे। वह कलम और तलवार के धनी थे और मानव प्रेम के सूत्रधार थे। हिंदी के संत और भक्त कवियों का युग हिंदी साहित्य में भक्तिकाल नाम से जाना जाता है। इसी को मध्यकाल भी माना जाता है। इसकी कालावधि सन 1320 से सन 1650 तक मानी जाती है। भक्तिकाल से पूर्व भारतीय समाज का पराभव हो चुका था। मुसलमान आक्रमणकारी रूप में तलवार और कुरान लेकर आए थे। उनके अत्याचारों ने हिंदू धर्म और संस्कृति को पंगु बना दिया था।

भक्ति का प्रतिपादन सर्वप्रथम महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण ने किया। भक्ति की वह धारा कभी क्षीणकाय और कभी पीड़ाकाय होती हुई निरंतर प्रवाहमान बनी रही। इस धारा को प्रवाहमान बनाए रखने में भक्त कवियों विशेष रूप से कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रहीम इत्यादि भक्तों का विशेष योगदान रहा। इन्होंने श्रुति सम्मत भक्ति का प्रतिपादन करके समाज को धर्म-कर्म के प्रति उन्मुख किया तथा समाज की विघटनकारी परंपराओं की सदैव उपेक्षा की, उपेक्षा ही क्यों बल्कि उनका डटकर विरोध किया और नारा बुलंद किया कि हरिजनों की कोई जाति नहीं होती है—

"हरि को भजे सो हरि को होई
जे पहुंचे तो पूछिए तिनकी एके जात
सब साधो का एक सत बिचके बारह बाट"
—(कबीर)

अब्दुर्रहीम खानखाना मध्यकालीन भारत के कुशल राजनीति वेत्ता, वीर-बहादुर, योद्धा और भारतीय सांस्कृतिक समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करने वाले कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनकी गणना ऐतिहासिक पुरुष के अलावा भारत माता के सच्चे सपूत के रूप में की जाती है। इनका जन्म सन् 1556 में इतिहास प्रसिद्ध बैरम खां के घर लाहौर में हुआ था। इनकी मां का नाम सुल्ताना बेगम था। संयोग से सम्राट हुमायूं सिकंदर सूरी के आक्रमण का विरोध करने के लिए लाहौर में मौजूद थे। बैरम खां के पुत्र जन्म की खबर सुनकर स्वयं अकबर वहां गए और उस बच्चे का नाम रहीम रखा। मुल्ला मोहम्मद अमीन रहीम के शिक्षक थे। उन्होंने रहीम को तुर्की, अरबी व फारसी भाषा का ज्ञान दिया। इन्होंने ही रहीम को छंद, रचना, गणित, तर्कशास्त्र और फारसी व्याकरण का ज्ञान करवाया। बदाउनी रहीम के संस्कृत शिक्षक थे।

रहीम के पिता बैरम खां को हुमायूं ने युवराज अकबर की शिक्षा-दीक्षा के लिए चुना तथा अपने अंतिम दिनों में राज्य के प्रबंध की जिम्मेदारी देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया था। बैरम खां ने अपनी कुशल नीति से अकबर के राज्य को मजबूत बनाने में पूरा सहयोग दिया। एक अफगान सरदार मुबारक खां ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेते हुए धोखे से बैरम खां का वध कर दिया जिससे इनका परिवार (पत्नी सुल्ताना बेगम और पुत्र रहीम) अनाथ हो गए। अकबर ने महानता का परिचय देते हुए इन्हें शरण दी। इन्हें पुत्रवत् मानते हुए कहा—रहीम को सब प्रकार से प्रसन्न रखो। इन्हें महसूस न हो कि इनके पिता का साया इन पर से उठ चुका है। अकबर ने रहीम का पालन-पोषण धर्म पुत्र की भांति किया तथा शाही खानदान के अनुरूप 'मिर्जा खां' की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम की शिक्षा-दीक्षा अकबर की उदार धर्म निरपेक्ष नीति के अनुकूल हुई। इसी धर्म निरपेक्ष शिक्षा के कारण रहीम का काव्य आज भी हिंदुओं के गले का कंठहार बना हुआ है। इनके कुछ दोहों में इतना नीतिपरक सत्य छिपा हुआ है जो सामान्य आमजन की

बोल चाल में प्रयुक्त होता देखा जा सकता है–

''रहीमन देखि बड़ेन को,
लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई,
कहा करे तरवारि।।
××× ××× ×××
रहिमन निज मन की विथा,
मन ही राखो गोम।
सुनि इठलैहें लोग सब,
बांटी न लेहै कोय।।
××× ××× ×××
तरुवर फल नहिं खात है,
सरवर पियहि ना पान।
कहि रहिम काज हित,
संपति संचहि सुजान।।
××× ××× ×××
मीठा सबसे बोलिए,
फैले सुख चहुं ओर।
वशिकरण है मंत्र येहि,
तज दे वचन कठोर।।
××× ××× ×××
बिगरी बात बने नहि,
लाख करों किन कोय।
रहिमन फाटे दूध, को,
मथे न माखन होय।।''

रहीम धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे। यह इनके काव्य में भी दिखाई देता है। अकबर ने अपने दरबार के 'मीर अर्ज' पद का काम-काज सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने सच्चे तथा विश्वासपात्र धर्म पुत्र रहीम की 'मुस्तकिल मीर' अर्ज नियुक्त किया। रहीम का सीधा संबंध सत्ता से रहा, फिर भी उनकी रचनाओं में लोक व्यवहार की जो बातें देखने को मिलती हैं, उससे स्पष्ट होता है कि उनके मन में आम-जन जीवन के प्रति कितना गहरा लगाव था। रहीम एक सच्चे इनसान थे, वह ऐसे इनसान थे जिनका मन धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र की सीमाओं से बहुत ऊपर उठकर वहां पहुंच गया था, जहां सब सम ही सम है। बिना मन की ऊंचाई के यह ऐसे नीतिपरक दोहे नहीं लिख सकते थे, जैसे इन्होंने लिखे। मुस्लिम धर्म के अनुयायी होते हुए भी रहीम ने अपनी काव्य रचना द्वारा हिंदी साहित्य की जो सेवा की है उसकी मिसाल कम ही मिल पाई है। रहीम जी की कई रचनाएं प्रसिद्ध हैं, जिन्हें उन्होंने दोहों के रूप में लिखा है। रहीम के ग्रंथो में–रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नायिका भेद, श्रृंगार, सोरठा, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी, नगर शोभा, फुटकर बरवै, फुटकर छंद तथा पद फुटकर कवित्त सवैये, संस्कृत काव्य सभी प्रसिद्ध हैं। 'मअसिरे रहीमी' और आइने अकबरी में इन्होंने खानखाना व रहीम नाम से कविता की है।

मध्यकाल में सूफी संतो और भक्त कवियों का इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव और सांस्कृतिक योगदान रहा है। भले ही यह दोनों धाराएं अलग-अलग दिखाई देती हैं किंतु अंदर से दोनों में बहुत समानता है। दोनों धाराओं ने एक-दूसरे से सारतत्त्व लिया तथा मजबूत किया। इस काल में जहां एक ओर सूफियों और भक्तों का पारस्परिक मिलन हुआ, वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट हो गया कि वैदिक चिंतन और इस्लामिक चिंतन में कितनी समानता है। सूफी इस्लाम की भांति एकेश्वरवाद में विश्वास करते हैं। उनका मानना था, दृश्यमान एक जगत में एकमात्र सत्ता परमात्मा की है। ऋग्वेद में भी एक ब्रह्म की बात कही गई है, ऋग्वेद में कहा है– ''एकमसद विप्रा बहुधा वदंति''–सत्य एक है, विद्वान उसे अलग-अलग प्रकार से बताते हैं। मध्यकालीन चिंतकों और कवियों ने समाज में व्यापक मानवीय बोध को जगाया। उनके विचार और भावों की जो रसधारा प्रवाहित हुई उससे समाज के सामने एक नए आदर्श का स्वरूप उभरा। इस नए स्वरूप में संकीर्णता और कट्टरता के लिए कोई स्थान नहीं था। अब्दुर्रहीम, रसखान, जायसी आदि इसी व्यापक बोध के गर्भ में जन्मे, पले और बड़े हुए। इन कवियों ने अपनी वाणी द्वारा मनुष्य के भीतर सोए हुए विराट अनुराग को जगाया।

रहीम का नाम आते ही संपूर्ण भारतीय लोक-जीवन का व्यापक फलक घूम जाता है। रहीम के नीतिपरक दोहे हमारे व्यावहारिक जीवन के आधार तथा बोलचाल का अंग बन चुके हैं। जैसे–

''समय पाय फल होत है,
समय पाय झरी जात।
सदा रहे नहि एक सी,
का रहीम पछतात।।
××× ××× ×××
वे रहीम नर धन्य है,
पर उपकारी अंग।
बांटन वारे को लगे,
ज्यों मेंहदी को रंग।।
××× ××× ×××
रहिमन विपदा हूं भली,
जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में,
जान परत सब कोय।।
××× ××× ×××
रूठे सुजन मनाइए,
जो रूठे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरी पोइए,
टूटे मुक्ताहार।।''

अपने दोहों में इन्होंने खुद को 'रहिमन' कहकर ही संबोधित किया है। इनके दोहे नीति, सामाजिकता, प्रेम व श्रृंगार से ओत-प्रोत है। कभी-कभी तुलसीदास और रहीम के दोहों को एक साथ साथ सुनने पर भ्रम हो जाता है कि कौन सा दोहा किसने लिखा है। भाव और भाषा की समानता ने रहीम को सर्वधर्म समभाव के श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया है। हमारे यहां सर्वधर्म समभाव की बात न तो पश्चिम के उदारवादी चिंतन की देन है न वैज्ञानिक आविष्कारों का परिणाम बल्कि सर्वधर्म समभाव की हमारी लंबी परंपरा रही है। भारतीय सूफियों ने इसे नया जीवन देकर इसका विस्तार किया। रहीम में भी ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की तीव्रता है। इसी भावना से संबंधित एक दोहे में रहीम लिखते हैं–

''रहिमन गली है सांकरी,
दूजा ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं,
हरि तो आपुन नहि।।''

ईश्वर तक पहुंचने की जो गली है, यह प्रेम की गली है। यह संकरी गली है जिसमें अन्य के लिए स्थान नहीं होता। यहां तक कि स्वयं के लिए भी स्थान नहीं होता। प्रेम के प्रति अनन्य निष्ठा ही उन्हें मानववाद से जोड़ती है। उनका मानववाद विश्व मानववाद रूप में प्रकट हुआ है। गांधीवाद उसी का आधुनिक संस्करण है। इनकी सामाजिक चेतना मानवतावाद के व्यापक उदात्त सिद्धांत द्वारा अनुप्राणित थी। इनकी वाणी मानव को मानव के साथ जोड़ने वाली है। रहीम ने उस भाषा में अपनी बात कही जिसको जन सामान्य समझता था। संस्कृत भाषा में सुरक्षित ज्ञान, नीति उपदेश हिंदू-मुस्लिम ऐक्य को जनभाषा हिंदी द्वारा भारत के कोने-कोने तक, घर-घर तक पहुंचाया। उन्होंने स्पष्ट माना—''संस्कृति जलकूप है, भाषा बहता नीर'' आत्म संस्कारों द्वारा सहज भावों का स्वरूप ग्रहण करके समकालीन विघटित समाज को मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

रहीम भले ही सूफी संत न हों लेकिन वह ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सूफी दर्शन को जिया था और छोटी-छोटी रचनाओं द्वारा सूफी दर्शन को आम लोगों तक पहुंचाया था। भारतीय जन जीवन ने भी रहीम को और रहीम के दोहों को अपने अंदर समाहित कर लिया। सांस्कृतिक समन्वय और सर्वधर्म समभाव की दृष्टि से यह रहीम की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। सूफीवाद एक जीवन दर्शन था। यह दर्शन मानव को मानव से जोड़ने का दर्शन था। सूफियों ने प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया । रहीम ने भी अपने दोहों में प्रेम की विशेषता बताते हुए कहा है—

''रहिमन धागा प्रेम का,
मत तोरो चटकाय।
टूटे ते फिरि न जुरे,
जुरे गांठ परी जाय।।''

प्रेम की इस प्रधानता ने तत्कालीन समाज को सहिष्णु बनाने में महती भूमिका निभाई थी। सूफियों का प्रेम आध्यात्मिक होते हुए भी सामाजिक था। भारत में प्रचलित लौकिक प्रेम कथाओं का आश्रय लेकर प्रेम द्वारा परमात्मा को पाने का प्रयास था। लौकिक जगत में प्रेम की भावना को व्यवहार में लाए बिना अलौकिक क्षेत्र में प्रेम की भावना मनुष्य से प्रारंभ होकर समस्त प्राणियों से होती हुई ईश्वर तक पहुंचती है। कबीर ने इसे 'ढाई आखर प्रेम' का कहा है। तुलसी ने इसे ''परहित सरिस धर्म नहि भाई'' कहा। प्रेम की अधिकता ने ही मीरा को दीवानी बनाया—''हेरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।'' यही भावना सूर की गोपियों में विद्यमान है। चाहे सूफी कवि हो या भक्त सभी में आध्यात्मिक प्रेम की तीव्रता दिखाई देता है। रहीम ने भारत की भावात्मक एकता को बनाए रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके लिए समस्त भेदभाव विभाजक रेखाएं कृत्रिम और त्याज्य हैं। इनकी वाणी में भिन्नता होते हुए भी सिद्धांतों-दर्शनों में समन्वय के दर्शन होते हैं। समाज में व्याप्त समस्त भेदभाव को मिटाने के प्रयत्न में इन्होंने समस्त कुचक्रों एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों पर निर्मम प्रहार किया। कभी दार्शनिक मत-मतांतरों का विरोध किया। कभी बाह्याचारों का और कभी सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली बातों का विरोध किया।

इन्होंने समाज के कल्याण के लिए जन-जागरण का शंख फूंका। बार-बार कहा कि नैतिक बल जीवन की सर्वश्रेष्ठ संपत्ति है। भारतीय वातावरण, भारतीय परंपरा और भारतीय वर्णन शैली को अपनाकर भाव और अभिव्यक्ति के स्तर पर इन्होंने भारत की संस्कृति को मजबूत बनाया तथा भाषा में अवधी और ब्रज को अपनाया।

''तन रहीम है कर्म बस,
मन राखों अेहि ओर।
जल में उल्टी नाव ज्यों,
खैंचत गुन के जोर।।''

प्राचार्या,
कुशलपाल त्यागी मैमोरियल डिग्री कॉलेज,
मुरादनगर, जनपद–गाजियाबाद

रहीम के काव्य में प्रकृति

रचना सिंह

मानव और प्रकृति का अटूट एवं शाश्वत संबंध है। प्रकृति, मानवीय अनुभूति का विशेष क्षेत्र है। यह मानव की चिर सहचरी है। प्रकृति के गर्भ में ही मनुष्य की चेतना पुष्पित एवं पल्लवित होती है। मानव जीवन का प्रत्येक कार्य व्यापार प्रकृति द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य ही प्रभावित होता है। प्रकृति के सुंदर और विनाशकारी दृश्यों ने जहां मनुष्य में विस्मय-कौतूहल और भय आदि भावनाओं को जागृत किया वहीं दूसरी तरफ प्रकृति के भयंकर रूप के समक्ष स्वयं की लघुता का भान भी हुआ। मनुष्य की सौंदर्यात्मक चेतना और भावात्मक स्पंदनशीलता के साथ-साथ दार्शनिक चिंतन एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से प्रकृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए प्रकृति चिरकाल से ही कवियों के आकर्षण का केंद्र रही है।

डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार, ''कवियों का प्रकृति वर्णन बहुत कुछ मनोवृत्तियों, भावनाओं और विचारों पर निर्भर करता है।''[1] इस कारण प्रकृति वर्णन के अनेक रूप हो जाते हैं। इन्हें आलंबनात्मक, उद्दीपनात्मक, अन्योक्त्यात्मक, अलंकारणात्मक, प्रतीकात्मक, भयात्मक, रहस्यात्मक, ऋतुवर्णानात्मक आदि नाम दिए जा सकते हैं। सभी कवियों के प्रकृति वर्णन में ये सभी रूप, समान सौंदर्य के साथ वर्णित नहीं होते। मुक्तकार की अपेक्षा प्रबंधकार को इन रूपों के वर्णन का अधिक अवसर प्राप्त होता है। महाकाव्य का यह तो एक तत्त्व ही गिना जाता है। रहीम के मुक्तक काव्य की अपनी एक सीमा है। वे प्रमुखतः नीति के कवि हैं प्रकृति के नहीं। किंतु ऊपर गिनाए गए कतिपय प्रमुख रूपों का व्यवहार हमें रहीम के नीति-काव्य में भी देखने को मिलता है।

जहां कवि प्रकृति-वर्णन केवल प्राकृतिक दृश्यों एवं घटनाओं के लिए करता है, वहां प्रकृति वर्णन आलंबनात्मक होता है। यहां कवि का उद्देश्य निर्लिप्त रूप से मात्र प्रकृति वर्णन ही होता है। इस प्रकार के सबसे सुंदर उदाहरण संस्कृत कवियों और विशेषतः आदि कवि वाल्मीकि एवं महाकवि कालिदास के ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। रहीम के काव्य में इस प्रकार के बहुत कम उदाहरण देखने को मिलते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य प्रकृति चित्रण को केवल प्रकृति-चित्रण के लिए प्रस्तुत करना नहीं था। उनके काव्य में जहां अन्योक्ति मुखरित नहीं हुई है, वहां आलंबनात्मक रूप उभरता प्रतीत होता है। यथा—

''दादुर मोर किसान मन,
लग्यो रहे घन मांहि ।
रहिमन चातक रटनि हूं,
सरवर को कछु नांहि।।''[2]

''दोनों रहिमन एक से,
जौ लौ बोलत नांहि।
जान परत हैं काक पिक,
ऋतु बसंत के मांहि।।''[3]

रहीम ने अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए प्रकृति के उपकरणों को अलंकार के रूप में भी प्रयुक्त करते हुए शब्द-सौंदर्य दर्शाया है। रहीम ने प्रकृति को अलंकरण-रूप में सफलतापूर्वक स्थान दिया है। रहीम अपने दोहे में सत्संगति के परिप्रेक्ष्य में चंदन वृक्ष को अलंकार-रूप में प्रयुक्त करते हुए कहते है—

''जो रहीम उत्तम प्रकृति,
का कर सकै कुसंग।
चंदन विष व्याप्त नहीं,
लिपटे रहत भुजंग।।''[4]

रहीम द्वारा वर्णित उद्दीपन रूप कहीं-कहीं परंपरा से कुछ हटकर भी प्रतीत होता है। यथा—लोक दृष्टि से रात की तुलना में दिन को अच्छा माना जाता है। किंतु संयोगावस्था का चित्रण करते समय रहीम रात को श्रेष्ठ कहते क्योंकि उसमें प्रियतम-प्रिया का दिन के समान बिछुड़ना न होकर संयोग का अवसर होता है—

''रहिमन रजनी ही भली,
पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम कौ,
रहिबौ आपुहि आप।।''[5]

संयोगावस्था में प्रकृति के समस्त रूप परम सुखदायक प्रतीत होते हैं। इसी संयोग के आनंद को ध्यान में रखकर नायिका यह कहती है कि उसे प्रियतम के बिना स्वर्ग (बैकुंठ) और कल्प-वृक्ष की प्राप्ति भी व्यर्थ प्रतीत होती है। इसकी तुलना में यदि संयोग दशा हो और प्रियतम का भुज-बंधन प्राप्त हो तो ढाक का वृक्ष भी अत्यधिक सुंदर लगता है—

''कहा करौं बैकुंठ ले,
कल्पवृक्ष की छांह।
रहिमन ढाक सुहावनो,
जो गल प्रीतम बांह।।''[6]

रहीम ने वियोगावस्था में भी प्रकृति के उद्दीपक-रूप का वर्णन किया है। इसमें कवि ने 'बरवै' और 'दोहों' के माध्यम से वास्तविकता को बनाए रखा है। 'विरह की कल्पना-मात्र से ही प्रेमी के प्राणों पर बन जाती है। सावन मास में मनभावन प्रियतम का प्रयाण अत्यंत दारुण लगता है—

''उमड़ि उमड़ि घन घुमड़े दिसि बिदिसान।''
सावन दिन मनभावन कर पयान।।''[7]

''झूमि-झूमि चहुं ओरन बरसत मेह।
त्यों-त्यों प्रिय बिन सजनी तरफत देह।।''[8]

प्रकृति सदैव सुंदर ही नहीं होती, विकराल और भयंकर भी होती है। पुष्प के साथ कंटक तथा तितली के साथ व्याल उद्यानों में सदैव देखने को मिलते हैं। बसंत के साथ पतझड़, निर्माण के साथ विनाश, प्रकृति की अनिवार्य लीलाएं

हैं। जो सच्चे प्रकृति प्रेमी होते हैं वे उसके प्रत्येक रूप से प्यार करते हैं। इसलिए काव्य में बासंती बयार के साथ उरग निःश्वासों के भी वर्णन हुए हैं। एक ही कृति में प्रसंगांतर से उषा-रश्मियों और प्रलय-तरंगों के वर्णन एक साथ देखे जो सकते हैं। महाकवि जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' इसका प्रमाण है। रहीम के काव्य में चिता, रुधिर तथा ब्याल इत्यादि भयंकर प्रयोग भी कहीं-कहीं देखने को मिल जाते हैं–

''एतो बड़ो रहीम जल,
ब्याल बदन विष होय।''[9]

''बधिक बधै मृग बान सों,
रुधिरै देत बताय।''[10]

''चिता दहति निर्जीव को,
चिंता जीव समेत।।''[11]

हमारा जितना अधिक संपर्क प्रकृति से है, उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं। हमारे चारों तरफ प्रकृति ही प्रकृति परिव्याप्त रहती है। हम उसका मनोरम लीला-विहार एवं विकराल विनाश निरंतर देखते रहते हैं, परंतु उन सबको समझना हमारे बस का नहीं है। भक्ति काल में जायसी एवं कबीर और आधुनिक युग में महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि के काव्य में रहस्यवादी रंग पग-पग पर झलकता है। रहीम भी प्रकृति के कतिपय तत्त्वों, संसार के उलझे क्रिया व्यापारों तथा प्रभु के पुनीत विस्तृत विधान पर विस्मय थे। कागज के पुतले का वर्षों तक आयु खींचते-खींचते एक क्षण में क्रिया शून्य हो जाना, धूल की इस गठरी की गांठ खुलते ही पंच तत्त्वों में बिखर जाना तथा लघु बीज में विशाल वृक्ष अथवा छोटी-सी बिंदु में विस्तृत समुद्र के सभी गुणों का विद्यमान रहना, रहीम के रहस्य का संकेत करते थे। इन्हीं रहस्यों का प्रतिफलन उनके अनेक दोहों में हुआ है–

''बिंदु भी सिंधु समान,
का अचरज कासों कहैं।
हेरनहार हेरान,
रहिमन अपुने आप तें।।''[12]

अन्योक्ति का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है–अन्य के प्रति कही गई उक्ति। जहां प्रकृति के प्रस्तुत विषय पर प्रत्यक्ष कथन होते हुए भी उसका अभिप्राय विशेषतः सामाजिक अथवा राजनीतिक व्यक्ति या पद विशेष पर केंद्रित रहता है, जहां प्रकृति का अन्योक्तिपरक वर्णन होता है। बाबा दीनदयाल गिरि, हिंदी में अन्योक्तियों के बादशाह हैं। रहीम के नीति काव्य में अनेक कथन अन्योक्तिपरक हैं। यथा–

''जो घर ही में घुस रहे,
कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनते भले,
पथ के अपत करील।।''[13]

''रहिमन अब वे बिरछ कहं,
जिनकी छांह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत,
सेंहुड़ कंज करीर।।''[14]

''अंड न बौड़ रहीम कहि,
देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्कता कुल्हड़िन,
सहैं ते तरुवर आन।।''[15]

रहीम ने प्राकृतिक उपकरणों के प्रतीकों द्वारा सहज और बोधगम्य काव्य-सृजन भी किया। रहीम प्रतीकों का प्रयोग कर अपने दोहों-बरवै में गागर में सागर समाहित कर लेते हैं। उनके काव्य में 'श्वान' ओछेपन का, 'पृथ्वी' सहनशीलता का, 'चातक और मीन' प्रेम की अनन्यता का, 'अमरबेलि' आश्रयहीनता का, 'बेर तथा केला' अनमेल संगति का प्रतीक बनकर आए हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक प्राकृतिक उपकरणों को रहीम ने प्रतीक रूप में व्यवहृत किया है। मान-सम्मान के प्रतीक रूप में उनका 'पानी' से संबंधित निम्नलिखित दोहा लोक-विश्रुत है–

''रहिमन पानी राखिए,
बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे,
मोती मानुष चून।।''[16]

रहीम के काव्य में परिगणनात्मक प्राकृतिक चित्रण भी देखने को मिलता है। उनके किसी-किसी दोहे में कवि ने परिगणित वस्तुओं की संख्या का स्वयं उल्लेख भी किया है–

''कदली सीप भुजंग मुख,
स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगत बैठिए,
तैसाई फल दीन।।''[17]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि रहीम ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति-चित्रण नहीं किया है तथापि इसके विविध रूपों को अपने काव्य में रूपांकित किया है। इस रूपांकन के लिए विष-चंदन, चंद्र-चकोर, सागर-नदी, पशु-पक्षी, मेंहदी-रंग, विष-अमृत, फल-फूल, जल-मीन, दही-मही, धनुष-कमान, नभ-तारे आदि असंख्य प्राकृतिक उपकरणों का रहीम काव्य में विनियोग हुआ है। रहीम ने प्रकृति वर्णन करते समय कहीं परंपरागत दृष्टि को ध्यान में रखा है तो कहीं पूर्णतः मौलिक दृष्टि अपनाई है। जहां कहीं उन्होंने प्राचीन कथ्य-सामग्री को प्रयुक्त किया है तो उसके आलोक में कवि के निष्कर्ष नूतन-नवीन हैं। नीति-कथनों को उदाहरणों द्वारा पुष्ट करने और नैतिक सिद्धांतों की उद्भावना के लिए रहीम ने प्राकृतिक तत्त्वों का प्रयोग किया है। लौकिक नीतिपरक दृष्टिकोण के बावजूद, प्राकृतिक पदार्थों की काव्य में प्रयोग की सूक्ष्मता एवं लौकिक अनुभूतिपरक विशिष्टता, रहीम की एक विशिष्ट एवं अद्वितीय पहचान बनाती है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. साहित्य लोचन–डॉ. श्यामसुंदर दास (छठा संस्करण), पृ. 82
2. रहीम ग्रंथावली : संपादक विद्यानिवास मिश्र, गोविंद रजनीश, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2004, आवृत्ति 2010, पृ. 79 (दोहावली-102)
3. वही, पृ. 80 (दोहावली-110)
4. वही, पृ. 77 (दोहावली-81)
5. वही, पृ. 93 (दोहावली-237)
6. वही, पृ. 73 (दोहावली-40)
7. वही, पृ. 138 (बरवै, भक्तिपरक-17)
8. वही, पृ. 138 (बरवै, भक्तिपरक-22)
9. वही, पृ. 85 (दोहावली-161)
10. वही, पृ. 87 (दोहावली-179)
11. वही, पृ. 88 (दोहावली-185)
12. वही, पृ. 100 (दोहावली-258)
13. वही, पृ. 76 (दोहावली-77)
14. वही, पृ. 87 (दोहावली-178)
15. वही, पृ. 71 (दोहावली-24)
16. वही, पृ. 92 (दोहावली-219)
17. वही, पृ. 71 (दोहावली-25)

द्वारा उमा सिंह, मकान नं.-125,
रामपुर नई बस्ती, निकट नेहरू युवा केंद्र,
जनपद-बलिया-277001 (उ.प्र.)

'यथार्थ से संवाद' लोकार्पित

सुविधा शर्मा

(बाएं से दाएं–डॉ. अमर नाथ 'अमर', राहुल देव, आलोक मेहता, डॉ. बालस्वरूप राही, वेद प्रताप 'वैदिक', बी.एल. गौड़, डॉ. हरिसुमन विष्ट, डॉ. विवेक गौतम)

नई दिल्ली के हिंदी भवन सभागार में उद्भव साहित्यिक संस्था के तत्वावधान में सुप्रसिद्ध साहित्यकार-पत्रकार बी.एल. गौड़ की नवीनतम कृति 'यथार्थ से संवाद' का लोकार्पण मुख्य अतिथि डॉ. वेदप्रताप वैदिक के साथ डॉ. बालस्वरूप राही, पद्मश्री आलोक मेहता, राहुल देव और हरिसुमन बिष्ट ने किया।

किताबघर प्रकाशन से आई बी.एल. गौड़ की यह किताब उनके संपादकीयों, विचारों और उत्तेजक लेखों का महत्त्वपूर्ण संचयन है। इस अवसर पर अपना वक्तव्य देते हुए वेदप्रताप वैदिक ने कहा कि आज के समय में इतनी निर्भीकता, निरपेक्षता और साफगोई से कोई कैसे वर्तमान के कठोर यथार्थ से संवाद करता है, यह बी.एल. गौड़ से सीखा जा सकता है।

समारोह में लेखकीय वक्तव्य देते हुए लेखक बी.एल. गौड़ ने अपने जीवन के व्यापक अनुभवों को उपस्थित श्रोताओं से साझा किया। उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विसंगतियों को अपने संपादकीयों का विषय क्यों बनाया, इस पर भी प्रकाश डाला। पत्रकार आलोक मेहता और राहुल देव ने अपनी सारगर्भित टिप्पणियों में किताब 'यथार्थ से संवाद' पर कहा कि भाषा और प्रस्तुतिकरण के साथ-साथ चुने गए विषय तात्कालिक होते हुए भी लंबे समय के लिए प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। कार्यक्रम का संचालन कवि डॉ. विवेक गौतम ने किया तथा आभार डॉ. अमरनाथ 'अमर' ने व्यक्त किया।

समारोह में डॉ. कुंवर बेचैन, डॉ. शेरजंग गर्ग, प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण, सरोजनी प्रीतम, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, पी. सी. भारद्वाज, सत्यव्रत शर्मा, बालेंदु दाधीच, शारदा गौड़, नीतू गौड़, डॉ. रीता सिंह, अजय गुप्ता, डॉ. गोविंद व्यास के साथ-साथ अनेक गणमान्य लोग उपस्थित थे।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.....
दिनांक.....
रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पाँच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनाञ्चल (हिन्दी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिन्द (अरबी), और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरु व टैगोर की रचनाएँ परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल है। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिन्दी, अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गये हैं।

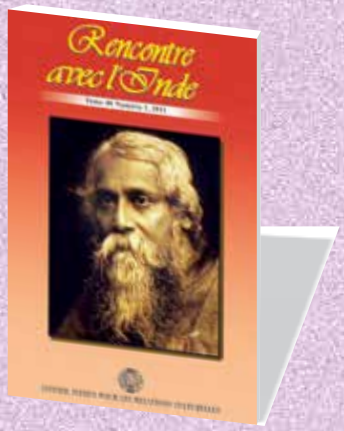

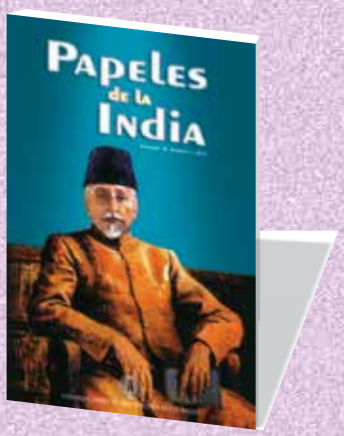

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

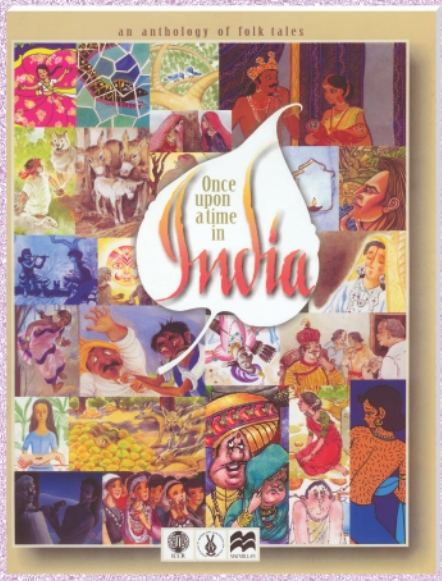

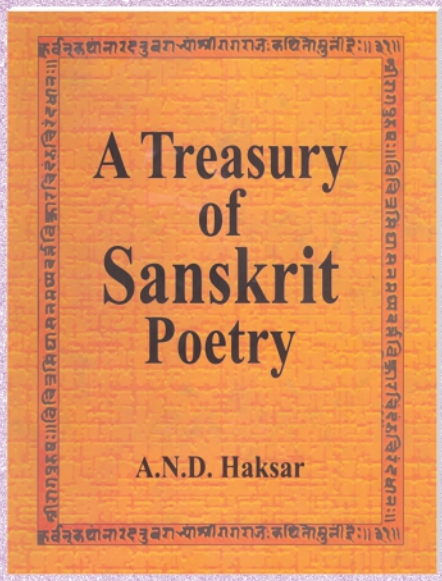

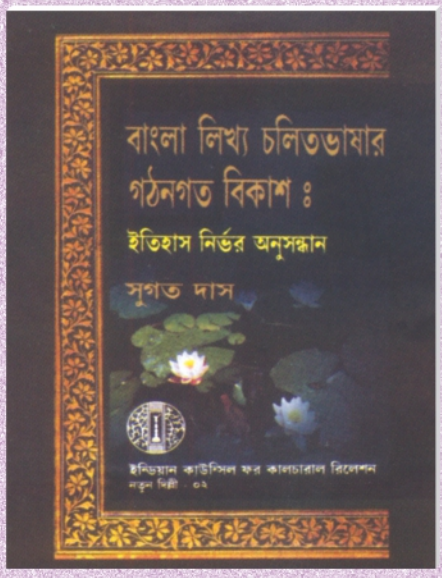

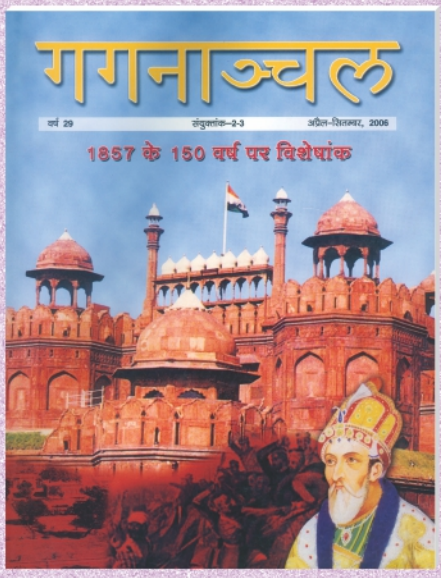

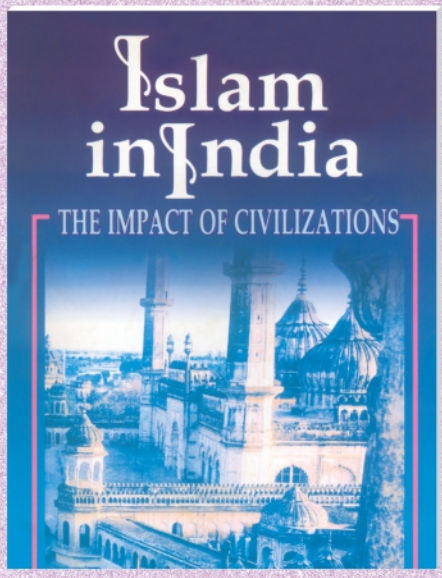

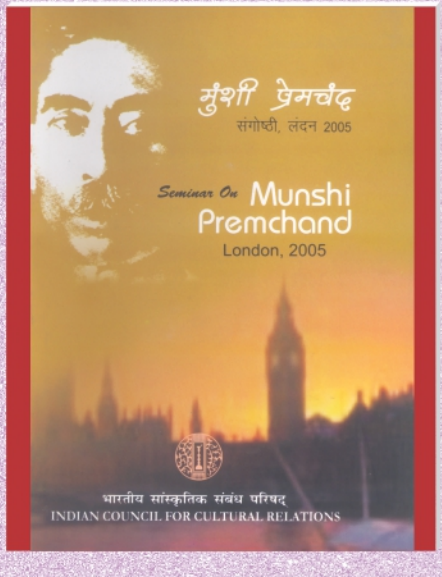

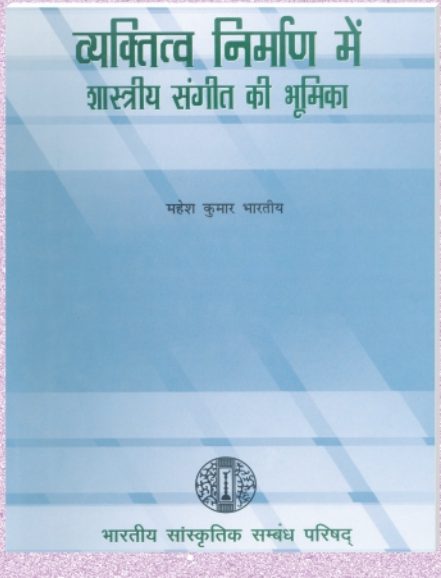

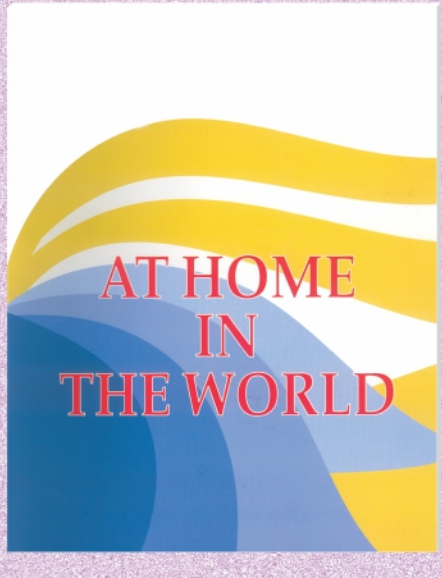

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

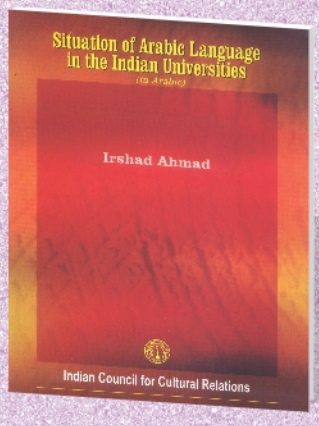

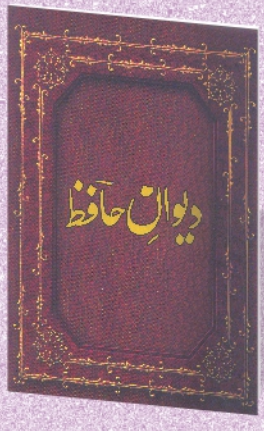

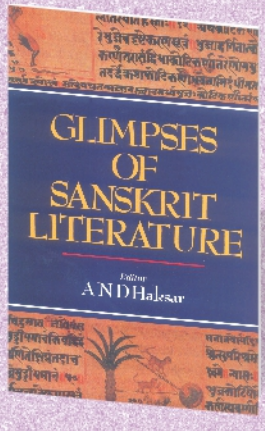

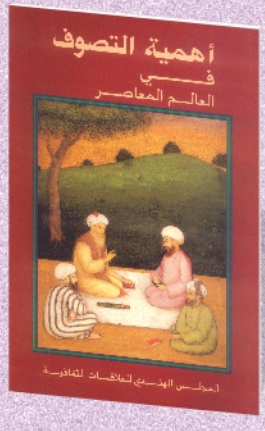

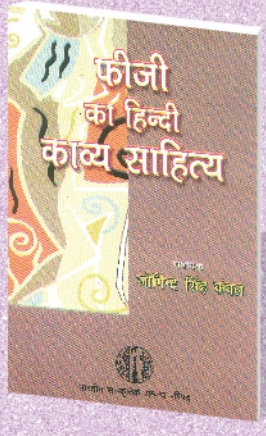

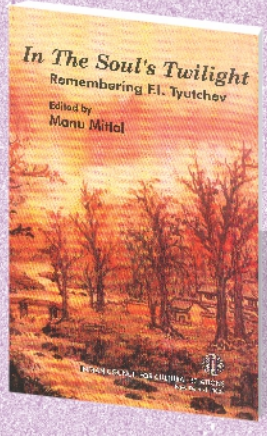

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccrindia.net